वर्ष-3 अंक-6

ISSN 2231 - 2455

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विज्ञान पत्रिका

# विज्ञान-गंगा

2013

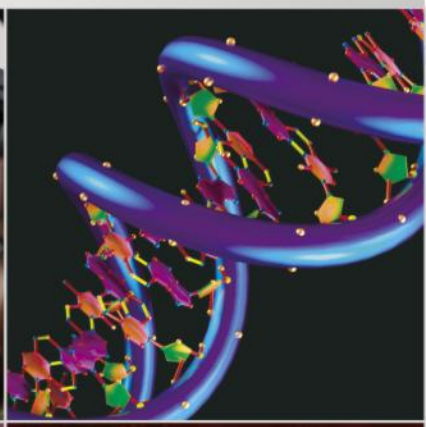

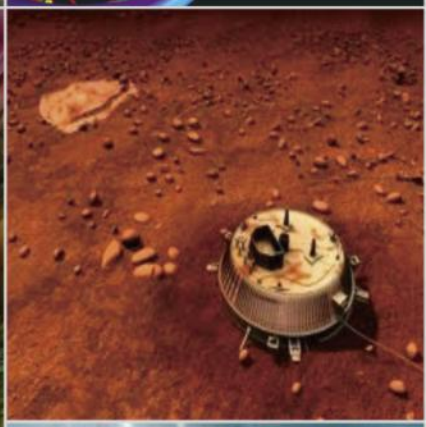

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय BANARAS HINDU UNIVERSITY

सर्व विद्या की राजधानी

हिन्दी प्रकाशन समिति

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

"वाणी का सात्विक तप यह है कि जो वाक्य असत्य, दुःखदायी, अप्रिय और खोटा हो उसे किसी समय, किसी भी अवस्था में मुँह से न निकालना, बल्कि प्रिय, सत्य और मधुर वचन बोलना।"

-महामना पं. मदन मोहन मालवीय

# विज्ञान-गंगा 2013

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विज्ञान पत्रिका

वर्ष - 3 अंक - 6 ISSN 2231 - 2455



मुख्य संरक्षक

**पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह**

कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सलाहकार मण्डल

**प्रो0 गिरिजा शंकर यादव,** कुलसचिव, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**डॉ0 अभय कुमार ठाकुर,** वित्त अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 अरुण कुमार श्रीवास्तव,** संकायप्रमुख, विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 मधुलिका अग्रवाल,** वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 सूर्य नाथ ठाकर,** भूतपूर्व अध्यक्ष, भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 एस. एन. उपाध्याय,** भूतपूर्व निदेशक, प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 रमा शंकर दुबे,** जैव रसायन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 राम सन्मुख उपाध्याय,** वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 शिव गोपाल मिश्र,** विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद

**प्रो0 राणा प्रताप सिंह,** बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

**डॉ0 श्रवण कुमार तिवारी,** पूर्व सहायक निदेशक, हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 अशोक कुमार,** जैव प्रौद्योगिकी स्कूल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव,** विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद

**डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र,** होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, टी.आई.एफ.आर., मुम्बई

**डॉ0 डी.डी. ओझा,** अवकाशप्राप्त वरिष्ठ वैज्ञानिक, जोधपुर

**संजय गोस्वामी,** अणु शक्ति नगर, मुम्बई

**शुकदेव प्रसाद,** इलाहाबाद

**मुहम्मद खलील,** अवकाशप्राप्त वरिष्ठ वैज्ञानिक, जामिया नगर, नई दिल्ली

**प्रो0 आर. पी. मलिक,** भौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो0 सुनील कुमार सिंह,** शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संपादक

**प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल**

उप-संपादक

**डॉ0 देवेश कुमार गुप्त**

**डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी**



प्रकाशक

**हिन्दी प्रकाशन समिति**

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



सम्पर्क

**समन्वयक**

हिन्दी प्रकाशन समिति (भौतिकी प्रकोष्ठ)

द्वितीय तल, हिन्दी भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005 (भारत)

फोन : 0542-6701424, ई-मेलः vigyanganga.bhu@gmail.com



पत्रिका में प्रकाशित लेखों व कथन के लिए सम्पादक, प्रकाशक अथवा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रशासन का सहमत या असहमत होना आवश्यक नहीं है। वे सभी लेखकों के अपने विचार हैं। पत्रिका में प्रकाशित कुछ छायाचित्र इन्टरनेट से लिये गये हैं जो जनहित में उपयोग किये गये हैं। इन छायाचित्रों के लिए हम सम्बन्धित छायाकारों के आभारी हैं।

# अनुक्रमणिका

विज्ञान-गंगा अंक-6 ( जुलाई - अगस्त 2013 )


1. उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षण और शोध एक दूसरे के पूरक - प्रो. एस.सी. लखोटिया 7
2. लैन्डसैट भूप्रेक्षण कार्यक्रम को चालू रखने वाला अगला मिशन 'एल डी सी एम' - डॉ. काली शंकर 11
3. भावी विकास का आधार - महासागर - नवनीत कुमार गुप्ता 15
4. यूनीकोड से फोनीकोड : श्रुति क्रांति की ओर - डॉ. ओम विकास 20
5. जापान की उत्परिवर्तित सब्जियाँ : फुकुशिमा न्यूक्लियर नाभिकीय उत्सर्जन (फॉलआउट) का प्रभाव - प्रो. शशि भूषण अग्रवाल 22
6. स्वर्ण जयन्ती वर्ष में भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम - डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र 23
7. बीटी बैंगन उर्फ पेट हमारा, मर्जी उनकी - प्रो. नरसिंह दयाल 27
8. मोटर गाड़ियों के लिए वैकल्पिक ईंधन - प्रो. मुरारी लाल माथुर 29
9. कवकों का विचित्र संसार - प्रो. सुनील दत्त पुरोहित 33
10. गंगा घाटी में बस्तियाँ - भौमिकीय समस्यायें एवं समाधान -प्रो. गिरीश चन्द्र चौधरी 36
11. एफ.एम. रेडियो प्रसारण - मेहेर वान राठौर 40
12. उच्च तापमान सुपर कंडक्टर : उद्योगों के लिए एक मील का पत्थर - संजय गोस्वामी 42
13. क्या टाइटन पर जीवन है? - विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी 44
14. धातुओं का सम्राट - प्लैटिनम - डॉ. डी.डी. ओझा एवं डॉ. के.एल. मेनारिया 47
15. 21वीं सदी में हिन्दी विज्ञान लेखन की चुनौतियाँ और संभावनाएँ - अंशुल गुप्ता 50
16. हृदयाघात के प्रमुख लक्षण तथा उससे जुड़ी कुछ भ्रांतियाँ - प्रो. शशि भूषण अग्रवाल 53
17. पवित्र वन : प्रकृति संरक्षण की प्राचीन परम्परा - प्रो. हरेन्द्र नाथ पाण्डेय 56
18. परखनली शिशु : आधुनिक विश्वामित्रों का चमत्कार - शुकदेव प्रसाद 60
19. टिकाऊ खेती के लिए पर्यावरण हितैषी पोषक तत्व - अनुराग कुमार सिंह, संजीव कुमार एवं प्रो. राणा प्रताप सिंह 62
20. सिंधु-गंगा मैदानी क्षेत्र में वायुमंडलीय एरोसोल की प्रवृत्ति और उनके संभावित प्रभाव - मनीष कुमार एवं डॉ. तीर्थंकर बनर्जी 67
21. ज्वालामुखी - प्रो. रामाश्रय प्रसाद सिंह 71
22. प्लास्टिक बैग, पृथ्वी, पर्यावरण, पशुधन और हमारी तनिक सी सुविधा की कीमत - डॉ. रमेश पाण्डेय एवं डॉ. नीरज 76
23. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग का अनुकरणीय उदाहरण : ग्रामीण ज्ञान केन्द्र - डॉ. राजेश सिंह 79
24. तंत्रिकातन्त्र के असाध्य पार्किन्सन रोग के निदान में कारगरःकेवॉच - सत्येन्द्र कुमार यादव, जय प्रकाश, शिखा चौहान एवं डॉ. सूर्य प्रताप सिंह 82
25. प्रो. पंचानन माहेश्वरी स्मृति व्याख्यान एवं प्रो. जितेन्द्र पी. खुराना का सम्मान - जगनारायण 84
26. जरूरी है मधुमेह में सतर्कता - मंजुलिका लक्ष्मी 85
27. मलेरिया के खिलाफ वैज्ञानिकों की जंग - डॉ. विनोद गुप्ता 89
28. भूमि संपोषकता के लिए आवश्यक है कृषि वानिकी - प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव 92
29. नई सोच, अनुसंधान और अविष्कार का विज्ञान : जैवप्रौद्योगिकी - डॉ. पीयूष गोयल 97
30. भारतीय विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विषयक तृतीय राष्ट्रीय सम्मेलन - डॉ. देवेन्द्र प्रकाश भट्ट 102
31. जैव ऊर्जा और जलवायु परिवर्तन - महेश कुमार सिंह एवं प्रो. नन्दिता घोषाल 103
32. *बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना* : मिलैनिन एक वरदान - मनोज कुमार, डॉ. कविता शाह, प्रो. आर.एस. दूबे और प्रो. रमेश चन्द 107
33. अनेक रोगों में उपयोगी अनार - जगनारायण 110
34. विश्व का सबसे बड़ा अनोखा फूल - प्रो. शशिभूषण अग्रवाल 112
35. पर्यावरणसौम्य रसायन के रूप में हरित रसायन - डॉ. दिनेश मणि 113
36. कहाँ मिलता है पुखराज? - डॉ. विजय कुमार उपाध्याय 116
37. क्यों फटते हैं बादल? - डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी 118
38. पारिस्थितिकी विज्ञान एवं पर्यावरणीय जैव प्रौद्योगिकी के नवीन आयाम और वर्तमान स्थितियाँ विषयक तीन दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद - डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी 119
39. अनेक रोगों की एक दवा : अजवायन - डॉ. अनिता रानी गुप्ता 120
40. जैव-विविधता परिरक्षण और पर्यावरण - अमित कुमार मिश्रा एवं प्रज्ञा दूबे 122
41. केंचुआ पालन और वर्मी कम्पोस्ट - विजय चितौरी 125
42. पर्यावरण कविताएँ - सुरेश आनन्द 128
43. वैज्ञानिक कविताएँ - संजय गोस्वामी 129
44. पाठकों के पत्र 130
45. पुरस्कार, सम्मान, सदस्यता एवं नियुक्ति 131
46. हिन्दी प्रकाशन समिति की गतिविधियाँ - डॉ. दया शंकर त्रिपाठी 132

डा. लालजी सिंह
कुलपति

**Dr. Lalji Singh** Ph.D., D.Sc. (Hon.)
FNA, FASc, FNASc, FNAAS, FTWAS
**Padmashri**
Bhatnagar Fellow (CSIR)
Former Director, CCMB, Hyderabad
**Vice-Chancellor**

**काशी हिन्दू विश्वविद्यालय**
**BANARAS HINDU UNIVERSITY**
*(Established by Parliament by Notification No. 225 of 1916)*
VARANASI-221 005 (INDIA)
Phones : 91-542-2368938, 2368339
Fax : 91-542-2369100, 2369951
e-mail : vcbhu1@gmail.com, vc_bhu@sify.com
website : www.bhu.ac.in

# सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि हिन्दी प्रकाशन समिति (भौतिकी प्रकोष्ठ), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा विज्ञान-गंगा (विज्ञान पत्रिका) के छठवें अंक का प्रकाशन किया जा रहा है।

इस पत्रिका में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कृषि एवं चिकित्सा विज्ञान के मौलिक, रुचिकर व ज्ञानपरक समाजोपयोगी लेख लोकप्रिय व सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशित किये जा रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विज्ञान-गंगा का यह छठवाँ अंक भी अपने पूर्व के अंकों की भाँति ही छात्र-छात्राओं, शिक्षकों, शोधकर्ताओं, कृषकों एवं जनसामान्य में लोकप्रियता हासिल करेगा और पाठकगण इसका अध्ययन कर अधिक से अधिक लाभ उठायेंगे।

मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की तरफ से उक्त प्रकाशन से जुड़े समस्त लोगों को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा अंक के सफल प्रकाशन हेतु शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

( लालजी सिंह )

**प्रो. केशरी लाल वर्मा**
अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

**Prof. Keshari Lal Verma**
Chairman, Commission for Scientific and Technical Terminology
Director, Central Hindi Directorate

भारत सरकार
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
उच्चतर शिक्षा विभाग

Government of India
Ministry of Human Resource Development
Department of Higher Education

प्रिय प्रो. अग्रवाल जी,

नमस्कार।

हिन्दी प्रकाशन समिति, विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित तथा आपके द्वारा संपादित पत्रिका 'विज्ञान गंगा' का 3/5 अंक प्राप्त हुआ, धन्यवाद। वैज्ञानिक विषयों पर ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी सामग्री हिन्दी में प्रकाशित कर आप एक बड़ा कार्य कर रहे हैं। पत्रिका की विषय-वस्तु एवं उत्पाद उच्चकोटि का है। 'विज्ञान गंगा' के निरंतर प्रकाशन के लिए मेरी ओर से शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

आपका,

**( केशरी लाल वर्मा )**

प्रो. शशि भूषण अग्रवाल,
समन्वयक एवं संपादक 'विज्ञान गंगा',
हिन्दी प्रकाशन समिति (भौतिकी प्रकोष्ठ),
द्वितीय तल, हिन्दी भवन,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221005 (उ.प्र.)

पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-110066 दूरभाष : 011-26165100, 26102882 • फैक्स : 011-26101220
West Block-7, R.K. Puram, New Delhi-110066 Tel. : 011-26165100, 26102882 • Fax : 011-26101220
E-mail : verma_kl@rediffmail.com

# विज्ञान-गंगा

हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान-गंगा' (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विज्ञान पत्रिका) का अंक-6 आपको प्रेषित करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। 'विज्ञान-गंगा' निरन्तर समृद्ध हो रही है और राष्ट्रीय स्तर पर क्रमशः लोकप्रियता हासिल कर रही है। 'विज्ञान-गंगा' के माध्यम से हमने जो विज्ञान एवं उससे जुड़ी महत्वपूर्ण सूचनाओं, आविष्कारों और अनुसंधान सूचनाओं को आप तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा था, उसमें हम सफलता हासिल कर रहे हैं। विज्ञान लेखकों से चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, कृषि एवं विज्ञान के विविध पक्षों से जुड़े विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर अनेक जनोपयोगी लेख लगातार प्राप्त हो रहे हैं। हम विज्ञान-गंगा का स्तर और सामग्रियों की निरन्तर वृद्धि की तरफ अग्रसर हैं और विश्वविद्यालय की गरिमा के अनुरूप विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा में हिन्दी के अधिकतम प्रयोग के लक्ष्यों को पूरा कर रहे हैं।

हिन्दी प्रकाशन समिति द्वारा विश्वविद्यालय के निर्देशों का पालन करते हुए अपने समस्त कार्यों एवं क्रियाकलापों में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है। इसने कम समय में ही हिन्दी प्रयोग के क्षेत्र में अपनी पहचान स्थापित कर ली है। हमारे लिए एक सम्मान की बात यह है कि पिछले दो वर्षों- सत्र 2011-12 एवं 2012-13 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की राजभाषा कार्यान्वयन एवं आंकलन समिति ने इस समिति द्वारा हिन्दी में किए गये शत-प्रतिशत कार्यों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी दिवस के अवसरों पर राजभाषा शील्ड पुरस्कार प्रदान किये। हमें पूर्ण विश्वास है कि विगत वर्षों की भाँति ही हमारे लब्धप्रतिष्ठ कुलपति पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह के कुशल नेतृत्व में हिन्दी प्रकाशन समिति और भी समृद्ध होगी और निरंतर नई ऊँचाइयों तक पहुँचेगी। माननीय कुलपति जी ने विज्ञान-गंगा के वर्तमान अंक-6 को पूर्ण रूप से रंगीन प्रकाशित करने की अनुमति दी है और इसके लिए आवश्यक धनराशि भी प्रदान की है। इसके लिए हम कुलपति जी के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं।

इस वर्ष हिन्दी प्रकाशन समिति द्वारा विश्वविद्यालय स्तरीय पुस्तक प्रकाशन योजना के अन्तर्गत ''पर्यावरण विज्ञान के विविध आयाम'' का प्रकाशन किया गया है, जिसका लोकार्पण दिनांक 17 अप्रैल, 2013 को माननीय कुलपति पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह द्वारा किया गया। इस दिशा में पूर्व में 'पर्यावरण सुरक्षा : मूलभूत समस्याएँ एवं निदान' तथा 'जल संरक्षण : समस्याएँ एवं समाधान' पुस्तिकायें प्रकाशित की जा चुकी हैं जिसने पर्यावरण प्रेमियों के बीच काफी लोकप्रियता हासिल की है। ये पुस्तकें पर्यावरण विज्ञान के छात्रों, अध्यापकों, प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित हो रहे प्रतिभागियों, गैर-सरकारी समाजसेवी संस्थाओं एवं पर्यावरण प्रेमियों के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो रही है।

विज्ञान-गंगा के इस अंक में अनेक राष्ट्रस्तरीय वैज्ञानिकों, शिक्षकों एवं विज्ञान लेखकों के उपयोगी लेख प्रकाशित किये जा रहे हैं जो अत्यन्त ही रुचिकर, ज्ञानवर्द्धक एवं समसामयिक हैं। इस अंक में प्रो0 एस.सी. लखोटिया, प्रो0 मुरारी लाल माथुर, प्रो0 आर.एस. दूबे, डॉ0 एस.पी. सिंह, डॉ0 कविता शाह, डॉ0 ओम विकास, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ0 कुष्ण कुमार मिश्र, प्रो0 नरसिंह दयाल, प्रो0 राणा प्रताप सिंह, शुकदेव प्रसाद, काली शंकर, संजय गोस्वामी, डॉ0 दिनेश मणि, डॉ0 विजय कुमार उपाध्याय, डॉ0 दुर्गा दत्त ओझा, डॉ0 जे.एल. अग्रवाल, डॉ0 एन.के. बोहरा, प्रो0 गिरीश चन्द्र चौधरी, प्रो0 हरेन्द्र नाथ पाण्डे, डॉ0 विनोद गुप्ता, डॉ0 राजेश सिंह, मेहेरवान राठौर, जगनारायन, विजय चितौरी, मंजुलिका लक्ष्मी, सुभाष लखेड़ा जैसे हिन्दी के प्रसिद्ध विज्ञान लेखकों, शिक्षकों, अनुसंधानकर्ताओं, छात्रों एवं विज्ञान प्रेमियों की रचनाएँ प्रकाशित की गयी हैं जो आपके लिए उपयोगी सिद्ध होंगी।

सर्वप्रथम, मैं अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के यशस्वी कुलपति और 'विज्ञान-गंगा' के मुख्य संरक्षक पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह जी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता

हूँ जिनका विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान तथा शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दी को प्रोत्साहित करने में विशेष योगदान रहता है। उनके प्रोत्साहन, उत्साहवर्द्धन एवं आवश्यक धनराशि प्रदान करने के परिणामस्वरूप ही यह उत्कृष्ट एवं आकर्षक रंगीन 'विज्ञान-गंगा' पत्रिका का अंक-6 आप तक पहुँच रहा है। मैं, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलसचिव प्रो0 गिरिजा शंकर यादव तथा छात्र अधिष्ठाता डा0 विनय कुमार सिंह का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने इस अंक के प्रकाशन में सभी प्रकार के प्रशासनिक सहयोग प्रदान किये हैं। विज्ञान संकाय प्रमुख प्रो0 अरुण कुमार श्रीवास्तव के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जो हिन्दी को आगे बढ़ाने एवं समिति को सुदृढ़ बनाने में अपना रचनात्मक सुझाव एवं यथोचित सहयोग प्रदान करते रहे हैं। वित्तीय सहयोग प्रदान करने हेतु विश्वविद्यालय के वित्त अधिकारी डॉ0 अभय कुमार ठाकुर के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ। मैं 'विज्ञान-गंगा' के सलाहकार मण्डल के सभी सदस्यों का विशेष रूप से आभारी हूँ जिनका 'विज्ञान-गंगा' को स्तरीय बनाने में हमें निरन्तर सहयोग एवं रचनात्मक सुझाव प्राप्त होता रहा है। मैं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के अध्यक्ष और निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय प्रो0 केशरी लाल वर्मा एवं सहायक वैज्ञानिक अधिकारी डॉ0 बी.एस. बेहरा द्वारा हिन्दी प्रकाशन समिति को प्रदान किये गये आर्थिक सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। इस पत्रिका में प्रकाशित लेख के लेखकों को मैं व्यक्तिगत रूप से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपने उत्कृष्ट लेखन से इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किये हैं। हम अपने सहयोगी उप-संपादकों डॉ0 देवेश कुमार गुप्त एवं डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी को भी कुशल संपादन सहयोग हेतु आभार प्रकट करते हैं। साथ ही समिति के कार्यालय सहायक एवं संगणक कार्मिक श्री अनुप सोनकर एवं श्री तुलसी दास एक्का को भी उनके विविध सहयोग हेतु धन्यवाद देते हैं। पत्रिका के मुद्रक मे0 गौतम प्रिंटर्स के अधिष्ठाता श्री अरुण कुमार सिंह पत्रिका समय से प्रकाशित करने हेतु साधुवाद के पात्र हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका का प्रस्तुत अंक-6 भी अपने पूर्व प्रकाशित अंकों की भाँति ही वैज्ञानिकों, शिक्षकों, छात्रों एवं सामान्यजनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। हम आपके सृजनात्मक एवं उत्कृष्ट सुझावों का सदैव स्वागत करेंगे।

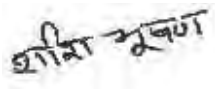

**( प्रो. शशि भूषण अग्रवाल )**

## प्रसिद्ध वैज्ञानिक व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पुरातन् छात्र डॉ० सी.एन.आर. राव ''भारत रत्न'' से सम्मानित

प्रोफेसर चिन्तामणि नागेश रामचन्द्र राव को भारत सरकार ने देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान ''भारत रत्न'' से सम्मानित करने का निर्णय लिया है। प्रो. राव तीसरे वैज्ञानिक हैं जिन्हें यह सम्मान दिया गया है। प्रो. राव बेंगलुरु के जवाहरलाल नेहरु सेन्टर फॉर एडवांस्ड् साइंटिफिक रिसर्च के संस्थापक हैं तथा वर्तमान में वे प्रधानमंत्री की वैज्ञानिक सलाहकार परिषद् के प्रमुख हैं। प्रो. राव ने अपनी एम.एससी. (रसायन शास्त्र) की उपाधि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी। प्रो. राव को भारत रत्न मिलने पर 'हिन्दी प्रकाशन समिति' परिवार की बहुत-बहुत बधाईयाँ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति पद्मश्री डॉ० लालजी सिंह ने भी प्रो. राव को भारत रत्न मिलने पर बधाई दी है और उन्हें युवा वैज्ञानिकों के लिए प्रेरणास्रोत एवं मार्गदर्शक बताते हुए इस महान उपलब्धि पर हर्ष व्यक्त किया है।

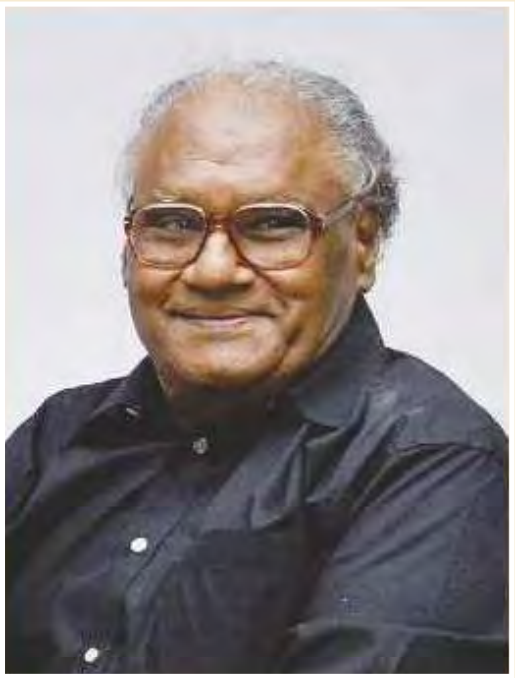


ISSN 2231-2455

# उच्च शिक्षण संस्थानों में शिक्षण और शोध एक दूसरे के पूरक

प्रो० एस.सी. लखोटिया *

सर्व विद्या की राजधानी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का सिंह द्वार

महाविद्यालय और विश्वविद्यालय ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च शिक्षा के स्थल हैं जहाँ छात्र विभिन्न विषयों में ज्ञात ज्ञान के साथ-साथ शोध द्वारा अर्जित नए विषयों का अध्यन करते हैं। चूँकि महाविद्यालयों तथा विशेष कर विश्वविद्यालयों को शोध द्वारा अज्ञात को ज्ञात में परिवर्तित करने के स्थल भी माने जाते हैं, यहाँ के शिक्षकों का शोध कार्य में संलग्न रहना अपेक्षित है। विश्वविद्यालय और कॉलेज शिक्षकों की जिम्मेदारियाँ स्कूल शिक्षकों से भिन्न हैं। उच्च शिक्षा के लिए आने वाले छात्र अपने जीवन के सबसे संवेदनशील समय में होते हैं, अतः इस समय के अनुभव उनके भावी जीवन पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। इसीलिए विश्वविद्यालय और कॉलेज शिक्षकों की शिक्षण के अतिरिक्त ''मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक'' होने की भी जिम्मेदारी होती है। इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए उन्हें अच्छा शिक्षक होने के साथ-साथ अच्छा शोधकर्ता होना भी आवश्यक है।

सम्प्रति हमारे समाज के लगभग सभी क्षेत्रों में मूल्यों का ह्रास हुआ है। शिक्षण संस्थाएँ एवं शिक्षक भी इस ह्रास से प्रभावित हैं। कैरियर प्रगति के लिए सीमित अवसरों एवं व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण शिक्षण संस्थाओं में असहज प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है। चूँकि शिक्षण कार्य की आसानी से तुलनात्मक गणना नहीं की जा सकती है, इसलिए शोध कार्य विश्वविद्यालय प्रणाली में नियुक्तियों और पदोन्नतियों में चयन हेतु बनाये गये मापदंडों में अधिकाधिक महत्वपूर्ण हो गये हैं। इसके फलस्वरूप शिक्षा कार्य में अध्यापकों की रुचि कम होती जा रही है। दूसरी तरफ, अधिकांश शिक्षकों का गहन शोध के प्रति भी रुझान कम होता जा रहा है क्योंकि अधिकांश कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में शोध करने के लिए सुविधाओं का अभाव है और साथ ही नियुक्तियों तथा पदोन्नतियों के समय गुणवत्ता की जगह शोध पत्रों की संख्या को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। फलस्वरूप, जहाँ कुछ अध्यापक शिक्षण कार्य के प्रति उदासीन हैं वहीं कुछ की गुणवत्तायुक्त शोध में रुचि कम हो गई है। मूल्यों के ह्रास एवं शिक्षण कार्य के प्रति उदासीनता ने मिलकर हमारे छात्रों की गुणवत्ता पर बहुत विपरीत प्रभाव डाला है। छात्रों को अपेक्षित शैक्षणिक वातावरण नहीं मिल पा रहा है। शैक्षणिक वातावरण में सुधार आज देश की सर्वोच्च प्राथमिकता है। इस सुधार के लिए आवश्यक है कि शिक्षण संस्थानों में शोध और शिक्षण कार्य दोनों ही समन्वय के साथ चलें क्योंकि वास्तव में वे एक दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा और शोध की परस्पर पूरकता समझने के लिए हमें इन दोनों के आधार और स्वरूप को जानना चाहिए।

## अध्यापन और शिक्षा का स्वरूप

मनुष्य नया कुछ सीखने की अपनी असीम क्षमता के कारण अन्य सभी जीवों से भिन्न है। जहाँ कुछ 'ज्ञान' हमें जैविक विरासत में मिलते हैं, वहीं हम अपने जीवनकाल में 'अनुभव' और दूसरों के सिखाने से और अधिक ज्ञानी और विचारवान बनते जाते हैं। मानव समाज के विकास में भाषा का अद्भुत योगदान रहा है। इसी कारण पीढ़ियों द्वारा अर्जित ज्ञान हमें आसानी से प्राप्त हो जाता है। छात्रों के लिए यह वरदान है। परन्तु, चूँकि नए शोध से इस 'ज्ञान' की मात्रा तेजी से बढ़ती है, हर नयी पीढ़ी के छात्रों के लिए कुछ मुश्किलें भी बढ़ती जाती हैं। एक शिक्षक इस बढ़ते हुए ज्ञान को छात्रों के लिए सुगम बनाने में मौलिक भूमिका निभाता है तथा भविष्य में इस ज्ञान के उचित उपयोग करने की दिशा भी दिखाता है।

*प्रोफेसर इमेरिटस, कोशिकानुवंशिकी प्रयोगशाला, जन्तु विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221 005.

दुनिया की सभी संस्कृतियों और दर्शन में शिक्षक या 'गुरु' को एक बहुत उच्च आसन पर रखा गया है। संत कबीर ने 'गुरु' की मुख्य भूमिका बहुत ही सरल शब्दों में अभिव्यक्त की है :

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो बताय।।

शिक्षक का अधिक महत्वपूर्ण कार्य रास्ता दिखाना है, न कि सिर्फ ज्ञान प्रदान करना।

श्री अरबिंदो ने कहा है कि शिक्षक का कार्य अपने ज्ञान को छात्र के मस्तिष्क में रिक्त स्थान में भरने का नहीं है, क्योंकि मस्तिष्क में 'रिक्त' स्थान होता ही नहीं है। ज्ञान को जितना बाँटते हैं तथा उस पर जितना विचार-विमर्श करते हैं, उतना ही ज्ञान बढ़ता है तथा मस्तिष्क की क्षमता को बढ़ाता है। श्री अरविंदो ने शिक्षा के तीन बुनियादी सिद्धांत बताए हैं :

1. कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता है – शिक्षक छात्र की सीखने की प्रक्रिया में सिर्फ एक सहायक और गाइड या मार्गदर्शक होता है।
2. माता-पिता या शिक्षक द्वारा वांछित दिशा में बच्चे के विकास का निर्धारण करना बर्बर और अज्ञानी अंधविश्वास है – माता-पिता या शिक्षक उसका मार्गदर्शन करें ताकि बालक स्वयं की सोच और इच्छा से आगे बढ़े।
3. बालक के विकास के लिए वर्तमान में वह जो है से भविष्य में वह जो बनना चाहता है, उस दिशा में कार्य करें।

विश्वविख्यात विद्याविद सर्वपल्ली राधाकृष्णन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं भारत के पूर्व उपराष्ट्रपति व राष्ट्रपति, का मानना था कि शिक्षित होने का लक्ष्य सिर्फ अर्थोपार्जन ही नहीं है, अपितु भारतीय परम्परा के अनुसार शिक्षा मानव आत्मा को सत्य की खोज में प्रशिक्षित करने एवं बेहतर नागरिक बनाने की विधा है। उत्तम शिक्षण प्रणाली का उद्देश्य 'ज्ञानं सहितं विज्ञानम्' होना चाहिए। शिक्षा से बुद्धि की वृद्धि के साथ-साथ मानव मन में विनीत भाव और जीवन के प्रति एक सुन्दर दृष्टिकोण का विकास होना भी आवश्यक है। शिक्षा का ध्येय प्रत्येक इन्सान के अनूठेपन (Uniqueness) तथा उसकी शक्यता (Potential) को बढ़ावा देना है। अतः छात्र को केवल अधिक सूचना देना और तथ्य बता देना ही एक अच्छे अध्यापक का कार्य नहीं है। अच्छा अध्यापक छात्र को अधिक उत्सुक बनाता है ताकि शिक्षणोपरान्त छात्र की उत्सुकता समाप्त होने की जगह और अधिक विकसित हो।

**शिक्षण और शोध के लिए आवश्यक सूक्ष्मदर्शी यंत्र**

## शोध का स्वरूप

शोध कार्य से हम किसी सम्पूर्णतया नवीन वस्तु या सिद्धान्त की खोज नहीं करते हैं जो पहले से प्रकृति में विद्यमान नहीं है। शोध द्वारा हम पहले से विद्यमान पर हमारे लिए अज्ञात सिद्धान्तों, विचारों या वस्तुओं की पुनर्खोज (re-search) करते हैं। शोध द्वारा किसी ज्ञात स्थिति/घटना या विचारों के लिए नया सिद्धांत दिया जाता है अथवा नयी विवेचना प्रतिपादित की जाती है। शोध कार्य का प्रारंभ जिज्ञासु मन में पैदा हुए किसी प्रश्न से होता है। एक सटीक प्रश्न मन में आने के साथ ही हमारा मस्तिष्क उस प्रश्न का उत्तर सोचने लगता है। अतः मौलिक प्रश्न शोध कार्य की प्रगति तेज करते हैं। पुनरावृत्ति या किसी ज्ञात अवधारणा को फिर से समर्थित करने हेतु पूछे गए प्रश्न हमारे ज्ञान को अधिक नहीं बढ़ाते हैं। इसीलिए इस तरह का शोध अधिक उपयोगी या सार्थक नहीं होता है। प्रश्न के निर्धारण के साथ ही हमारे मस्तिष्क में उत्तर की परिकल्पना (Hypothesis) बन जाती है। वास्तविक उत्तर पाने के लिए हम उपयुक्त कार्यप्रणाली (Methodology) का प्रयोग करते हैं। अगला कदम होता है अवलोकित परिणामों का सही व निष्पक्ष दर्ज करना एवं इनसे नयी व्याख्या देना। किसी अच्छे शोध की सफलता इसी में है कि उसके परिणामस्वरूप कई नए प्रश्न या जिज्ञासाएँ पैदा हों। इस तरह शोध कार्य शोधकर्ता को उस विधा के अंतिम पड़ाव पर नहीं पहुँचाता है बल्कि शोधकर्ता को अगले प्रश्नों के समाधान के लिए अग्रसरित होने के लिए प्रेरित करता है। अतः शोध के मूल में जिज्ञासु मन है जो मस्तिष्क को नए-नए प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करता है।

## अनुसंधान और शिक्षण के बीच संबंध

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि शिक्षा हमें जिज्ञासु बनाती है और जिज्ञासा ही शोध की उत्प्रेरक है। इस जिज्ञासा द्वारा संचालित शोध नए ज्ञान का जनक है। शिक्षक और छात्रों को नए प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करता है। अतः शिक्षण और शोध में बहुत गहरा सम्बन्ध है। अंतर सिर्फ इतना ही है कि शिक्षक छात्रों को शिक्षित करता है तथा शोधकर्ता स्वयं को शिक्षित करने के साथ-साथ उस नवअर्जित ज्ञान को अपने शोधपत्रों के माध्यम से सबको उपलब्ध कराता है।

**अनुसंधान प्रयोगशाला**

## गुणवत्तापूर्ण शोध अध्यापन कार्य में बाधक नहीं बल्कि सहायक है

किसी भी शिक्षास्थल में सर्जनात्मक वातावरण से शिक्षण कार्य की गुणवत्ता बढ़ती है तथा संस्था के शैक्षणिक वातावरण को सुदृढ़ करने में

अच्छे शोध कार्य की अहम् भूमिका रहती है। यह मान्य है कि एक अच्छे शोधकर्ता का अच्छा अध्यापक होना आवश्यक नहीं है, तथापि निम्न कारणों से एक अच्छा शोधकर्ता साधारणतया बेहतर अध्यापक होता है :

1. एक अच्छा शोधकर्ता सहज जिज्ञासा के कारण अनुसंधान में लिप्त है, न कि अध्यापन के पेशे की मजबूरियों से। नतीजतन, वह स्वयं जिज्ञासु होने के साथ अपने छात्रों को भी जिज्ञासु बनाने में तत्पर रहेगा तथा उन्हें अधिक से अधिक प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करेगा।
2. एक अच्छे शोधकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह अपने विषय में नवीनतम प्रगति से अवगत रहे। इस स्थिति में यह आशा की जाती है कि वह अपने अध्यापन कार्य में भी छात्रों को नवीनतम जानकारी देगा, न कि अपने छात्रकाल में उपलब्ध ज्ञान को ही कक्षा में लिखवा देगा।
3. प्रायोगिक शोध में संलग्न शोधकर्ताओं के लिए आवश्यक है कि उनकी प्रयोगशाला में आधुनिक उपकरण व सुविधाएँ उपलब्ध हों। यह स्थिति वहाँ के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी होती है क्योंकि उन छात्रों को नवीन प्रायोगिक विधाओं की अच्छी जानकारी स्वतः प्राप्त हो सकती है।
4. एक शोधकर्ता नवीन ज्ञान तथा व्याख्या का जनक होने के साथ ही पुरातन अवधारणाओं को छोड़ने के लिए मानसिक रूप से तैयार रहता है। इस दृष्टि से एक शोधकर्ता निरंतर 'छात्र' बना रहता है। इस प्रवृत्ति के कारण शोध में संलग्न अध्यापक का अपने छात्रों के साथ बेहतर तादात्म्य रहेगा, बनिस्पत उन अध्यापकों के जो कुछ नया पढ़ना या जानना नहीं चाहते हैं। निरंतर 'छात्र' बने रहने की प्रवृत्ति के कारण शोधकर्ता छात्रों को नए प्रश्न करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

**जैविक अनुसंधान**

5. शोधकार्य में सहकर्मियों (peers) की आलोचना का बहुत महत्व रहता है क्योंकि आलोचनात्मक प्रतिक्रियाएँ शोध की गुणवत्ता के लिए आवश्यक हैं और आलोचना की ग्रहणशीलता शोधकर्ता के लिए आवश्यक है। फलस्वरूप, अध्यापक के रूप में शोधकर्ता छात्रों के प्रश्नों से भी बहुत कुछ सीख सकता है और अपने शोधकार्य को नयी दिशा दे पाता है।

इसी प्रकार के विश्लेषण से हम पाएंगे कि अच्छा अध्यापन शोध कार्य में अत्यधिक सहायक होता है। उत्साहित छात्रों के साथ पारस्परिक विचार-विमर्श शोध के लिए नयी विचारधारा व कल्पनाओं के विकास में बहुत सहायक होता है। अध्यापन के लिए शिक्षक को विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता होती है। इससे जनित सम्यक ज्ञान शोध परिणामों को समग्र दृष्टि से समझने व व्याख्या करने में अत्यधिक सहायक होता है।

विश्वविद्यालय अध्यापन, परीक्षा व उपाधि देने मात्र के स्थान नहीं हैं।

**वानस्पतिक अनुसंधान**

विश्वविद्यालयों की शोध द्वारा नवीन ज्ञान के सृजन कि क्रिया भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि पूर्वोक्त तीनों। इसीलिए विश्वविद्यालयों द्वारा दी गयी उच्चतम उपाधि, पीएच.डी. छात्र द्वारा शोधजनित नए ज्ञान के सृजन व उसकी व्याख्या की क्षमता हेतु ही दी जाती है। अतः विश्वविद्यालयों में शोध कार्य आवश्यक है। लेकिन यह भी सुनिश्चित करना है कि शोध कार्य मजबूरी में नहीं किया जाये या इसलिए किया जाये कि सभी करते हैं। अपनी अभिलाषा, उत्साह एवं लगन से किया गया शोध ही उपयोगी होता है।

## शिक्षण और शोध के कुछ नैतिक मूल्य

वर्तमान में मूल्यों के ह्रास के कारण विभिन्न सामाजिक समस्याएँ हमारे सामने हैं और इस सामाजिक संकट का एक मुख्य कारण है हमारे संस्थानों में उपयुक्त शिक्षकों का अभाव। आज के भौतिकवादी समाज में अध्यापक या ('गुरू') की वह प्रतिष्ठा नहीं रही जो होनी चाहिए। इसलिए मेधावान छात्र शिक्षण कार्य को अपने जीवन का कार्यक्षेत्र नहीं बनाना चाहते हैं। अध्यापक के पद के लिए प्राथमिक रूप से शिक्षण कार्य करने की इच्छा रखने वाले अभ्यर्थी कम होते हैं, अधिकांश वो होते हैं जिन्हें अन्य कहीं रोजगार न मिल पाया हो। स्वाभाविक है की इनमें से अधिकांश उचित शिक्षक नहीं बन पाते, उनके लिए शिक्षक पद एक आर्थिक रोजगार मात्र रह जाता है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था की शिक्षक होना सिर्फ रोजगार नहीं है, बल्कि शिक्षण कार्य उद्यम और सेवाभाव से प्रेरित होना चाहिए। शिक्षण कार्य को एक व्यवसाय में परिवर्तित करने का फल हम स्नातकों की गुणवत्ता में देख पाते हैं। आज आवश्यक है कि शिक्षक 'गुरू' की महिमा के अनुरूप मूल्यों और उदात्त उद्देश्यों का पालन करे ताकि उच्चतम शैक्षिक स्तर बना रहे। मूल्यों का पालन ही शिक्षक को गरिमामय सम्मान योग्य पद देता है।

शिक्षा का कार्य छात्रों को केवल विषय के बारे में सूचना और तथ्य देना ही नहीं है। वास्तव में, शिक्षक छात्रों को ज्ञान प्राप्ति के पथ पर अग्रसरित करता है न कि हाथ पकड़कर अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाता है। शिक्षक छात्रों के लिए मार्गदर्शक और आदर्श (Role Model) है। श्री अरबिंदो ने कहा था कि नैतिक प्रशिक्षण का पहला नियम सुझाव आमंत्रित करना है न कि आदेश देना। सुझाव का सबसे अच्छा तरीका व्यक्तिगत उदाहरण के द्वारा होता है। अतः शिक्षकों का व्यक्तिगत व्यवहार और उनके विचार छात्रों पर अमिट छाप छोड़ते हैं। शिक्षकों की नैतिक जिम्मेदारी

समाज के अन्य घटकों से अधिक है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने समाज और देश के निर्माण में विश्वविद्यालयों और उनके शिक्षकों की महती भूमिका का विस्तृत विवेचन किया है। उनके अनुसार विश्वविद्यालय अध्यापकों तथा छात्रों का निगम है जहाँ दोनों के बीच पावन सम्बन्ध होते हैं। नियुक्त शिक्षकों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है कि नौजवान किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। चूँकि विश्वविद्यालय का वातावरण छात्रों के जीवन पर दीर्घकालीन छाप छोड़ता है, श्री राधाकृष्णन का महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के अधिकारियों के लिए अनुदेश था कि वे सत्यनिष्ठा, कार्य-कुशलता एवं ईमानदार व्यवहार वाले व्यक्तियों को ही अध्यापक के रूप में चुनें।

अध्यापक के मन में अपने छात्रों के लिए स्नेह व उनसे लगाव होना चाहिए ताकि वह उनकी आवश्यकताओं, दिलचस्पियों, क्षमताओं, इच्छाओं, अभिरुचियों तथा उनकी समस्याओं को समझे और समुचित मार्गदर्शन दे। श्री अरबिंदो के अनुसार अवलोकन और ज्ञान की क्षमता, बुद्धि और निर्णय और कार्यवाही की क्षमता तथा उच्च चरित्र किसी भी सभ्य समाज के नागरिकों के आवश्यक गुण हैं और एक कुशल शिक्षक ही छात्रों में इन गुणों को आत्मसात करवा सकता है।

अगर अध्यापक शिक्षण कार्य से आनंदित होता है तो छात्र भी आनंदित होंगे व उत्साहित रहेंगे। अगर अध्यापक नौकरी की मजबूरी से कक्षा में आता है और बेमन भाव से पढ़ाता है तो छात्रों को भी उस कक्षा को 'झेलना' पड़ता है। उत्साह से सीखी बातों की यादें दीर्घकालीन होती हैं जबकि 'झेली' हुई बातों की सकारात्मक याद नहीं रहती है। सफल शिक्षक एक अच्छे संगीतकार की तरह होता है जो अपने साथ ही अपने श्रोताओं को भी संगीत के आनंद से अभिभूत कर देता है।

श्री अरबिंदो ने एक बहुप्रचलित अवधारणा से बचने की सलाह भी दी है। अधिकांश अध्यापक व अभिभावक चाहते हैं कि छात्र अच्छा हो, खूब पढ़ने वाला हो, बहुत तरह की बातें जानता हो और सही उत्तर देता हो। उनके अनुसार इस तरह की आकांक्षाएँ छात्र की मौलिकता को नष्ट करती हैं तथा छात्र केवल पुस्तकें पढ़ता है या दूसरे क्या कहते हैं, उन पर निर्भर हो जाता है। उन्होंने कहा कि अध्यापक को छात्रों को अपने आप को पहचानना सिखाना चाहिए ताकि वे अपना भविष्य खुद निर्धारण करने योग्य बनें। नया सीखने की लगन पैदा करना ही अध्यापक व अभिभावक का बालक को सबसे अच्छा उपहार है।

शोध की प्राथमिक आवश्यकता मौलिक प्रश्नों के प्रति जिज्ञासु मन है। दुर्भाग्यवश, आज की शिक्षा पद्धति व सामाजिक वातावरण मौलिकता एवं जिज्ञासा को प्रोत्साहित नहीं करते हैं। हमारे स्नातक और परास्नातक पाठ्यक्रम छात्रों को सिर्फ वर्तमान में उपलब्ध अवधारणाओं व तथ्यों से अवगत कराते हैं परन्तु उन्हें मौलिक प्रश्न पूछने के लिए उत्प्रेरित नहीं करते। इन्टरनेट तथा कंप्यूटर की निरंतर बढ़ती क्षमता के कारण भी मौलिकता का ह्रास हो रहा है। किसी अन्य के कार्य को अपना बताकर शोधपत्र प्रकाशित करना आसान हो गया है। यह साहित्यिक चोरी (Plagiarism) यद्यपि दंडनीय है, फिर भी इसके उदाहरण बढ़ते जा रहे हैं। छात्रों को अक्सर यह पता ही नहीं होता कि साहित्यिक चोरी क्या है? स्नातक और परास्नातक शिक्षा के दौरान तथा शोध शुरू करने के प्रारंभिक काल में ही इस विषय पर गहन चर्चा होनी चाहिए।

शोध कार्य से जुड़े अन्य मूल्यों के बारे में भी चिंतन होना चाहिए। विज्ञान और तकनीकी के अनियंत्रित प्रयोग से समाज व वातावरण पर होने वाले दुष्प्रभावों के बारे में शोधकर्ताओं को जागरूक करने के लिए प्रत्येक महा- और विश्व-विद्यालयों में समुचित व्यवस्था करने की आवश्यकता है। आज के समय में जीव और चिकित्सा विज्ञान से अनेक नए नैतिक मुद्दे जुड़ गए हैं। इसीलिए प्रत्येक संस्थान में नैतिक मूल्य समिति (Ethical Committee) का होना आवश्यक है।

भौतिक तथा बौद्धिक संसाधन सीमित हैं। अतः इन सीमित संसाधनों के साथ सामाजिक प्रगति बनाये रखने के लिए शिक्षकों और शोधकर्ताओं का जीवन मूल्यों के प्रति सजग रहना व इनका प्रसार करना आवश्यक है। विज्ञान, चिकित्सा और तकनीकी क्षेत्रों में मूल्यों के प्रति सजग रहने की विशेष आवश्यकता है।

शिक्षक की, विशेषकर उच्च शिक्षा से जुड़े शिक्षकों की, शिक्षणेत्तर जिम्मेदारियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। शिक्षक को छात्रों को सतत, पर गहनतर, प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करना जितना अपेक्षित है, उतना ही उच्च शिक्षा से जुड़े शिक्षकों का शोध द्वारा नए ज्ञान का सृजन भी अपेक्षित है। इन सबके साथ शिक्षक को आदर्श 'रोल मॉडल' भी बनना है ताकि आज के छात्र भविष्य के जिम्मेदार नागरिक बन सकें।

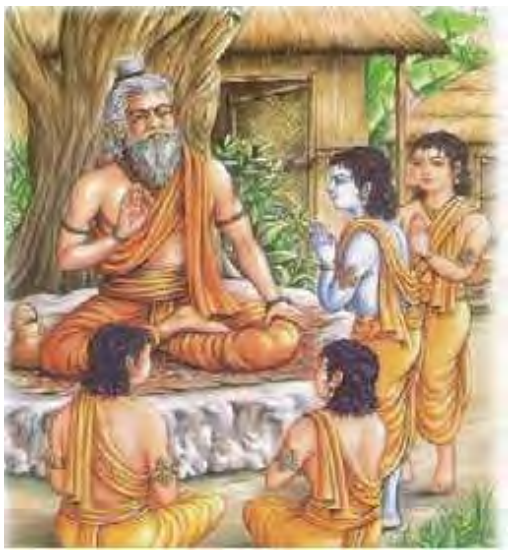

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा

## सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति है भारत के कश्मीर में

कश्मीर निवासी फिरोज-उन-दिर-मीर ने दुनिया के सबसे उम्रदराज व्यक्ति होने का दावा किया है। उनके अनुसार सरकारी दस्तावेज से साबित होता है कि उनकी उम्र 141 वर्ष है जिसमें उनकी जन्मतिथि 10 मार्च 1872 दर्ज है। अब तक सर्वाधिक उम्रदार होने का खिताब 115 वर्षीया जापानी महिला मिसाओ ओकावा के नाम पर है। अब तक सबसे जयादा उम्र तक जिंदा रहने का रेकार्ड फ्रेंच महिला जेनी कालमेंट के नाम पर है जिनका निधन 122 वर्ष की उम्र में हुआ था। एक रिपोर्ट के अनुसार मीर को अब बहुत कम दिखायी देता है। वह अपने परिजनों की मदद से ही चल पाते हैं।

# लैन्डसैट भूप्रेक्षण कार्यक्रम को चालू रखने वाला अगला मिशन 'एल डी सी एम'

काली शंकर *

11 फरवरी 2013 को अमरीका ने अपना लैटेस्ट भूप्रेक्षण उपग्रह लैन्डसैट-8 का प्रमोचन एटलस राकेट के द्वारा कैलीफोर्निया के वैन्डेनवर्ग वायुसेना बेस से किया। यह उपग्रह पृथ्वी की सतह के सबसे

'एल डी सी एम' उपग्रह

लम्बे समय (40 वर्षों से ज्यादा) से चले आ रहे प्रतिविम्ब रिकार्डों को बनाए रखने की दिशा में एक नया कदम होगा। लैन्डसैट-8 उपग्रह जिसे सामान्य तकनीकी भाषा में ''लैन्डसैट डाटा कान्टीन्युटी मिशन'' (एल डी सी एम) कहते हैं, उन उपग्रहों की शृंखला में लैटेस्ट उपग्रह है जो 1972 से लगातार पृथ्वी की सतह के प्रतिविम्ब की डाटा का संचयन कर रहा है। पृथ्वी से प्रमोचन के 1 घन्टे 20 मिनट के बाद लैन्डसैट-8 उपग्रह राकेट से अलग हुआ तथा 3 मिनट के बाद इसके प्रथम सिग्नल की पीप नार्वे के एक ग्राउन्ड स्टेशन में अभिग्रहित की गई। यह उपग्रह अपनी निर्धारित प्रचालन कक्षा पृथ्वी से 438 मील (735 कि0मी0) दूर 2 महीने के बाद पहुँचेगा। इसका न्यूनतम जीवन काल 5 वर्ष का होगा तथा इसमें इतना ईंधन भरा हुआ है कि यह अंतरिक्ष में 10 वर्ष तक काम करता रहेगा। यह एक दिन में पृथ्वी की 14 परिक्रमाएँ करेगा। यह उपग्रह लैन्डसैट शृंखला के उपग्रहों में 8वाँ उपग्रह है जिन्होंने हमारे पृथ्वी ग्रह के परिवर्तित हो रहे फेस के प्रतिविम्बन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नासा के प्रशासक चार्ल्स बोल्डेन के अनुसार, ''प्राप्त डाटा मौसम के मानीटरन के लिए विशिष्ट और प्रमुख तरीका है तथा मानवीय एवं जैव विविधता स्वास्थ के सुधार, ऊर्जा और जल प्रबन्धन, शहरी नियोजन, आपदा रिकवरी एवं कृषि मानीटरन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है एवं इससे अमरीका और विश्व समुदाय आर्थिक रूप से लाभान्वित हुआ है।''

लैन्डसैट-8 के पावरफुल संवेदक एक दिन में पृथ्वी ग्रह के 400 दृश्य (स्क्रीन्स) संचित करेंगे तथा वे इन्हें भू आधारित स्टेशन के संग्रहण स्थल को भेजेंगे जहाँ से कोई भी इन आंकड़ों का उपयोग कर सकेगा। यह पृथ्वी की सम्पूर्ण सतह का चित्रांकन प्रत्येक 16 दिन में करेगा जिसमें जंगल, जल स्तर और कृषि गतिविधियों के महत्वपूर्ण आंकड़े भी शामिल हैं। नये उपग्रह- एल डी सी एम से प्रेक्षण आंकड़े 100 दिन के बाद से उपलब्ध होने लगेंगे। लैन्डसैट उपग्रहों से प्राप्त 40 वर्षीय आंकड़ों का संग्रहण सबके लिए स्वतंत्र रूप से खुला हुआ है। सम्पूर्ण ग्लोब में वैज्ञानिक और सामान्य समुदाय लैन्डसैट डाटा का उपयोग अनेक प्रकार से करते हैं जिसमें शामिल है- फसलों के स्वास्थ्य मानीटरन से ज्वालामुखी, शहरों की वृद्धि का मापन और मानीटरन तथा ग्लैशियरों की स्थिति इत्यादि। लैन्डसैट डाटा का सर्वोत्तम उपयोग जो सार्वजनिक समुदाय को मालूम है, वह उनके फोन और कम्प्यूटर में गूगल के माध्यम से (जो लैन्डसैट उपग्रहों से प्राप्त डाटा का उपयोग करता है) उपलब्ध होता रहता है।

## परिचय

उपग्रहों के माध्यम से पृथ्वी सतह का प्रतिविम्बन मानव के लिए काफी उपयोगी और लाभदायक रहा है तथा इस प्रक्रिया को सुदूर संवेदन (रिमोट सेन्सिंग) प्रक्रिया के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इस सन्दर्भ में लैन्डसैट कार्यक्रम पृथ्वी प्रतिविम्बन के लिए सबसे लम्बे समय से चला आ रहा कार्यक्रम है। इसे पृथ्वी प्रतिविम्बन का (सुदूर संवेदन उपग्रहों के माध्यम से) श्री गणेश कहा जा सकता है। 1972 में प्रारंभ की गई लैन्डसैट डाटा शृंखला पृथ्वी सतह परिवर्तन का सबसे दीर्घकालीन

'एल डी सी एम' उपग्रह की प्रयोगशाला जाँच

*वरिष्ठ वैज्ञानिक (सेवानिवृत्त), इसरो, के. 1058, आशियाना कालोनी, कानपुर रोड, लखनऊ-226 012.

डाटा रिकार्ड है तथा एक मात्र अकेला उपग्रह तंत्र है जिसका प्रचालन और डिजाइन मध्यम वर्गीय विभेदन पर किया जा रहा है। 23 जुलाई 1972 को इस संदर्भ में प्रथम उपग्रह भूसम्पदा तकनीकी उपग्रह (अर्थ रिसोर्सेज टेक्नोलोजी सैटेलाइट) का प्रमोचन किया गया था तथा बाद में इसका पुनः नामकरण 'लैन्डसैट' नाम से किया गया। सबसे लैटेस्ट उपग्रह (इस सन्दर्भ में) लैन्डसैट का प्रमोचन 15 अप्रैल 1999 को किया गया। अब तक 7 लैन्डसैट उपग्रह प्रमोचित किये जा चुके हैं जिनका विवरण आगे दिया गया है।

### लैन्डसैट शृंखला के प्रमोचित हो चुके उपग्रह

**लैन्डसैट-1:** (जिसका वास्तविक नाम भू सम्पदा तकनीकी उपग्रह 1 था): इसका प्रमोचन 23 जुलाई 1972 को हुआ तथा 6 जनवरी 1978 को इसका प्रचालन बन्द कर दिया गया।

**लैन्डसैट-2:** 22 जनवरी 1975 को प्रमोचित हुआ तथा 22 जनवरी 1981 को इसका प्रचालन स्थगित हो गया।

**लैन्डसैट-3:** 5 मार्च 1978 को प्रमोचित तथा 31 मार्च 1983 को प्रमोचन स्थगित।

**लैन्डसैट-4:** 16 जुलाई 1984 को प्रमोचित, 1973 में प्रमोचन स्थगित।

**लैन्डसैट-5:** 1 मार्च 1984 को प्रमोचित तथा आपरेशनल लेकिन नवम्बर 2011 से यह अनेक समस्याओं से जूझ रहा है।

**लैन्डसैट-6:** इसका प्रमोचन 5 अक्टूबर 1993 को हुआ तथा यह अंतरिक्ष की कक्षा में नहीं पहुँच सका।

**लैन्डसैट-7:** 15 अप्रैल 1999 को प्रमोचित, अब भी काम कर रहा है लेकिन मई 2003 से स्कैन लाइन करेक्टर में समस्या है।

लैन्डसैट उपग्रहों में लगे उपकरणों ने पृथ्वी के लाखों की संख्या में प्रतिविम्ब लिए हैं। इन उपग्रहों के द्वारा प्राप्त प्रतिविम्बों का ग्लोबल परिवर्तन अनुसन्धान, कृषि, कार्टोग्राफी, भूगर्भ शास्त्र, वन्य विज्ञान, क्षेत्रीय नियोजन, शिक्षा इत्यादि के क्षेत्र में बहुत महत्व और उपयोग है। भू सम्पदा तकनीकी उपग्रह कार्यक्रम जब 1966 में प्रारंभ किया गया तो इसका उपर्युक्त नाम था लेकिन 1975 में इस कार्यक्रम का नाम लैन्डसैट कर दिया गया।

लैन्डसैट कार्यक्रम के अगले उपग्रह का नाम है ''लैन्डसैट डाटा कान्टीन्युटी मिशन'' जिसे संक्षिप्त में 'एल डी सी एम' कहते हैं जो कि अमरीकी अन्तरिक्ष संस्था नासा तथा अमरीकी भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग की संयुक्त परियोजना है तथा यह मध्यम श्रेणी का विभेदन (15 से 20 मीटर का जो कि स्पेक्ट्रल आवृत्ति पर निर्भर करता है) प्रदान करेगा और इस विभेदन के साथ यह पृथ्वी के पार्थिवेतर और ध्रुवीय क्षेत्रों का दृष्टिगोचर, इन्फ्रारेड समीप, शार्ट-वेब इन्फ्रारेड और तापीय इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रम में मापन और प्रतिविम्बन करेगा। लैन्डसैट परियोजना के इस भावी उपग्रह का एक अन्य नाम भी है- 'लैन्डसैट-8'। इस तरह 'एल डी सी एम' उपग्रह के द्वारा लैन्डसैट कार्यक्रम 38 वर्ष के बाद भी जारी रखने की दिशा में एक बड़ा कदम होगा। इसके अतिरिक्त विस्तृत रूप से भू उपयोग नियोजन और स्थानीय पैमाने पर मानीटरन क्षेत्रों में प्रयोग से 'एल डी सी एम' उपग्रह नासा अनुसंधान कार्यों को मौसम विज्ञान, कार्बन चक्र, इको तंत्र, जल चक्र, जैविक रसायन शास्त्र एवं भू सतह/अन्तः क्षेत्र में आगे बढ़ायेगा।

**'एल डी सी एम' उपग्रह की एक अन्य जाँच**

आज भू आवरण (लैन्ड कवर) तथा इसके अत्यधिक उपयोगों ने मौसम, मौसम परिवर्तन, इको तंत्र और सेवाओं, सम्पदा प्रबन्धन, राष्ट्रीय और ग्लोबल अर्थ व्यवस्था, मानव स्वास्थ्य और समाज को अत्यधिक प्रभावित किया है।

एल डी सी एम उपग्रह के नीतभार में दो वैज्ञानिक उपकरण हैं – प्रचालित भू प्रतिविम्बक (ओ एल आई) और तापीय इन्फ्रारेड संवेदक (टी आई आर एस)। यह दोनों संवेदक 30 मीटर, 100 मीटर (तापीय) और 15 मीटर (पैनक्रोमैटिक) आकाशीय विभेदन के साथ ग्लोबल भू क्षेत्र का मौसमी कवरेज प्रदान करेंगे। स्पेक्ट्रल कवरेज एवं रेडियों मीट्रिक निष्पादन (परिशुद्धता, डाइनामिक रेंज एवं परिशुद्धता) का डिजाइन इस प्रकार किया गया है। जिससे यह कई दशक के भू परिवर्तनों का संसूचन का अभिलक्षण ऐतिहासिक लैन्डसैट डाटा के साथ कर सके।

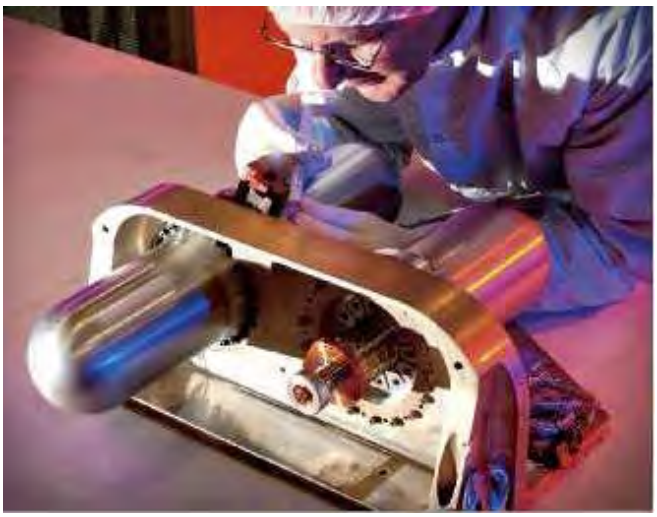

**'एल डी सी एम' उपग्रह का उपकरण 'टी आई आर एस'**


ISSN 2231-2455

कोअर्डिनेटेड अंशांकन प्रयास इस मिशन में भी ध्यान में रखे जायेंगे। एल डी सी एम उपग्रह के द्वारा दृश्यांकन का आकार 185 कि0मी0 × 180 कि0मी0 होगा। अन्तरिक्षयान की कक्षा की ऊँचाई 735 कि0मी0 होगी। एल डी सी एम उपग्रह से डाटा को हैन्डल करने वाले उपकरणों एवं उत्पादों की 12 मीटर से बेहतर कार्टोग्रैफिक परिशुद्धता अपेक्षित है।

'एल डी सी एम' का उपग्रह का कार्यान्वयन नासा और अमरीकी भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग के द्वारा सम्पन्न किया जा रहा है। भू प्रेक्षण कार्यों में नासा की विशेषज्ञता तथा अमरीकी भू-गर्भ सर्वेक्षण की डाटा भंडारण एवं सुदूर संवेदन डाटा प्रोसेसिंग विशेषज्ञता ने इन दो विभागों के बीच एक लाभदायक भागीदारी बना दी है। 'एल डी सी एम' मिशन में नासा का उत्तरदायित्व 'ओ एल आई' और 'टी आई आर एस' उपकरण, अन्तरिक्षयान, प्रमोचन वेहिकल, अमरीकी भूगर्भशास्त्र सर्वेक्षण विभाग फन्डेड मिशन का प्रचालन और मिशन का प्रचालन और मिशन का इन-आरबिट सत्यापन है। इस मिशन के अन्तरिक्ष खण्ड के अधिकांश अवयव नासा उद्योग जगत से ले रहा है जिसमें नासा का गोडार्ड अन्तरिक्ष उड़ान केन्द्र (जी एस एफ सी) मिशन इन्टीग्रेटर ओर नेतृत्व प्रदायक तंत्र इंजीनियर संस्था के रूप में काम कर रहा है। एल डी सी एम उपग्रह के विभिन्न तकनीकी गणक आगे दिये गये हैं।

'एल डी सी एम' उपग्रह का दूसरा उपकरण 'ओ एल आई'

'टी आई आर एस' उपकरण का निर्माण गोडार्ड अंतरिक्ष उड़ान केन्द्र के अन्दर किया जा रहा है तथा प्रमोचन सेवाएँ कैनेडी अन्तरिक्ष केन्द्र के द्वारा प्रदान की जायेंगी। 'एल डी सी एम' का मिशन प्रचालन केन्द्र गोडार्ड अन्तरिक्ष उड़ान केन्द्र के अन्दर होगा।

अन्तरिक्ष भू-गर्भ सर्वेक्षण विभाग इस मिशन को ग्राउन्ड डाटा प्रोसेसिंग तंत्र प्रदान करेगा जो भू-गर्भ सर्वेक्षण विभाग के भू सम्पदा प्रेक्षण और विज्ञान केन्द्र में स्थित होगा। सर्वेक्षण विभाग भी इस प्रोसेसिंग तंत्र को उद्योग जगत से ले रहा है। फ्लाइट प्रचालन टीम का गठन भी सर्वेक्षण विभाग के द्वारा किया गया है (नासा के एक अनुबन्ध के अन्तर्गत)। सर्वेक्षण विभाग ही लैन्डसैट विज्ञान टीम को फन्डिग और नेतृत्व प्रदान करेगा। मिशन प्रमोचन के बाद तथा आन-आरबिट कक्षीय सत्यापन के बाद अमरीकी भू-गर्भ सर्वेक्षण विभाग प्रमोचन के बाद की कैलीब्रेशन गतिविधियाँ प्रारंभ करेगा जिसमें शामिल होंगे उपग्रह प्रमोचन, डाटा उत्पाद जनन एवं डाटा भंडारण।

### एल डी सी एम मिशन की प्रमोचन वेहिकल

इस मिशन की अंतरिक्ष प्रमोचन सेवाएँ केनेडी अंतरिक्ष केन्द्र के द्वारा प्रदान की जायेंगी। मिशन की प्रमोचन वेहिकल एक अटलस V राकेट था जिसका प्रबन्धन कैनेडी अंतरिक्ष केन्द्र ने किया तथा यह राकेट यूनाइटेड लांच एलायेंस कम्पनी से लिया गया।

### 'एल डी सी एम' का ग्राउन्ड तंत्र

एल डी सी एम के ग्राउन्ड तंत्र में उन सभी चीजों को शामिल किया गया है जो 'एल डी सी एम' प्रेक्षणशाला को आपरेट करने के लिए आवश्यक होते हैं। इस मिशन के ग्राउन्ड सेगमेन्ट के प्रमुख अवयवों में शामिल चीजें हैं:- मिशन आपरेशन्स अवयव, कलेक्शन ऐक्टिविटी नियोजन अवयव, ग्राउन्ड नेटवर्क अवयव, और डाटा प्रोसेसिंग एवं संग्रहण तंत्र। मिशन आपरेशन्स अवयव हैमर्स कार्पोरेशन कम्पनी के द्वारा प्रदान किया जायेगा। इस सन्दर्भ में आवश्यक अनुबन्ध के अन्तर्गत कमान्ड और कन्ट्रोल, मिशन नियोजन और शेड्यूलिंग, दीर्घकालीन ट्रेन्डिंग और विश्लेषण एवं फ्लाइट डाइनामिक्स विश्लेषण को शामिल किया गया। ग्राउन्ड नेटवर्क अवयव में दो नोड हैं जो फेयरबैक्स, अलास्का और सिउक्स फाल्स, एस डी में स्थित होंगे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्टेशन में पूर्ण रूप में एस-बैन्ड अपलिंक और डाउनलिंक क्षमताएँ होंगी। डाटा प्रोसेसिंग और संग्रहण तंत्र में वे फंक्शन शामिल किये गये हैं जिनका सम्बन्ध इन्जेटिंग, भंडारण, कैलीब्रेशन, प्रोसेसिंग और वितरण (एल डी सी एम के डाटा और डाटा उत्पाद) से है।

### 'एल डी सी एम' मिशन से अपेक्षित दो बड़े प्रश्न

### भविष्य में पृथ्वी तंत्र कैसे परिवर्तित होगा ?

जैसे-जैसे पृथ्वी में जीवाश्म ईंधनों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है वैसे-वैसे पृथ्वी में ग्रीन हाउस गैसों की संकेन्द्रणता (कनसेन्ट्रेशन) बढ़ेगी और उसके साथ पृथ्वी का औसत तापमान भी बढ़ेगा। मौसम परिवर्तन का अन्तः सरकारी पैनेल (इन्टरगवर्नमेन्टल पैनेल ऑन क्लाइमेंट चेंज) के अनुमान के अनुसार 21वीं सदी के अन्त तक पृथ्वी का औसत तापमान 2 से 6 डिग्री सेन्टीग्रेड तक बढ़ सकता है।

### ग्लोबल भूतंत्र में किस प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं?

वर्तमान में पृथ्वी गर्म होने की अवधि से गुजर रही है। पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 1.1 डिग्री फारेनहाइट (0.6 डिग्री सेन्टीग्रेड) बढ़ा है। पिछले दो दशकों में पृथ्वी की गर्माहट (वार्मिंग) की दर बढ़ी है तथा वैज्ञानिकों ने विश्लेषणों के आधार पर अनुमान लगाया है कि हमारी पृथ्वी 21वीं सदी के अन्त तक गर्म होती रहेगी। क्या यह गर्माहट का ट्रेन्ड चिन्ता का विषय है? यह बड़ा विचारणीय मुद्दा है। जैसा भी हो हमारी पृथ्वी ने भूतकाल में अत्यधिक गर्म परिस्थितियों को झेला है जैसे डाइनासोर का समय। पृथ्वी ने इसके अलावा भी 11,000 वर्ष के चक्र में अनेकों बर्फ युग भी देखे हैं (कम से कम पिछले कुछ मिलियन वर्षों

में)। इसलिए शायद पृथ्वी के 4.5 बिलियन वर्ष के इतिहास में परिवर्तन एक मात्र अकेला स्थिरांक (कान्स्टैन्ट) है।

### 'एल डी सी एम' उपग्रह की तापीय निर्वात चैम्बर में जाँच पूरी हुई

23 नवम्बर 2012 को 'एल डी सी एम' उपग्रह की पर्यावरणीय जाँच आरबिट साइंस कार्पोरेशन की तापीय निर्वात चैम्बर सुविधा में पूरी की गई। टेस्टिंग के दौरान विशालकाय चैम्बर के अन्दर की सारी हवा निकाल दी गई तथा वहाँ निर्वात बनाया गया। उसके बाद चैम्बर के अन्दर के भाग को और गर्म करके बढ़ाया गया तथा उसके बाद इसे ठंडा किया गया। इस सबके करने का कारण था उपग्रह के वाह्य पर्यावरणीय तापक्रम को सिमुलेट करना (अर्थात अन्तरिक्ष जैसी परिस्थिति का सृजन करना)। उपग्रह की यह पर्यावरणीय जाँच 34 घंटे चली तथा तापीय निर्वात टेस्ट का पूरा किया जाना पर्यावरणीय जाँच का समापन था।

'एल डी सी एम' उपग्रह का प्रमोचन

### 'एल डी सी एम' उपग्रह मिशन के विभिन्न गणक

1- 'एल डी सी एम' उपग्रह लैन्डसैट-5 एवं लैन्डसैट-7 के साथ डाटा की आपूर्ति जारी रखेगा।

2- 705 कि0मी0 निम्न भू-कक्षा वाला मिशन।

3- सरल तथा आसानी से इन्टीग्रेटेड डिजाइन पर आधारित आरबिटल कम्पनी के पूर्व फ्लाइट सिद्धहस्त मिशन ल्योस्टार-3 पर आधारित अन्तरिक्षयान का स्ट्रक्चर।

4- विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए गतिशील यांत्रिकी को हटाया गया, प्रचालन आसान तथा अन्तर्राष्ट्रीय समन्वयकों को अच्छी सेवा प्रदान की जायेगी।

5- लैन्डसैट डाटा उत्पाद आसानी से उपभोक्ताओं को अमरीकी भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग के द्वारा उपलब्ध कराया जायेगा।

6- कस्टमरः नासा गोडार्ड अन्तरिक्ष उड़ान केन्द्र-ग्रीनबेल्ट, मेरीलैन्ड

7- आंकड़े

- प्रमोचन भार : 3085 कि0ग्रा0
- सौर एरे : ट्रिपल जंक्शन गैलियम अर्सेनाइड से 3750 वाट ( जीवन अवधि के अन्त में)
- कक्षा : 735 कि0मी0 (वृत्तीय), 98.2 डिग्री झुकाव
- स्थायित्व : 6.02 माइक्रोरेडियन
- डाटा संचयन : 4000 गीगाबिट प्रति से0 (प्रारंभ में)
- डाटा डाउनलिंक : एक्स-बैन्ड, 384 मेगाबिट प्रति से0 (2 चैनेल)
- नोदक : 395 कि0ग्रा0 (870 पौन्ड) तथा 8 प्रणोदक
- डिजाइन जीवन कालः 5.25 वर्ष, लक्ष्य-10 वर्ष

8-उपकरण

- आपरेशनल लैन्ड प्रतिविम्बक ( ओ एल आई)
- तापीय इन्फ्रारेड संवेदक (टी आई आर एस)

9-प्रमोचन

- प्रमोचन वेहिकल : अटलस V-401
- प्रमोचन स्थल : वैन्डेनबर्ग वायु सेना बेस
- प्रमोचन तिथि : 11 फरवरी, 2013

## श्रद्धांजलि

'विज्ञान प्रगति' के पूर्व सम्पादक एवं वरिष्ठ विज्ञान लेखक श्री श्याम सुन्दर शर्मा जी का शनिवार 23 मार्च 2013 को नई दिल्ली में निधन हो गया। वे 83 वर्ष के थे। श्री शर्मा 1965 से 1989 तक 'विज्ञान प्रगति' के सम्पादक रहे। उनके कार्यालय में विज्ञान प्रगति ने काफी लोकप्रियता हासिल की थी जो अब तक जारी है। आपकी हिन्दी में पचास से अधिक मौलिक वैज्ञानिक पुस्तकें तथा अनेक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं जिनमें से आपकी अनेक पुस्तकों को भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों द्वारा पुरस्कृत भी किया जा चुका है। आपकी सैकड़ों रेडियो वार्ताएँ प्रसारित हैं तथा आपको 'डॉ0 आत्माराम सम्मान' सहित अनेक सम्मान प्राप्त हुए हैं।

श्री श्याम सुन्दर शर्मा जी के निधन से हिन्दी विज्ञान लेखन की अपूरणीय क्षति हुई है। हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिवार की तरफ से आपको भावभीनी श्रद्धांजलि।

**प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल**

समन्वयक, हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.


ISSN 2231-2455

# भावी विकास का आधार - महासागर

नवनीत कुमार गुप्ता *

समस्त ब्रह्मांड में अभी तक पृथ्वी ही एक ऐसा ज्ञात ग्रह है जहाँ जीवन विविध रूपों में रचा-बसा है। पृथ्वी ग्रह पर जीवन का अस्तित्व यहाँ उपस्थित विभिन्न जटिल व नाजुक प्रणालियों या पारितंत्रों के आपसी समन्वय व संतुलन का परिणाम है। वैसे देखा जाए तो पृथ्वी पर जीवन मुख्यतः तीन तंत्रों स्थलमंडल, वायुमंडल और महासागरों या समुद्रों की सहभागिता के कारण संभव हुआ है।

जीवनदायी महासागर

महासागर पृथ्वी पर जीवन का प्रतीक है। पृथ्वी पर जीवन का आरंभ महासागरों से माना जाता है। महासागरीय जल में ही पहली बार जीवन का अंकुर फूटा था। आज महासागर असीम जैवविविधता का भंडार हैं। जीवन और महासागरों के तालमेल को जानने से पहले हम महासागरों की उत्पत्ति को समझने की कोशिश करते हैं। पृथ्वी पर जल और जल से भरे विशाल महासागरों का अस्तित्व भी करोड़ों वर्षों तक चली क्रियाओं का परिणाम है। पृथ्वी के जन्म के समय यानी करीब साढ़े चार अरब वर्ष पहले यहाँ न तो महासागर थे और न ही जीवन। आरंभिक समय में तो पृथ्वी का तापमान इतना अधिक था कि बारिश का पानी तुरंत ही भाप बन जाता था। जैसे-जैसे पृथ्वी का तापमान कम होता गया, वायुमंडल में फैली हुई नमी जल में बदल कर अनवरत वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरने लगी। इस प्रकार वर्षा का जल पृथ्वी के गड्ढों में इकट्ठा होने लगा। इस प्रक्रिया के करोड़ों वर्षों तक जारी रहने के उपरांत महासागरों का जन्म हुआ। इस प्रकार हमारी पृथ्वी का लगभग एक तिहाई भाग पानी से घिर गया और शेष भाग ऊँचाई पर स्थित होने के कारण आज के द्वीपों के रूप में अस्तित्व में आया।

हमारी पृथ्वी का लगभग 70 प्रतिशत भाग महासागरों से घिरा है। महासागरों में पृथ्वी पर उपलब्ध समस्त जल का लगभग 97 प्रतिशत जल समाया है। महासागरों की विशालता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि पृथ्वी के सभी महासागरों को एक विशाल महासागर मान लिया जाए तो उसकी तुलना में पृथ्वी के सभी महाद्वीप एक छोटे द्वीप से प्रतीत होंगे। मुख्यतया पृथ्वी पर पाँच महासागर हैं जिनके नाम हैं- प्रशांत महासागर, हिन्द महासागर, अटलांटिक महासागर, उत्तरी ध्रुव महासागर और दक्षिणी ध्रुव महासागर।

महासागरों के नीचे भी धरती है, अतः जिस प्रकार धरती पर पर्वत एवं खाईयाँ हैं, वैसी ही महासागरों में विभिन्न स्थलाकृतियाँ हैं। समुद्र का तल अनेक प्रकार का होता है। उसमें पहाड़ियाँ, द्वीप, समतल मैदान, सागर की उठान, निमग्न द्वीप या गयोट शामिल होते हैं। महासागरों के तल को मुख्य रूप से तीन भागों महाद्वीपीय शेल्फ, महाद्वीपीय ढाल और वितल में बाँटा जाता है। महाद्वीपीय शेल्फ तट से लगा क्षेत्र होता है जिस पर भूमि का प्रभाव पड़ता है। नदियों के जल के साथ आने वाले तत्वों से यह क्षेत्र पौष्टिक तत्वों से समृद्ध रहता है। सूर्य के प्रकाश और पौष्टिक तत्वों की पर्याप्तता के कारण इस क्षेत्र में जीवों और वनस्पतियों की प्रचुरता होती है। परन्तु मनुष्य के क्रियाकलापों का सबसे अधिक प्रभाव भी इसी क्षेत्र पर पड़ता है। आज महासागरों के तटीय क्षेत्र समुद्र के सबसे प्रदूषित क्षेत्र हैं।

अपने आरंभिक काल से आज तक महासागर जीवन के विविध रूपों को संजोए हुए हैं। पृथ्वी के विशाल क्षेत्र में फैले अथाह जल का भंडार होने के साथ महासागर अपने अंदर व आस-पास अनेक छोटे-छोटे नाजुक पारितंत्रों को पनाह देते हैं जिससे उन स्थानों पर विभिन्न प्रकार के जीव व वनस्पतियाँ पनपती हैं। समुद्र में प्रवाल भित्ति क्षेत्र ऐसे ही एक पारितंत्र का उदाहरण है जो असीम जैवविविधता का प्रतीक है। इसी प्रकार तटीय क्षेत्रों में स्थित मैन्ग्रोव जैसी वनस्पतियों से संपन्न वन समुद्र के अनेक जीवों के लिए नर्सरी का काम करते हुए विभिन्न जीवों को आश्रय प्रदान करते हैं।

### समुद्र और मौसम

धरती का मौसम निर्धारित करने वाले कारकों में महासागर प्रमुख हैं। समुद्री जल की लवणता और विशिष्ट ऊष्माधारिता का गुण पृथ्वी के मौसम को प्रभावित करता है। यह तो हम जानते ही हैं कि पृथ्वी की समस्त

*परियोजना अधिकारी, सी-24, विज्ञान प्रसार, कुतुब संस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली - 110 016.

ऊष्मा में जल की ऊष्मा का विशेष महत्व है। जितनी ऊष्मा एक ग्राम जल के तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि करेगी, उससे एक ग्राम लोहे का तापमान दस डिग्री बढ़ाया जा सकता है। अधिक विशिष्ट ऊष्मा के कारण समुद्री जल दिन में सूर्य की ऊर्जा का बहुत बड़ा भाग अपने में समा लेता है। इस प्रकार अधिक विशिष्ट ऊष्मा के कारण समुद्र ऊष्मा का भण्डारक बन जाता है जिसके कारण विश्व भर में मौसम संतुलित बना रहता है या यू कहें कि जीवन के लिए औसत तापमान बना रहता है। मौसम के संतुलन में समुद्री जल की लवणता जीवन के लिए एक वरदान है। पृथ्वी पर जलवायु के बदलने की घटना और समुद्री जल का खारापन आपस में अन्तःसंबंधित हैं। यह तो हम जानते ही हैं कि ठंडा जल, गर्म जल की तुलना में अधिक घनत्व वाला होता है। समुद्र में किसी स्थान पर सूर्य के ताप के कारण जल के वाष्पित होने से उस क्षेत्र के जल के तापमान में परिवर्तन होने के साथ वहाँ के समुद्री जल की लवणता और आसपास के क्षेत्र की लवणता में अंतर उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण गर्म जल की धाराएँ केवल इस कारण उत्पन्न होती हैं कि समुद्र का जल खारा है। क्योंकि यदि सारे समुद्रों का जल मीठा होता तो लवणता का क्रम कभी न बनता और जल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाली धाराएँ सक्रिय न होतीं। परिणामस्वरूप ठंडे प्रदेश बहुत ठंडे रहते और गर्म प्रदेश बहुत गर्म। तब पृथ्वी पर जीवन के इतने रंग न बिखरे होते क्योंकि पृथ्वी की असीम जैवविविधता का एक प्रमुख कारण यह है कि यहाँ अनेक प्रकार की जलवायु मौजूद है और जलवायु के निर्धारण में महासागरों का महत्वपूर्ण योगदान नकारा नहीं जा सकता है।

**लहरों का संसार**

संसार के महासागरों में लगभग 33 करोड़ घन मील पानी समाहित है। हम जानते ही हैं कि पानी की बूँद-बूँद से जीवन पोषित होता है। महासागरों का नाम आते ही हमारे दिमाग में पानी की बड़ी-बड़ी लहरों का दृश्य आता है। समुद्र की ऊपरी पर्त सूर्य की गर्मी से गर्म होती रहती है और हवाओं द्वारा उसका मंथन होता रहता हैं जिसके परिणामस्वरूप किनारों पर लहरों का जन्म होता है।

वास्तव में पानी की लहरें महासागरों की गतिशीलता को अभिव्यक्त करती हैं। महासागरों में लहरें उनकी सतह पर चलने वाली हवाओं के कारण बनती हैं। लेकिन लहरों के माध्यम से जल एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं जाता जैसा कि धाराओं के माध्यम से होता है। लहर तो जल की ऊपर-नीचे होने वाली गति मात्र है। हवा की गति सामान्य होने पर लहरों की ऊँचाई 2 से 5 मीटर तक होती है लेकिन वायु का वेग अधिक होने पर 10 से 12 मीटर तक ऊँची लहरें उठती हैं। लहरें वायुमंडल और महासागर के आपसी समन्वय का परिणाम होती हैं। महासागरों में जीवन की विविधता में महासागरीय धाराओं का योगदान अहम् है। जल के ऊपर या नीचे उठने के कारण विभिन्न पोषक तत्व एक स्थान से दूसरे स्थान तक वितरित होते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप समुद्र में जीवन चलता रहता है।

समुद्र की ऊपरी परत जीवन के लिए सबसे उत्पादक क्षेत्र हैं। इसी क्षेत्र में सूर्य की रोशनी के सहयोग से पानी के खनिजों से पादप प्लवकों द्वारा कार्बनिक पदार्थों का निर्माण होता है जो खाद्य शृंखला की पहली कड़ी होते हैं। मोटे तौर पर महासागरों का जल दो पर्तों में बाँटा जा सकता है। महासागर की ऊपरी पर्त का आयतन समस्त महासागरीय जल का लगभग दो प्रतिशत होता है। सूर्य के ताप और हवाओं के प्रभाव वाली यह पर्त विभिन्न महासागरीय गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। ऊपरी पर्त से पानी भाप बन कर पूरी पृथ्वी पर मीठे पानी के रूप में बरसता है। ये पानी थल पर जीवन का पोषण करते हुए नदियों-नालों के रूप में पुनःमहासागरों में आ मिलता है और अपने साथ लाता है कई प्रकार के खनिज व लवण। महासागरों की लवणता लाखों वर्षों की इसी प्रक्रिया का ही परिणाम है। वैसे समुद्री ज्वालामुखी जैसी गतिविधियाँ भी समुद्री लवणता में अपना योगदान देती हैं। अतः समुद्र में आपस में अन्तःसबंधित कई प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप नमक व अन्य खनिजों का सन्तुलन बना रहता है और जिससे समुद्र में जीवन निरन्तर चलता रहता है। इस पर्त की तुलना में निचली पर्त जो अधिकतर महासागरीय जल को रखती है, उसमें प्रायः तापमान नियत बना रहता है। निचली पर्त का तापमान –1 (शून्य से एक डिग्री नीचे) से लेकर 5 डिग्री सेल्सियस

**लहरों का असीम संसार**

के आसपास होता है। एक अनुमान के अनुसार निचली पर्त के पानी के एक परमाणु को ऊपरी पर्त तक पहुँचने के लिए लगभग 1000 साल का इंतजार करना पड़ता है। इस पानी का उदगम ध्रुवीय प्रदेशों में उपस्थित ऊपरी पर्त का पानी है जो कम तापमान के कारण अधिक घनत्व का होता है। इस पानी की लवणता भी स्थिर होती है। समुद्र के ऊपरी व निचली पर्त के बीचों-बीच एक और क्षेत्र होता है जो ऊपरी और निचले क्षेत्र के पानी के लिए एक अवरोधक का कार्य कर उन्हें आपस में मिलने से रोकता है। इस मध्य क्षेत्र में तापमान गहराई की ओर बहुत तेजी से कम होता जाता है और हम जानते हैं कि ठंडे पानी का घनत्व गर्म पानी की अपेक्षा अधिक होता है। परिणामस्वरूप, बीच का यह क्षेत्र ऊपरी पर्त के गर्म पानी व निचली पर्त के ठंडे पानी को आपस में मिलने से रोकता है।

**समुद्र में जीवन**

विशिष्ट स्थलाकृति व समुद्री जल के विशेष गुणों के कारण समुद्र में पृथ्वी की अपेक्षा अधिक संख्या में जीव-जन्तु मिलते हैं, अर्थात् समुद्र भी जैवविविधता का अथाह भंडार अधिक है। समुद्र में यद्यपि जीवों का घनत्व पृथ्वी की तुलना में अलग हो सकता है लेकिन समुद्र के तल और सतह यानि सभी स्थानों पर जीव-जन्तु पाए जाते हैं। इसके अलावा समुद्र में जीवों की विशेषताएं पृथ्वी की तुलना में बहुत अधिक हैं। समुद्र में जीवन को तीन विभिन्न बायोम क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है। समुद्र में ऊपरी पर्त यानि सतह से 200 मीटर तक सूर्य के ताप और हवाओं के प्रभाव के कारण जीवन अधिक पाया जा सकता हैं यह क्षेत्र कार्बन को सूर्य की रोशनी में जैविक पदार्थों में बदलने के हिसाब से सबसे अधिक उत्पादक क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र के जीव सूर्य के प्रकाश का उपयोग कर अपने लिए भोजन स्वयं बना लेते हैं। कई लोग समुद्र के इन क्षेत्रों की तुलना उत्पादन के स्तर पर थल पर उपस्थित वर्षा वनों से करते हैं। 200 मीटर से अधिक गहराई वाले क्षेत्र में जीवन की मात्रा ऊपरी पर्त की तुलना में कम होती है। समुद्री क्षेत्र में जीवन का सबसे दिलचस्प पहलू महासागरों की गहराई में स्थित जीवन से जुड़ा है। वास्तव में यह आश्चर्य का विषय है कि इतनी गहराई में भी जीवन विविध रूपों में मिलता है। इस क्षेत्र के जीवों के पोषण में ऊपरी क्षेत्र में रहने वाले जीवों का योगदान होता है। समुद्र की ऊपरी पर्त में रहने वाले जीवों के मृत अवशेष गहराई में स्थित जीवों के लिए पोषक तत्वों की वर्षा के रूप में गिरते रहते हैं जिनमें गहराई में रहने वाले जीवों का जीवन चक्र चलता रहता है। यहाँ न तो सूर्य का प्रकाश पहुँचता है और यहाँ पादप प्लवक जैसे प्राथमिक उत्पादक जीव भी अनुपस्थित होते हैं। यानि कि यहाँ एक पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र का अभाव है परन्तु फिर भी यहाँ जीवन पाया जाता है। समुद्र की अथाह गहराई में विशेष कर जहाँ पर ज्वालामुखी हलचल या गर्म पानी के स्रोत हैं वहाँ जीवन को फलते-फूलते देखना हैरानी की बात है। परन्तु यहाँ खाद्य शृंखला की शुरुआत ऐसे जीवाणुओं से होती है जो पानी में घुले रसायनों से ऊर्जा प्राप्त कर प्राथमिक उत्पादक की भूमिका निभाते हैं यहाँ ट्यूब वार्म व श्रिम्प जैसे जीव जन्तु पाए जाते हैं। समुद्र की गहराई में जहाँ प्रकाश नहीं पहुँचता है वहाँ जीवन चलाने के लिए कुछ जीवों द्वारा एक वैकल्पिक प्रणाली विकसित कर ली गई है जिसके कारण यह क्षेत्र जीवन के बहुरंगी रंगों से सरोबार होता है।

समुद्र में जीव न केवल आगे और पीछे वरन् ऊपर और नीचे भी गति कर सकते हैं। समुद्र में तीन प्रकार के जीव मिलते हैं – एक तो वो जो

**जैवविविधता के स्वर्ग-महासागर**

तैरते रहते हैं और दूसरे वो जो पानी में डोलते रहते हैं। तैरने वाले जीवों को तरणक और जल में डोलने वाले जीवों को प्लवक या प्लैंक्टान एवं समुद्र के तल पर या उसके पास रहने वाले जीवों को नितलीय जीव कहते हैं। तरणक और प्लवक जीवों में विभेद करना आसान नहीं है। उदाहरण के लिए मछलियों के बच्चे प्लवक होते हैं और बड़े होकर तरणक बन जाते है। प्रायः तरणक और प्लवक जीव खुले समुद्र में रहते हैं। नितलीय और तरणक जीव अपेक्षाकृत बड़े आकार के होते हैं। समुद्री जीवों में प्लवक

श्रेणी के जीवों की बहुलता होती है। हाँ, विकास के क्रम में पहले जीव समुद्र से धरती पर आए और पुनः समुद्र में ही लौट गए। सील, व्हेल, और वालरस जैसे स्तनधारी जीव इसी के उदाहरण हैं, परन्तु समुद्र का जीव होने के बाद भी आज जीवन की कुछ प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए इन जीवों को समुद्र के किनारों पर ही लौटना पड़ता है।

**समुद्र और प्राकृतिक संसाधन**

समुद्र में उपलब्ध संसाधनों को मुख्य रूप से चार भागों में रखा जाता है। पहले वर्ग में वे खाद्य पदार्थ हैं जो मानवों को खाने या पशुओं के चारे के रूप में समुद्र से उपलब्ध हो सकते हैं। दूसरे वर्ग में नमक सहित कई अन्य रसायन हैं। तीसरे वर्ग में समुद्री जल से प्राप्त होने वाले पदार्थ और पैट्रोलियम व कई अन्य रसायन शामिल हैं। चौथे वर्ग में समुद्र में उठने वाले ज्वार-भाटे व लहरों से प्राप्त ऊर्जा एवं समुद्र में लवणता के अन्तर से प्राप्त होने वाली ऊर्जा शामिल हैं।

समुद्र प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों का असीम स्रोत है। समुद्र में उपलब्ध शैवाल भी एक महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत है। कुछ प्रकार के शैवालों में आयोडिन उपस्थित होता है। कुछ शैवालों का उपयोग उद्योगों में भी किया जा सकता है। समुद्री जल अत्यंत समृद्ध संसाधनों में से एक है। समुद्री जल से औद्योगिक उपयोग के 40 से अधिक तत्व निकाले जा सकते हैं। काँच, साबुन और कागज बनाने के काम में आने वाले गूदे के लिए सोडियम सल्फेट का उपयोग किया जाता है, जिसे बहुत अधिक मात्रा में समुद्र के जल से निकाला जाता है। प्रतिवर्ष भारत में समुद्री जल से नमक निकालने के बाद बचे भाग में से लगभग चार लाख टन मैग्नीशियम सल्फेट, करीब 70 हजार टन पोटेशियम सल्फेट और सात हजार टन ब्रोमीन निकाला जा सकता है। मतलब यह कि समुद्री जल के संबंध में आम के आम और गुठलियों के भी दाम वाली कहावत सटीक बैठती है। समुद्र के तल पर छोटे-छोटे गोले के रूप में मैग्नीज, लोहा, तांबा, कोबाल्ट व निकल जैसे अन्य खनिज पड़े होते हैं। वर्तमान में विश्व के कुछ देश समुद्र की अथाह खनिज संपदा के दोहन के लिए सरल व सुविधाजनक तकनीक के विकास में कार्यरत हैं।

महासागर नमक का विशाल स्रोत हैं। नमक के अलावा, महासागरों में लगभग सौ तत्व और होते हैं। समुद्री जल में मिलने वाले कुछ प्रमुख पदार्थों में मैग्नीशियम, सल्फर, पोटेशियम, ब्रोमाइड व कार्बन हैं और समुद्री जल में सोना भी मिलता है लेकिन बहुत ही नगण्य मात्रा में। समुद्री जल में घुले हुए या उसमें तैरते हुए तत्वों के अतिरिक्त कई गैसें भी पाई जाती हैं। जल में घुली हुई गैसों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण गैस ऑक्सीजन हैं इस ऑक्सीजन का प्रयोग जल में रहने वाले अरबों पौधे और जीव साँस लेने के लिए करते हैं। ऑक्सीजन के अलावा नाइट्रोजन और कार्बन डाइऑक्साइड गैसें भी समुद्री जल में घुली रहती हैं। पानी में घुली कार्बन डाइआक्साइड गैस समुद्री जीवों के काम आती है। पादप वर्ग प्रकाशसंश्लेषण की प्रक्रिया में कार्बन डाइआक्साइड का उपयोग कर स्वयं के लिए व अन्य जीवों के लिए भोजन का निर्माण करता है।

खनिज संपदा के अलावा समुद्र से असीमित ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। समुद्र से ऊर्जा प्राप्त करने के कई स्रोत हैं। समुद्र नवीकरणीय या गैर परंपरागत ऊर्जा का अच्छा स्रोत साबित हो सकता है। ज्वार-भाटे और लहरों में छिपी ऊर्जा को किसी प्रकार से यदि उपयोग में लाया जाए तो विश्व की समस्त ऊर्जा आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। फ्रांस व रूस जैसे कुछ देशों में ज्वार-भाटे से बिजली पैदा की जा रही है। समुद्र में चलने वाली हवा और उसके जल की धाराओं की ऊर्जा का प्रयोग भी टर्बाइन चलाने और बिजली पैदा करने के लिए किया जा सकता है। कुछ वर्ष पूर्व समुद्री जल में लवणता की विभिन्नता के आधार पर बिजली प्राप्ति की तकनीक विकसित की जा रही है। इसके अलावा जल की विभिन्न तहों में तापमान की भिन्नता के कारण समाहित ऊर्जा, भविष्य में ऊर्जा का अच्छा स्रोत साबित हो सकती है।

भारत एक महत्वपूर्ण समुद्र तटीय राष्ट्र है यद्यपि हमारे देश का क्षेत्रफल पृथ्वी के क्षेत्रफल की तुलना में केवल ढाई प्रतिशत है लेकिन संसार की कुल आबादी का लगभग पंद्रह प्रतिशत भारत में रहता है। इस कारण भारत के लिए समुद्र का अधिक महत्व होना चाहिए। भारत विशाल समुद्री तटरेखा रखता है जिसका आर्थिक व जैवविविधता की धरोहर के रूप में उचित उपयोग किया जा सकता है। मैनग्रोव जैसे लवणसह वनस्पति क्षेत्र और प्रवाल भित्ति जैसे समृद्ध जैवविविधता वाले क्षेत्र भारतीय समुद्रीय क्षेत्र की विशेषता हैं। भारतीय समुद्री क्षेत्र खनिज संपदा और जैवविविधता से समृद्ध होने के अलावा भारत की ऊर्जा आवश्यकता को भी पूरा कर सकता है।

**महासागरों का बढ़ता खतरा**

वर्तमान में मानवीय गतिविधियों का प्रभाव समुद्रों पर दिखाई देने लगा है। महासागरों के तटीय क्षेत्रों में दिनोंदिन प्रदूषण का स्तर बढ़ रहा है। जहाँ तटीय क्षेत्र विशेष कर नदियों के मुहानों पर सूर्य के प्रकाश की पर्याप्तता के कारण अधिक जैवविविधता वाले क्षेत्रों के रूप में पहचाने जाते थे, वहीं अब इन क्षेत्रों के समुद्री जल में भारी मात्रा में प्रदूषणकारी तत्वों के मिलने से वहाँ जीवन संकट में है। तेलवाहक जहाजों से तेल के रिसाव के कारण एवं समुद्री जल के मटमैला होने पर उसमें सूर्य का प्रकाश गहराई तक नहीं पहुँच पाता, जिससे वहाँ जीवन को पनपने में परेशानी होती है और उन स्थानों पर जैवविविधता भी प्रभावित होती है। यदि किसी कारणवश पृथ्वी का तापमान बढ़ता है तो महासागरों की कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करने की क्षमता में कमी आएगी जिससे वायुमण्डल में गैसों की आनुपातिक मात्रा में परिवर्तन होगा और तब जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियों में असंतुलन होने से पृथ्वी पर जीवन संकट में पड़ सकता है। समुद्रों से तेल व खनिज के अनियंत्रित व अव्यवस्थित खनन एवं अन्य औद्योगिक कार्यों से समुद्री पारितंत्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध संस्था अंतर-सरकारी पैनल (इंटर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज,

आईपीसीसी) की रिपोर्ट के अनुसार मानवीय गतिविधियों से ग्लोबल वार्मिंग के कारण समुद्री जल स्तर में वृद्धि हो रही है और जिसके परिणामस्वरूप विश्व भर के मौसम में बदलाव हो सकते हैं।

पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति महासागरों में ही हुई और आज भी महासागर जीवन के लिए आवश्यक परिस्थितियों को बनाए रखने में सहायक हैं। महासागर पृथ्वी के एक तिहाई से अधिक क्षेत्रों में फैले हैं। इसलिए महासागरीय पारितंत्र में थोड़ा सा परिवर्तन पृथ्वी के समूचे तंत्र को अव्यवस्थित करने की सामर्थ्य रखता है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विश्व की लगभग 21 प्रतिशत आबादी महासागरों से लगे 30 किलोमीटर तटीय क्षेत्र में निवास करती है इसलिए अन्य जीवों के साथ-साथ मानव समाज के लिए भी प्रदूषण मुक्त महासागर कल्याणकारी साबित होंगे। इसके अलावा पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने वाले पारितंत्रों में समुद्र की उपयोगिता को देखते हुए यह आवश्यक है कि हम समुद्री पारितंत्र के संतुलन को बनाए रखें ताकि पृथ्वी पर जीवन की ज्योति जलती रहें।

पृथ्वी ग्रह को अन्य ग्रहों से जो पदार्थ अलग करता है वह है समुद्रों का पानी, जिसने उसकी 70 प्रतिशत सतह को ढक रखा है। यदि पृथ्वी की सतह हर जगह समतल होती तो पूरी पृथ्वी पर समुद्र की गहराई 2500 मीटर होती। समुद्र पृथ्वी पर जीवन के प्रतीक हैं। समुद्र में ही जीवन की शुरुआत हुई और आज भी वहाँ जैवविविधता की अधिकता है। समुद्र सूक्ष्मजीव से लेकर पृथ्वी के सबसे विशालकाय जीव ब्लू व्हेल का निवास स्थान है। जीवन की विविधता को संजोए हुए समुद्र पृथ्वी के मौसम को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण तंत्र है। पृथ्वी पर ऊर्जा का संचरण एक स्थान से दूसरे स्थान तक करने में समुद्रों की अहं भूमिका है। समुद्र को पृथ्वी का ऊष्मागृह और कार्बन डाइऑक्साइड गैस का भंडारगृह भी कहा जाता है।

समुद्र जल का प्रत्येक कण हमें एक कहानी सुनाने की चेष्टा करता है। इन जल कणों का इतिहास अनादि और अतंत हो सकता है। ये बूँदें कभी उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव में जमी बर्फ के रूप में रही हों या उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में भाप के रूप में उपस्थित रही हों। जल की इस हलचल का कारण सूर्य है। भूमि की तरह महासागरों की ऊष्मा का आधार भी सूर्य ही है। महासागरों में सबसे अधिक ऊष्मा उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में होती है और सबसे कम ध्रुवीय क्षेत्रों में। महासागरों में तापमान का प्रभाव समुद्री जल की लवणता, उसमें घुली हुई गैसों और उसके अन्य रासायनिक गुणों पर दृष्टिगोचर होता है। तापमान के अधिक होने पर समुद्री जल में घुली गैसों की मात्रा कम हो जाती है। वर्तमान में वैश्विक गर्माहट यानि ग्लोबल वार्मिंग के चलते ध्रुवीय बर्फ के पिघलने के कारण समुद्रों के जलस्तर में वृद्धि दर्ज की गई है।

समुद्र की सतह पर जो जल वाष्प बन कर उड़ जाता है उसके दो लाभ होते हैं, एक तो यह कि जब वह वाष्प वायुमंडल में फैलती है तो ऊष्मा समुद्र से दूर हट जाती है और दूसरा यह कि वायुमंडल में यह भाप ऊष्मा

**महासागरों पर मडराता प्रदूषण का खतरा**

को इकट्ठा करती है। यह तो हम जानते ही हैं कि वाष्प के रूप में जल सामान्य जल की तुलना में अधिक गतिशील होता है। इस प्रकार जो ऊष्मा एक स्थान पर जल में समा जाती है वह वायु के वेग से दूर-दूर के स्थानों तक पहुँच जाती है और इस प्रकार धरती पर ताप का वितरण होता रहता है।

अगर किसी कारण से समुद्रों में जीवन रुक जाए तो हमारे वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा तिगुनी हो जाएगी। समुद्र के असंख्य जीव अपने शरीर की संरचना में कार्बन का उपयोग करते हैं जिसके परिणामस्वरूप समुद्र के ऊपरी जल व वायुमण्डल की अपेक्षा लगभग 45 गुना कार्बन समाया हुआ है। पृथ्वी का 70 प्रतिशत हिस्सा समुद्र ही है लेकिन अभी इसके कई रहस्यों से पर्दा उठना बाकी है।

असल में महासागर हमारे भावी विकास के आधार है। लेकिन हमें इस बात को याद रखना होगा कि भूमि पर बढ़ते दबाव को देखते हुए महासागरों के संसाधनों का समुचित एवं मितव्ययता के साथ उपयोग करें ताकि महासागर दोहन का शिकार न बनने पाएँ। असल में इस पृथ्वी पर महासागर जीवन को चलायमान बनाए रखने वाले कारकों में सबसे प्रमुख है इसलिए हमें इनके संरक्षण के साथ ही इनके मूल स्वरूप को बनाए रखने में अपना योगदान देना होगा।

# यूनीकोड से फोनीकोडः श्रुति क्रांति की ओर

डॉ0 ओम विकास *

भारतीय भाषाएँ ध्वन्यात्मक (Phonetic) हैं। सभी भारतीय भाषाओं के लिए वर्णक्रम साम्य आई एस सी आई आई (ISCII) राष्ट्रीय कोड बनाया गया है। इस 8-बिट कोड में अंग्रेजी और एक भारतीय भाषा समाहित थी और भाषा बदल ए एल टी (ALT) कुंजी से। लगभग 15 बड़ी आईटी कंपनियों के संयुक्त प्रयास से विश्व भाषाओं के लिए 16 बिट यूनीकोड कोड बनाया गया। इसमें भाषा-बदल की जरूरत ही नहीं है। लेकिन यह लिपि पर आधारित है, जो-जो रूपिम आकृतियाँ अलग से प्रयोग में आती हैं उन्हें कोड में जगह दी गई है। 1991 में 9 कंपनियों ने यूनीकोड कंसोर्शियम बनाया। इसमें 2009 में 11 पूर्ण सदस्य, 4 संस्थागत, 27 एसोशिएट सदस्य हैं। भारत सरकार का सूचना प्रौद्योगिकी विभाग 2000 में सदस्य बना।

**यूनीकोड प्रतीक**

यूनीकोड (UNICODE) में इंटरनेशल फोनेटिक एल्फाबेट (IPA) के संप्रतीक अलग-अलग पेजों में है, किसी विशेष क्रम में नहीं है। पर्याप्त भी नहीं हैं। इसलिए प्रस्तावित है फोनीकोड। इसकी मूल प्रेरणा ध्वन्यात्मक नागरी लिपि से मिली। ''जैसा सुनो वैसा लिखो'', ''जैसा लिखा वैसा बोला'' सिद्धांत नागरी लेखन में है। ध्वनि उच्चारण में उच्चारण का स्थान और उच्चारण की विधि मुख्य है। उच्चारण के स्थान (P) के अनुसार कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य, ओष्ठ्य 5 ध्वनि प्रकार माने गए हैं। उच्चारण की विधि (Manner of articulation) (M) के अनुसार गले से वायु और विवर फैलाव के कम-अधिक होने के आधार पर अथवा नाक से वायु-निःसरण के अनुसार 6 ध्वनि प्रकार माने गए- [(अल्प प्राण – अघोष) /(अप्र – अघ)], [(महाप्राण – अघोष) / (मप्र – अघ)], [(अल्पप्राण – घोष) / (अप्र – घ)], [(महाप्राण – घोष) / (मप्र – घ)], नासिक्य, अलिजिह्वा। इन ध्वनियों को व्यंजन कहा गया। व्यंजनों को स्वर ध्वनियों से मोड्युलेट कर सकते हैं। उच्चारण स्थान के आधार पर 5 प्रकार की स्वर ध्वनियाँ हैं। स्वर ध्वनियाँ हस्व, दीर्घ हो सकती हैं। स्वर ध्वनियाँ परस्पर योग से व्युत्पन्न स्वर ध्वनियाँ 4+4 बनेंगी। 'अ' की स्वर ध्वनि को आदि स्वर और 'उ' की स्वर ध्वनि को मध्य स्वर और 'म' की व्यंजन ध्वनि को व्यंजनांत मानें तो (अ – उ – म) ध्वनि संयोग सभी ध्वनियों का द्योतक है, अथगत होने पर सभी संकल्पनाओं (Concepts) का।

पाणिनी ने स्वर और व्यंजन समूहों को उच्चारण स्थान और विधि के अनुसार अलग-अलग वर्गीकृत किया है। ध्वन्यात्मक नागरी वर्णमाला को पाणिनी सारणी (Panini Table) में दिखा सकते हैं। जिस प्रकार रसायन विज्ञान में मेंडलीफ टेबल परमाणु क्रम को दर्शाती है जिससे रासायनिक यौगिक क्रियाओं को समझना आसान होता है, उसी प्रकार ध्वनि यौगिकों को पाणिनी टेबल से समझना आसान होगा। वर्गीकरण से अन्य संभावित ध्वनियों को जोड़ना भी आसान है।

**कम्प्यूटर स्क्रीन, सीपीयू, की-बोर्ड और माउस**

व्यंजन के तीन उच्चारण भेद मान लें जिनमें अंतर समझना मानव कानों से ही संभव हैं। इसी प्रकार मूल स्वर और व्युत्पन्न स्वर (ए, ओ) के तीन उच्चारण भेद अल्प, ह्स्व, दीर्घ मान सकते हैं, इन्हें सुनकर अंतर समझ सकते हैं। संयुक्त 'स्वर + अ' व्युत्पन्न ध्वनियाँ व्यंजन की भाँति हैं। इस प्रकार पहचाने जाने वाली स्वनिम/अक्षर ध्वनियों को नागरी लिपि के रूपिमों से प्रदर्शित कर सकते हैं।

अल्प नासिक्य ध्वनि को अनुस्वार ं का रूपिम और अल्प

*सी-15, तरंग आपार्टमेंट्स, 19, आई पी एक्सटेंशन, दिल्ली - 110 092.


ISSN 2231-2455

पाणिनी सारणी (Panini Table)

P = (P1,P2,,P3,P4,P5), M = (M1,M2,M3,M4,M5,M6)

| | | व्यंजन | | | | | | स्वर | | | | | स्वरांत |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | अप्र-अघ | मप्र-अघ | अप्र-घ | मप्र-घ | नासिक्य | अलि जिह्वा | व्युत्पन्न | व्युत्पन्न | व्युत्पन्न | मूल | मूल | |
| | | M1 | M2 | M3 | M4 | M5 | M6 | व्यंजन स्वर | दीर्घ | ह्स्व | ह्स्व | दीर्घ | मात्रा |
| कंठ | P1 | क | ख | ग | घ | ङ | ह | - | - | - | अ | आ | ◌ा |
| तालु | P2 | च | छ | ज | झ | ञ | श | य (इ+अ) | ऐ | ए (अ+इ) | इ | ई | ◌ि ◌ी |
| मूर्ध | P3 | ट | ठ | ड | ढ | ण | ष | र (ऋ+अ) | - | - | ऋ | ॠ | ◌ृ ◌ॄ |
| दंत | P4 | त | थ | द | ध | न | स | ल (ऌ+अ) | - | - | ऌ | ॡ | - |
| ओष्ठ | P5 | प | फ | ब | भ | म | - | व (उ+अ) | औ | ओ (अ+उ) | उ | ऊ | ◌ु ◌ू ◌ॅ ◌ॆ |

P = उच्चारण के स्थान, M = उच्चारण की विधि

अलिजिह्वा ध्वनि को विसर्ग ◌ः का रूपिम दिया गया है। इन्हें स्वर श्रेणी में रखा गया है। स्वनिम - रूपिम का 1:1 (एक प्रति एक) निरूपण नागरी लिपि की विशेषता है। स्वर-स्वर, व्यंजन-स्वर, व्यंजन-व्यंजन – स्वर संयोजन से जो स्वतंत्र ध्वनियाँ व्युत्पन्न होती हैं, उन्हें अक्षर कहते हैं। अक्षर का अंत किसी स्वर से होता है। यह स्वर तीन रूपों में हो सकता है– स्वर, स्वर-अनुस्वार, स्वर-विसर्ग। हलन्त को व्यंजन के साथ स्वरहीन योग मान सकते हैं। अक्षरांत को नए रूपिम मात्रा से दिखाते हैं। व्यंजन को हलन्त के साथ दिखाते हैं, जैसे- क्, ग् च् .....म् ....ह्..... इन्हें शुद्ध व्यंजन भी कह सकते हैं।

वर्ण = < स्वर, व्यंजन >

अक्षर = <स्वर, व्यंजन * स्वर >

A* = <A/AA/AAA/> व्युनरावृत्ति दर्शाता है

स्वर = < मूल स्वर (अल्प, ह्रस्व, दीर्घ), व्युत्पन्न स्वर (अल्प, ह्रस्व, दीर्घ) >

अकारांत व्यंजन = < क ..... म, ..... ह, य ..... व >

संयुक्ताक्षर = < क्व, क्ष, ज्ञ, प्र, श्र..... >

स्वरांत/मात्रा = < ◌ा◌ि..... ◌ु ◌ौ ◌ं ◌ः >

(ह्रस्व) मूल स्वर = < अ, इ, उ, ऋ, ऌ >

अल्प स्वर = < ॲ ऍ ऑ..... >

दीर्घ स्वर = < आ, ई, ऊ, ऐ, औ >

व्युत्पन्न स्वर = < ए, ऐ, ओ, औ > .....

ध्वनियों को और गहराई से भेद करके निरूपण हेतु अलग-अलग रूपिम संप्रतीक भी दिये जा सकते हैं। संस्कृत में यह भेद किया जाता है, जिससे उच्चारण शुद्ध रहे।

इन ध्वनियों को कोडित करने के लिए व्यंजनों के लिए

$(25+4+4) \times 3 = 87 \Rightarrow 90$ कोड प्वाइंट

स्वरों के लिए

$(5+1) \times 3 + 2 = 20$ कोड प्वाइंट

कोडन सुविधा एवं व्यावहारिकता की दृष्टि से व्यंजन भेद दो प्रकार के ही होते हैं, तो

(व्यंजन-स्वर) अक्षर $= (20 \times 2) \times 20 = 1160$

(द्वि व्यंजन-स्वर) अक्षर $= 2 \times [(29 \times 29) \times 20] = 33640$

इनमें से लगभग 10 % अर्थात 3400 व्यावहारिक होंगे।

(त्रि व्यंजन-स्वर) अक्षर $= (29 \times 29 \times 29) \times 20 = 487780$

इनमें से लगभग 0.1% अर्थात् 500 व्यावहारिक होंगे = 500

इस प्रकार 1160 + 90 +20 = 1270 सामान्य अक्षर 3400 + 500 = 3900 संयुक्ताक्षर ध्वनियों और लगभग 500 भावात्मक (Emotional) विशिष्ट ध्वनियों को भी फोनीकोड में कोडित कर सकते हैं। विशिष्ट संप्रतीकों को फोनीकोड में देख सकते हैं। फोनीकोड से यूनीकोड में परिवर्तित कर टैक्स्ट प्रिंट कर सकते हैं। स्पीच टू टैक्स्ट। यूनीकोड से फोनीकोड में परिवर्तित करके टैक्स्ट से स्पीच तैयार कर सकते हैं। फोनीकोड के हर कोड प्वाइंट के लिए स्पीच वेब फार्म संग्रहीत

रहेगी। इस प्रकार नेचुरल (स्वाभाविक) स्पीच बनाने में आसानी होगी। स्वर विज्ञानी, भाषाविद् और कंप्यूटर स्पीच विशेषज्ञ की टीम फोनीकोड का मानक तैयार कर सकते हैं। भारतीय भाषाओं के लिए यह बहुत उपयोगी और आसान होगा।

**की-बोर्ड**

स्पीच से स्पीच अनुवाद में फोनीकोड का प्रयोग उपयोगी होगा। फोनीकोड से यूनीकोड में बिना कन्वर्ट किए भी कंटेट स्टोर कर सकते हैं, इसमें मेमोरी भी कम लगेगी। 16-बिट कोड सभी भाषाओं के लिए उपयुक्त होगा। अक्षर (Syllable) कोडन होने से मेमोरी की आवश्यकता अनुमानतः एक तिहाई हो जाएगी। प्रोसेसिंग स्पीड भी बढ़ जाएगी। 19वीं सदी में औद्योगिक क्रांति में मशीनीकरण से उत्पादकता बढ़ी। 1930 के दशक से इलेक्ट्रोनिक संचार और 1940 के दशक से कम्प्यूटर के आविष्कार से सूचना क्रांति का सूत्रपात हुआ। मानव-मशीन के बीच संवाद मुख्यतः की-बोर्ड के माध्यम से होता रहा है।

**कम्प्यूटर क्रांति**

दो दशकों से प्रयास किए जा रहे हैं कि मानव-बोल मशीन समझ ले। यूनीकोड से विश्वभाषाओं को एक साथ रखा जा सका। फोनीकोड से मशीन मानव-बोल समझ सकेगी और मानव जैसा बोल सकेगी। इस प्रकार श्रुति क्रांति का आरंभ होगा।

**फुकुशिमा न्यूक्लियर पावर प्लांट**

**उत्परिवर्तित टमाटर, पीच का फल, मूली, सूरजमुखी का पुष्प तथा विकृत तितली**

## जापान की उत्परिवर्तित सब्जियाँ : फुकुशिमा न्यूक्लियर नाभिकीय उत्सर्जन ( फॉलआउट ) का प्रभाव

जापान में फुकुशिमा न्यूक्लियर प्रतिवर्ती के उत्सर्जन के बड़े विनाशकारी प्रभाव सामने आये हैं। न्यूक्लियर प्लान्ट के पास के वृद्ध पुरुषों की मृत्यु दर लगभग तिगुनी पायी गई है तथा उन बच्चों की संख्या बढ़ गई जिनके पैर सपाट थे, जो उनके विकिरण प्रभावित मिट्टी पर खेलने के वजह से हुई। इन विकिरण के दूर तक फैलने की वजह से अन्य देशों के बच्चों में भी विकृतियाँ पायी गईं। इस फालआउट का प्रभाव खाद्य-शृंखला पर भी पाया गया। अनेक सब्जियों पर इसका विचित्र प्रभाव देखा गया। इनमें टमाटर के ऊपर पिण्ड की तरह के आकार का बनना, पीच का डंबल आकार का हो जाना, पत्ता गोभी का असामान्य रूप से बड़ा होना, पाँच ऊँगलियों के आकार की मूली तथा उत्परिवर्ती सूरजमुखी जैसे प्रभाव शामिल हैं। यहाँ तक कि तितलियों में शरीर दो हिस्सों में बँटा पाया गया। यद्यपि अभी इस बात को पूरी तरह से सिद्ध नहीं किया जा सका है कि ये विकृतियाँ न्यूक्लियर महाविपदा की वजह से ही हुई हैं? क्योंकि फुकुशिमा न्यूक्लियर प्लान्ट के पास की जमीनी जल में कुछ जहरीले रेडियोएक्टिव आइसोटोप पाये गये हैं। इस प्रदूषित पानी की वजह से पर्यावरण को भी खतरा उत्पन्न हो गया है।

**प्रो. शशि भूषण अग्रवाल,** आचार्य, वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

# स्वर्ण जयन्ती वर्ष में भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम

डॉ0 कृष्ण कुमार मिश्र *

वर्ष 2013 भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का स्वर्णजयन्ती वर्ष है। 21 नवम्बर 1963 को भारत ने एक 'छोटा-सा' राकेट छोड़कर अंतरिक्ष में एक 'बड़ा कदम' रखा था। पिछले पचास बरसों में भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम ने एक लम्बा सफर तय किया है। चाँद तक पहुँचने के बाद अब मंगल के लिए प्रस्थान करने की तैयारी चल रही है। भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की यह यात्रा बड़ी ही रोचक तथा प्रेरणादायी है। इसके पीछे सुविख्यात वैज्ञानिक डॉ0 विक्रम साराभाई की दूरदृष्टि तथा कल्पना की अप्रतिम भूमिका है। उन्हें प्रायः भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का शिल्पकार कहा जाता है। बात सन् 1961 की है जब डॉ0 साराभाई ने अंतरिक्ष कार्यक्रम की एक विस्तृत योजना भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 जवाहरलाल नेहरू को सौंपी थी। नेहरूजी को यह योजना पसंद आयी तथा भारत सरकार द्वारा उसे स्वीकार कर लिया गया। सन् 1962 में परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत अंतरिक्ष अनुसंधान समिति का गठन किया गया। डॉ0 साराभाई को इस समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

नाइक अपाचे

रोहिणी - 75

अंतरिक्ष कार्यक्रम की स्थापना के साथ डॉ0 साराभाई को एक उचित स्थान की तलाश थी जहाँ से राकेट अंतरिक्ष में भेजे जा सकें। वह जगह चुनी गयी केरल की राजधानी तिरुवनन्तपुरम के पास भारतीय प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर स्थित चुम्बा में। यहाँ से देश के पहले राकेट के छोड़ने की तैयारियाँ चल रही थीं। उस दौरान भारत के छह वैज्ञानिकों को अमेरिकी अंतरिक्ष संस्था 'नासा' में साउंडिंग राकेट के प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। इनमें हमारे निवर्तमान राष्ट्रपति तथा मिसाइलमैन के नाम से सुप्रसिद्ध डॉ0 ए.पी.जे.अब्दुल कलाम भी शामिल थे। साउंडिंग राकेट वायुमंडल के अध्ययन के लिए छोड़े जाते हैं। भारत ने 21 नवम्बर 1963 को अमेरिका से प्राप्त 'नाइक अपाचे' नामक पहले साउंडिंग राकेट को थुम्बा से छोड़कर अपने अंतरिक्ष अनुसंधान की शुरुआत की। सन् 1965 में थुम्बा में अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी केन्द्र की स्थापना की गयी तथा उसके दो वर्ष बाद ही अहमदाबाद में उपग्रह दूरसंचार भूकेन्द्र स्थापित किया गया। देश के वैज्ञानिक राकेट प्रौद्योगिकी तथा ईंधन विकसित करने में लगे रहे। उन्होंने 20 नवम्बर 1967 को थुम्बा से रोहिणी-75 नामक स्वेदेशी राकेट का प्रक्षेपण किया।

डॉ0 विक्रम साराभाई

15 अगस्त 1969 को डॉ0 साराभाई की अध्यक्षता में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) की स्थापना की गयी। इसके साथ ही देश में उपग्रहों तथा उन्हें अंतरिक्ष में भेजने के लिए राकेटयान विकसित करने का फैसला लिया गया। भविष्य के राकेटों के प्रक्षेपण के लिए आंध्र प्रदेश स्थित श्रीहरिकोटा रेन्ज को नए प्रमोचन केन्द्र के रूप में विकसित किया गया। शुरू में इसरो द्वारा ऐसे राकेट तैयार करने की योजना बनायी गयी जिससे लघु उपग्रहों को पृथ्वी की नजदीकी कक्षा में भेजा जा सके। इन्हें सैटेलाइट लांच वेहिकल यानी एस एल वी कहा गया।

### प्रक्षेपण प्रणालियों तथा उपग्रहों का विकास

यद्यपि भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की आधारशिला विक्रम साराभाई ने रखी लेकिन उसे आगे बढ़ाने में डॉ0 कलाम तथा प्रो0 सतीश धवन का बहुमूल्य योगदान है। डॉ0 कलाम एस एल वी-3 कार्यक्रम के प्रमुख थे। उनकी टीम द्वारा विकसित राकेट का 10 अगस्त 1979 को किया गया पहला परीक्षण तो असफल रहा किन्तु अगले ही वर्ष 18 जुलाई को किया गया दूसरा परीक्षण पूरी तरह सफल रहा। इस राकेट ने रोहिणी नामक 35 किलोग्राम के उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया। एस एल वी की बाद की उड़ानें भी सफल रहीं। इन सफलताओं के बाद और ज्यादा शक्तिशाली राकेटों के विकास पर बल दिया गया। इन्हें आग्मेंटेड सैटेलाइट लांच वेहिकल यानी ए एस एल वी कहा गया। ए एस एल वी भारत का एक महत्वपूर्ण प्रमोचन यान है जो तकनीकी क्षमताओं के प्रदर्शन और उनके वैधीकरण के लिए बनाया गया।

ए एस एल वी

*होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, वी.एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द, मुम्बई- 400 088.

इसे कम लागत के मध्यवर्ती यान के रूप में विकसित किया गया। इसकी 1997 तथा 88 में की गयी पहली दो उड़ानें सफल नहीं रहीं लेकिन तीसरी उड़ान कामयाब रही तथा उसने 'स्ट्रॉस-सी' नामक उपग्रह को अंतरिक्ष में स्थापित कर दिया।

ए एस एल वी की सफलता के बाद और भी ज्यादा शक्तिशाली पोलर सैटेलाइट लांच वेहिकल, पी एस एल वी का विकास किया गया। यह नया राकेट चार खंडों का बना था। पी एस एल वी की 1994 से लेकर अब तक की समस्त उड़ानें सफल रही हैं। इसने सफलता के कीर्तिमान बना दिए हैं। इस राकेट के जरिए सुदूर संवेदन के क्षेत्र में राष्ट्र ने बहुत शोध किया है। अब तक इसकी कुल 23 उड़ानें हो चुकी हैं और भारत तथा दूसरे देशों के अनेक उपग्रह अंतरिक्ष में पहुँचाए जा चुके हैं। विगत 9 सितंबर 2012 का दिन भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम में स्वर्णिम दिन था जब इसरो के पीएसएलवी सी-21 राकेट ने फ्रांस तथा जापान के दो उपग्रहों को सफलतापूर्वक कक्षा में स्थापित कर दिया। इस तरह भारत ने मिशन भेजने का शतक पूरा कर लिया। अब तक भारत ने स्वदेशी राकेटों के जरिए कुल 62 देशी तथा 35 विदेशी उपग्रह अंतरिक्ष में प्रेषित किए हैं।

भारत को उपग्रहों के निर्माण में भी कुशलता प्राप्त है। देश का पहला कृत्रिम उपग्रह आर्यभट्ट 1975 में रूस के रॉकेट के जरिए छोड़ा गया। देश में ही डिजाइन तथा विकसित इस उपग्रह का भार 368 किलोग्राम था। उसकी अपेक्षित आयु छह साल थी। लेकिन वह 17 वर्षों तक राष्ट्र को अपनी सेवाएँ देता रहा। उसके बाद कहीं भारी तथा समुन्नत भास्कर-1 तथा भास्कर-2 का रूसी प्रक्षेपणयान से भेजा गया। ये भारत के शुरुआती सुदूर संवेदन उपग्रह थे जिन्हें क्रमशः 7 जून 1979 तथा 20 नवम्बर 1980 को अंतरिक्ष में भेजा गया।

ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान जिसे संक्षेप में पी एस एल वी कहा जाता है, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा संचालित एक महत्वाकांक्षी प्रक्षेपण प्रणाली है। पीएसएलवी की ऊँचाई 44.4 मीटर है और इसके चार चरण हैं जो एकांतर से ठोस एवं द्रव नोदन प्रणालियों का उपयोग करते हैं। इसके प्रथम चरण में 138 टन नोदक होता है जो विश्व के वृहद् ठोस नोदक बूस्टरों में से एक माना जाता है। इसके छह ठोस स्ट्रैप-ऑन नोदक मोटर हैं जिनमें से प्रत्येक में बारह टन ठोस नोदक होता है। दूसरे चरण में 41.5 टन द्रव नोदक रहता है तीसरे चरण में 7.6 टन ठोस नोदक रहता है तथा चौथे में 2.5 टन द्रव नोदक सहित जुडवाँ इंजन रहता है। इसी ताकतवर राकेट ने भारत के चन्द्रयान-1 मिशन को सफलतापूर्वक चाँद तक पहुँचाया था।

पी एस एल वी

22 अक्टूबर 2008 का दिन देश के लिए बहुत मायने रखता है जब सुबह 6 बजकर 20 मिनट पर भारत के चन्द्रयान-1 का सफल प्रक्षेपण

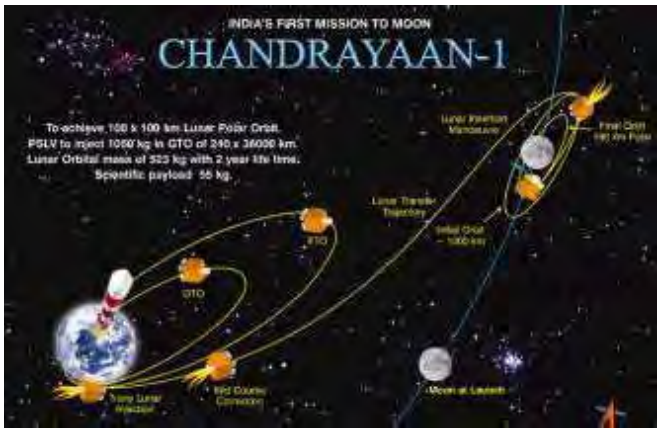

चन्द्रयान-1

किया गया। विज्ञान के क्षेत्र में देश की प्रतिष्ठा को चार-चाँद लगाने वाली यह एक अभूतपूर्व घटना थी। 8 नवम्बर 2008 को इसे चाँद की कक्षा में 100 किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थापित किया गया। फिर इसके बाद 14 नवम्बर 2008 को इस मिशन से 'मून इंपैक्ट प्रोब' नामक उपकरण को चन्द्रमा के धरातल पर सफलतापूर्वक उतारा गया। इस उपकरण ने धरातल पर मौजूद रसायनों के विश्लेषण से वहाँ जल होने का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किया। चन्द्रयान-1 मिशन 30 अगस्त 2009 तक काम करता रहा। इस उपलब्धि को अमेरिका सहित तमाम देशों ने सराहा। भारत अब चन्द्रयान-2 पर काम कर रहा है जिसे आने वाले दिनों में प्रक्षेपित किया जाएगा। चन्द्रयान मिशन की सफलता ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में भारत की योग्यता सिद्ध कर दी है। भारत अब एशिया के देशों, मसलन चीन और जापान की बराबरी में खड़ा हो गया है। चन्द्रयान के सफल प्रक्षेपण के साथ ही भारत दुनिया का छठाँ देश बन गया है जिसने चाँद के लिए अपना मिशन भेजा है।

### चन्द्रयान-2

चन्द्रयान-2, भारत का दूसरा मिशन है जो चन्द्रमा पर भेजा जाएगा। इसमें एक आर्बिटर, लैंडर तथा रोवर शामिल होगा। भारत के भूस्थिर उपग्रह प्रक्षेपण यान (जी एस एल वी-मार्क III) के द्वारा प्रमोचित इस यान में इसरो द्वारा निर्मित आर्बिटर तथा रोवर और रूसी अंतरिक्ष एजेंसी (रोसकोमॉस) द्वारा निर्मित लैंडर शामिल होगा। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य आर्बिटर पर स्थित यंत्रों के उपयोग से चंद्रमा के मूल तथा विकास के बारे में और अधिक जानकारी जुटाना तथा लैंडर एवं रोवर का प्रयोग करते हुए लूनर नमूने को विश्लेषण करना है।

आर्बिटर के साथ 5 पेलोड भेजे जाने वाले हैं जो निम्न हैं-

1- चन्द्र सतह पर मौजूद प्रमुख तत्वों के मानचित्रण के लिए इसरो उपग्रह केन्द्र (ISAC), बंगलौर से लार्ज एरिया सॉफ्ट एक्स-रे स्पेक्ट्रोमीटर (क्लास) और फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी (PRL), अहमदाबाद से सोलर एक्स-रे मॉनिटर (XSM)।

2- चन्द्र सतह पर वॉटर आइस (हिमजल) सहित अन्य तत्वों की खोज के लिए स्पेस एप्लीकेशन सेंटर (SAC) अहमदाबाद से एल (L) और एस (S) बैंड सिंथेटिक एपर्चर राडार (SAR)। SAR से चन्द्रमा के


ISSN 2231-2455

छायादार क्षेत्रों के नीचे हिमजल की मौजूदगी की पुष्टि करने वाले और अधिक साक्ष्य प्रदान किये जाने की उम्मीद है।

3- खनिज, पानी तथा हाइड्रॉक्सिल की मौजूदगी संबंधी अध्ययन हेतु चन्द्रमा की सतह के काफी विस्तृत हिस्से का मानचित्रण करने के लिए SAC, अहमदाबाद से इमेजिंग आई.आर. स्पेक्ट्रोमीटर (IIRS)।

4- चन्द्रमा के बहिर्मंडल के विस्तृत अध्ययन के लिए अंतरिक्ष भौतिकी प्रयोगशाला (SPL), तिरुअनंतपुरम से न्यूट्रल मास स्पेक्ट्रोमीटर (ChACE2)।

5- चन्द्रमा के खनिज-विज्ञान तथा भू-विज्ञान के अध्ययन के लिए आवश्यक त्रिआयामी मानचित्र को तैयार करने के लिए SAC, अहमदाबाद से टेरेन मैपिंग कैमरा-2 (TMC-2)।

भारतीय रोवर के लिए चुने गये निम्नांकित दो पेलोड लैडिंग क्षेत्र के आसपास चन्द्र सतह का तात्विक विश्लेषण करेंगे।

1- लेबोरेट्री फॉर इलेक्ट्रो-ऑप्टिक सिस्टम्स (LEOS), बंगलौर से लेजर इंड्यूस्ड ब्रेकडाउन स्पेक्ट्रोस्कोप (LIBS)।

2- PRL, अहमदाबाद से अल्फा पार्टिकल इंड्यूस्ड एक्स-रे स्पेक्ट्रोस्कोप (APIXS)।

चन्द्रयान-2 अभियान में एककक्षी यान/अवतरण/भ्रमण विन्यास की योजना है। मिशन के वर्ष 2013 में ही साकार होने की उम्मीद है। अभियान का वैज्ञानिक लक्ष्य कक्षीयान पर मौजूद उपकरणों का उपयोग करते हुए चंद्रमा के उद्‌भव और विकास के बारे में हमारी जानकारी तथा समझ में सुधार करना तथा रोबोट/रोवरों का उपयोग करते हुए चंद्रमा के आवरण प्रस्तर गुणों का अध्ययन करना है।

**मंगल की ओर प्रयाण**

भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम चाँद तक ही सीमित नहीं है। उसने अब मंगल ग्रह की ओर भी रुख किया है। भारत अपना मंगल अभियान नवंबर 2013 में भेजने की तैयारी में जुटा है। कुल 450 करोड़ रुपये का यह अभियान भारत को उन पाँच चुनिंदा देशों की कतार में ला खड़ा करेगा जो ऐसे अभियान पूरा कर चुके हैं। इनमें अमेरिका, रूस, फ्रांस, चीन और जापान शामिल हैं। 'इसरो' के अनुसार उसके अत्याधुनिक प्रक्षेपण यान 'पी एस एल वी-एक्स एल' का इस्तेमाल नवंबर 2013 में शुरू होने वाले इस मंगल अभियान के लिए किया जाएगा। मंगल अभियान में इस्तेमाल होने वाले आर्बिटर का निर्माण चंद्रयान- 1 तर्ज पर किया जा रहा है। इसका कुल वजन 1350 किलोग्राम है। आर्बिटर के निर्माण कार्यों की समीक्षा की जा रही है और पूरी कोशिश की जा रही है कि इसे अक्टूबर 2013 तक तैयार कर लिया जाए। यान की निगरानी के लिए नियंत्रण केन्द्र में सभी तैयारियाँ की जा रही हैं तथा दुनिया के अन्य देशों में स्थित नियंत्रण कक्षों में भी सहयोग के लिए संपर्क किया जा रहा है।

पी एस एल वी-एक्स एल ''मार्टिन''

मंगल ग्रह

इस अभियान के लिए नवबंर 2013 समय चुना गया है क्योंकि इस समय मंगल ग्रह धरती के करीब होगा। ऐसी खगोलीय घटना 27 वर्षों में एक बार घटित होती है। मंगलयान का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या वहाँ जीवों के जीवन के लिए अनुकूल स्थितियाँ हैं? मंगलयान ग्रह की मिट्टी के नमूनों को इकट्ठा करके यह पता लगाएगा कि क्या कभी मंगल पर जीवन था? मंगल की सतह के बारे में भी जानकारियाँ हासिल की जाएँगी। मंगल ग्रह पर जीवन की संभावनाएँ तलाशने पर विशेष जोर दिया जाएगा। मंगल मिशन के दौरान भारत मीथेन के रहस्य को सुलझा लेगा, साथ ही मंगल पर इसके अस्तित्व का पता लगाने की कोशिश की जाएगी। अभी तक की जानकारी के अनुसार हमारे सौरमंडल में केवल पृथ्वी पर जीवन है। वैसे शुक्र ग्रह हमारी पृथ्वी के करीब तो है लेकिन वहाँ की परिस्थितियाँ जीवन के प्रतिकूल हैं। मंगल धरती के बहुत करीब है, वहाँ वायुमंडल बहुत हल्का है, और उसमें आक्सीजन बहुत कम है। साथ ही उसक इर्द-गिर्द चुंबकीय पदार्थ होने के बावजूद वहाँ कोई चुंबकीय क्षेत्र नहीं है, जोकि एक सवाल बना हुआ है। वैज्ञानिकों को आशा है कि इन सब सवालों के जवाब खोजने में यह अभियान महत्वपूर्ण साबित होगा।

इस अभियान में 15 किलो के पाँच एक्सपेरिमेंटल पेलोड भेजे जाएँगे। इनमें कैमरे और सेंसर जैसे उपकरण शामिल हैं जो मंगल के वायुमंडल ओर उसकी दूसरी विशिष्टताओं का अध्ययन करेंगे। मंगल के लिए जो मिथेन सेंसर भेजा जाएगा उसका वजन 3.59 किलो होगा। यह सेंसर मंगल के पूरे डिस्क को छह मिनट के अंदर स्कैन करने में सक्षम है। दूसरा उपकरण थर्मल इंफ्रारेड स्पेक्ट्रोमीटर है। इसका वजन चार

मंगल के धरातल का दृश्य

किलोग्राम होगा। यह मंगल की सतह को मापेगा। एक और उपकरण मार्स कलर कैमरा है जिसका वजन 1.4 किलोग्राम है। इसके अलावा लाइमैन-अल्फा फोटोमीटर का वजन 1.5 किलो है तथा यह मंगल के वातावरण में एटॉमिक हाइड्रोजन का पता लगाएगा। मंगलयान को लाल ग्रह के निकट पहुँचने में आठ महीने लगेंगे। मंगल की कक्षा में स्थापित होने के बाद यह यान मंगल के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियाँ भेजना शुरू करेगा। भारत का मंगलयान मंगल के धरातल पर उतरेगा तो नहीं, लेकिन वह न्यूनतम 500 किलोमीटर तथा अधिकतम 8000 किलोमीटर की दूरी बनाए रखते हुए ग्रह की कक्षा में परिक्रमा करेगा।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान का विश्वस्त राकेट 'पी एस एल वी-एक्स एल' मंगलयान को लेकर श्री हरिकोटा से उड़ान भरेगा। पीएसएलवी मंगलयान को अंतरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा में स्थापित कर देगा। इसके बाद मंगलयान के छह इंजन चालू होकर इसे पृथ्वी की उत्केंद्री कक्षा में ऊपर उठा देंगे। तब मंगलयान 600 से 2.15 लाख कि.मी. दूर रहते हुए पृथ्वी की परिक्रमा करने लगेगा। इसके बाद एक बार यान के इंजन फिर चालू किए जाएंगे जो मंगलयान को पृथ्वी की कक्षा से निकाल कर उसे सूर्यलक्ष्यी पथ पर मंगल की ओर अंतरग्रही यात्रा पर भेज देंगे। मंगलयान में ऊर्जा की आपूर्ति हेतु 760 वाट विद्युत उत्पादन करने वाले सौर पैनल लगे होंगे। यदि सब कुछ योजनानुरूप चला तो मंगलयान सितम्बर 2014 में मंगल की कक्षा में पहुँच जाएगा। पृथ्वी से बाहर ग्रहों के बीच किसी यान को भेजने का भारत का यह पहला अवसर होगा। यदि भारत अपने मंगलयान को सुरक्षित मंगल की कक्षा में पहुँचा कर उसे ठीक से स्थापित करके बखूबी नियंत्रित रख लेता है तो देश के लिए यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। इस तरह हम देखते हैं कि भारत ने अभी तक अपने अंतरिक्ष कार्यक्रम में आशातीत सफलता प्राप्त की है तथा यह कार्यक्रम नित नयी ऊँचाइयों की ओर अग्रसर है। स्वर्णजयन्ती वर्ष में प्रस्तावित चन्द्रयान-2 तथा मंगलयान की सफलता भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाएगी।

## खाते-खाते वजन घटाओ

खाने से वजन बढ़ता है, ये तो दुनिया जानती है, लेकिन कुछ ऐसे भोजन भी हैं जिनके सेवन से आपका वजन कम होता है। वजन पर नियंत्रण रखना स्वास्थ्य के लिहाज से बेहद आवश्यक है और क्विक वेट लॉस आजकल एक ट्रेंड-सा बन गया है। हालांकि इसके कई तरीके हैं, लेकिन विभिन्न अध्ययनों की मानें तो सही किस्म का भोजन वजन कम करने में सबसे ज्यादा सहायक होता है। कुछ ऐसी चीजें हैं जिन्हें अपनी डाइट में शामिल करने से वजन को नियंत्रित रखा जा सकता है।

**बींस,** बींस को वेट लॉस के लिहाज से सबसे अच्छा माना जाता है। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया की एक रिसर्च के अनुसार बींस में ऐसे तत्व होते हैं, जो ऑलेसिस्टॉकिनिन नाम के डाइजेस्टिव हार्मोन को लगभग दो गुना बढ़ाने में मदद करते हैं। कुछ अध्ययनों के अनुसार बींस ब्लड शुगर के स्तर को मेंटेन करने में मदद करता है ताकि अगर आपको लंबे समय तक भूखा रहना पड़े तो आपके लिए नुकसानदेह न हो। बींस को हाई फाइबर डाइट माना जाता है, जो कोलेस्ट्राल को कम करने में भी मदद करता है।

**अंडे,** अंडे प्रोटीन का खजाना होते हैं। सुबह नाश्ते में अंडे खाना सेहत के लिहाज से बहुत अच्छा होता है। एक शोध में पाया गया कि वे स्त्रियां जो नाश्ते में स्क्रैम्बल्ड एग्ज के साथ दो स्लाइस टोस्ट और कम कैलोरी वाला फ्रूट स्प्रेड लेती हैं, उन्हें आम नाश्ता खाने वाली स्त्रियों के मुकाबले कम भूख लगती है। कम भूख लगने से जाहिर है इंसान कम कैलोरी कंज्यूम करेगा।

**सलाद,** क्या आपको खाना या नाश्ता के दौरान खुद को स्टाफ कर लेने की आदत है ? यदि हाँ तो अपनी मील की शुरुआत सलाद से करें। ध्यान रखें कि यह सलाद क्रीमी ड्रेसिंग के बगैर होना चाहिए। पेन स्टेट यूनिवर्सिटी में स्त्रियों पर हुए एक अध्ययन में पाया गया कि जिन्होंने मील के पहले एक बड़ी प्लेट लो कैलोरी सलाद खाया, वे बाद में लगभग 12 प्रतिशत कम पास्ता ही खा सकीं। अध्ययनकर्ताओं के अनुसार इसकी वजह रहा सलाद। अमेरिकन डाइटिक एसोसिएशन के एक जर्नल में प्रकाशित रिर्पोट की मानें तो सलाद में विटामिन-सी और ई के अलावा फोलिक एसिड, लाइकोपीन और कैरोटेनॉयड्स आदि पोषक तत्व मौजूद हैं, जो प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

**नाशपाती,** नाशपाती फाइबर का खजाना होती है। यूएस फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन के अनुसार एक नाशपाती आपकी भूख को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त होती है। संस्था के अनुसार भूख मिटाने के लिए सेब नाशपाती के बाद सबसे अच्छा स्रोत है। दोनों ही फलों में पेक्टिन फाइबर होता है, जो ब्लड शुगर के स्तर को कम करता है। असमय भूख लगने पर हाई कैलोरी स्नैक्स लेने के बजाय नाशपाती खाएँ, आपके शरीर में गैरजरूरी कैलोरी पहुँचने से बचेगी।

**सूप,** शोधकर्ताओं की मानें तो सूप भूख कम करने में काफी सहायक होता है। सूप पीने से शरीर को काफी ऊर्जा मिलती है और लंबे समय तक भूख नहीं लगती हैं।

**ऑलिव ऑयल,** बढ़ती उम्र में फैट कम करना मुश्किल होता है। ऐसे में ऑलिव ऑयल आपके लिए मददगार साबित हो सकता है। ऑलिव ऑयल मोनो अनसैचुरेटेड फैट्स से बना होता है जो कैलोरी बर्न करने में सहायक होता है। ऑलिव ऑयल को सॉते करने या सलाद ड्रेसिंग के तौर पर बखूबी प्रयोग किया जा सकता है। ऑस्ट्रेलिया में 57 से 73 वर्ष की स्त्रियों पर किया गया, एक अध्ययन यह साबित करता है कि ऑलिव ऑयल मेटाबॉलिज्म बढ़ाने में मदद करता है। इस अध्ययन में शामिल स्त्रियों को नाश्ते में स्किम्ड मिल्क और ओटमील में ऑलिव ऑयल डालकर दिया गया था।

**दालचीनी,** भोजन के बाद मीठा मोटापे का बड़ा कारण होता है। माइक्रोवेव किए हुए ओटमील या होल-ग्रेन टोस्ट पर दालचीन पाउडर छिड़क कर खाएं, आपको इस 'क्रेविंग' से भी छुटकारा मिलेगा और अनचाही कैलोरीज से भी। यूएस डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर द्वारा किए गए एक शोध के अनुसार थोड़ी-सी दालचीनी खाकर भोजन के बाद मीठे की क्रेविंग से आसानी से छुटकारा पाया जा सकता है। दालचीनी सेहत के लिहाज से भी बहुत अच्छी है। एक-चौथाई छोटा चम्मच दालचीनी का पाउडर का रोजाना सेवन टाइप 2 डायबिटीज के मरीजों में ब्लड शुगर और कोलेस्ट्रॉल को कम करने में सहायक होता है।

# बीटी बैंगन उर्फ पेट हमारा, मर्जी उनकी

प्रो० नरसिंह दयाल *

वैश्वीकरण के उस दौर में हमारी थाली में जो व्यंजन परोसे जाएँगे और उन्हें हम खाएँगे, उसके बारे में हम नहीं जान सकेंगे कि हम जो खा रहे हैं, बिल्कुल वही खा पा रहे हैं। व्यंजन तो वही होंगे, यानी चावल, दाल, रोटी, भिंडी की सब्जी, बैंगन का भुर्ता और टमाटर की चटनी। इन्हें हमारे किसान ही उगाएँगे, लेकिन इसमें अमरीकी कृषि बायोटेक कंपनी मोसांटो का बीटी जीन डाला होगा। ऐसी फसलों को जीएम (जेनेटिकली मोडिफाइड) कहा जाता है और इनकी खेती को बायोटेक खेती। भारत में अभी ऐसी कई खाद्यान्न फसलों और सब्जियों पर शोध चल रहा है और इन्हें शीघ्र ही बाजार में लाने की तैयारी है। अतः भविष्य में हम जो भी खाएँगे, सभी जीएम ही होंगे। इनकी लेबलिंग नहीं होने के कारण इन्हें सामान्य फसलों और खाद्यों से अलग करना और पहचानना असंभव हो जाएगा।

2010 के शुरुआती महीनों में बेचारे बैंगन पर पूरे देश में बवाल मच गया था। लगा जैसे पूरा देश ही बीटी बैंगन की व्यावसायिक खेती के विरोध में उठ खड़ा हो गया है। बात इतनी सी हुई थी कि अक्टूबर 2009 में जीन इंजीनियरी अनुमोदन समिति (जीइएसी) ने बीटी बैंगन की खेती के लिए मंजूरी दी थी और इसी आधार पर भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग तथा कृषि मंत्रालय ने भी इसे हरी झंडी दिखा दी थी। लेकिन वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने अंतिम फैसला लेने से पहले इस पर देश के सात शहरों में सार्वजनिक चर्चा कराकर आम राय मांगी। एक राष्ट्रीय बहस शुरू हो गई। इस राष्ट्रीय बहस में बीटी बैंगन को लेकर ऐसा लगा कि देश साफ-साफ दो फाड़ हो गया है। इसके विरोध में थे कृषक संगठन, उपभोक्ता समूह, एनजीओ, विज्ञानी और कृषि विशेषज्ञ और 11 राज्यों की सरकारें और समर्थन में भारत सरकार के उपरोक्त दो मंत्रालय, जीइएसी, जीएम तकनीक से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े विज्ञानियों का समूह, प्रशासनिक अधिकारी और पूरी बायोटेक लॉबी। सब्जियों का राजा बैंगन राष्ट्रीय सुरक्षा का मुद्दा बन गया क्योंकि यह हमारी जिंदगी के हर पहलू से जुड़ा मुद्दा था- स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, जैव और पर्यावरण सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा, संप्रभुता और पूरे भविष्य से। बैंगन को बचाने की इस देशव्यापी मुहिम को कुछ लोगों ने तो 21वीं सदी का स्वतंत्रता आंदोलन तक कह डाला। चौतरफा विरोध को देखते हुए अंततः 10 फरवरी 2010 को बीटी बैंगन की व्यावसायिक खेती को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया। यह निश्चय ही एक राष्ट्रीय महत्व का मुद्दा है जिसके कई आयाम हैं - तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय, राजनीतिक और वैधानिक।

जीएम खाद्य : वरदान या अभिशाप

भारत बैंगन की उत्पत्ति और विविधता का केंद्र है। यहाँ इसकी 2400 किस्में पाई जाती हैं और आलू के बाद सबसे अधिक खपत इसी की है। यहाँ करीब 5.5 लाख हेक्टेयर भूमि में करीब-करीब सभी राज्यों में इसकी खेती की जाती है। भारत में बैंगन का इतिहास करीब 4000 वर्ष पुराना है। हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों में भी इसकी चर्चा है। इसकी कुछ किस्में औषधीय गुणों वाली हैं। इनका प्रयोग आयुर्वेद और अन्य परंपरागत औषधीय प्रणाली में किया जाता है। इसके कई किस्मों का उपयोग प्रसाद के रूप में भी होता है। यह हमारी कृषि जैव विविधता का एक महत्वपूर्ण प्रतीक है। यह सदियों से हमारी खाद्य संस्कृति से जुड़ा हुआ है। इसकी फसल को काफी नुकसान, 50-60 प्रतिशत तक, दो मुख्य कीड़ों – तनाछेदक *(लियोसिनोडिस ओरबनालिस)* और फलछेदक *(हेलिकाविरपा आर्मीजेरा)* से होता है। अतः इनके नियंत्रण के लिए कीटनाशक रसायनों का छिड़काव बहुत जरूरी होता है।

बीटी बैंगन भी एक जीएम फसल है। इसमें मृदा जीवाणु, *बैसिलस थुरीजिएंसिस* का बीटी जीन जीनियागरी द्वारा डाल दिया गया है। प्रतिरोपित बाहरी जीन की कृपा से बैंगन का पौधा ही एक कीटनाशक प्रोटीन क्राइ-1 एसी का निर्माण करने लगता है। यह प्रोटीन एक जहर है जो बैंगन को नुकसान पहुँचाने वाले उपरोक्त कीड़ों को मार डालता है। इसी विशिष्ट गुण के कारण कहा जा रहा है कि बैंगन की खेती में कीटनाशकों का अलग से इस्तेमाल करना नहीं पड़ेगा और खर्च बचेगा। मनुष्य के स्वास्थ्य पर इस जीन का कोई असर नहीं होता। बीटी बैंगन परंपरागत बैंगन जितना ही सुरक्षित है। बीटी बैंगन का विकास तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटुर और कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़

*पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग, राँची विश्वविद्यालय; आवास : नवकुंज, एच आई-70, आवासीय कालोनी, हरमू, राँची-834 002.

के विज्ञानियों ने महिको-मोंसांटों कंपनी के साथ एक साझी परियोजना के अंतर्गत यूएसएड और फोर्ड प्रतिष्ठान प्रदत्त आर्थिक अनुदान से किया है। अमरीकी कृषि बायोटेक कंपनी मोंसांटो को 'ट्रिप्स' के तहत बीटी जीन पर पेटेंट प्राप्त है। अतः सभी बीटी बैंगन की किस्मों पर मालिकाना हक मोंसांटो का ही होगा।

भारत में बायोटेक्नोलॉजी के क्षेत्र में अनुसंधान के लिए विश्वसनीय, पारदर्शी और स्पष्ट नियामक तंत्र का अभाव है। वर्तमान तदर्थ नियामक तंत्र कई सार्वजनिक निकायों और मंत्रालयों का घालमेल है। अतः इनके कार्य-क्षेत्र एक दूसरे से घुले-मिले हैं और इनमें जवाबदेही से बचने की मानसिकता रहती है। बीटी बैंगन के मामले सारा कुछ जल्दबाजी में हुआ लगता है। जीइएसी ने अनुमति देने में भारी कोताही बरती थी। न कोई निष्पक्ष विश्लेषण और परीक्षण तथा न ही कोई जवाबदेह प्रणाली। बीटी बैंगन की व्यावसायिक खेती को मंजूरी महिको और इससे जुड़ी संस्थाओं और संगठनों के आंकड़ों के आधार पर दी गई थी। प्रश्न उठता है कि जब हमारे यहाँ बैंगन की कोई कमी नहीं है तब बीटी बैंगन की जरूरत क्यों आ पड़ी ? यह दुनिया की पहली जीएम खाद्य फसल होगी जिसका सीधा उपयोग इंसान करेगा। बीटी बैंगन को किसने मांगा था- किसान, उपभोक्ता, सरकारी कृषि विज्ञानी, प्रशासनिक अधिकारी, केंद्र सरकार या बायोटेक कंपनियाँ ?

अपने आविष्कार के समय से ही जीएम टेक्नोलॉजी और उत्पाद पूरी दुनिया में विवादास्पद है। इसके समर्थकों के अनुसार, जीएम फसलें अधिक उपजाऊ हैं, सुरक्षित हैं और कीटनाशकों का खर्च बचाते हैं। लेकिन इसके विरोधियों के पास इसकी सुरक्षा और परीक्षण तथा मानक स्वास्थ्य और पर्यावरण पर इसके प्रभाव को लेकर ज्यादा गंभीर प्रश्न हैं जिनका संतोषजनक उत्तर बायोटेक लॉबी देने में असमर्थ है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि जीएम फसलों और खाद्यों में कैंसर पैदा करने वाले रसायन कार्सिनोजेंस और जन्मजात बीमारियों के लिए उत्तरदायी रसायन टेरैटोजेंस पैदा करने का गुण होता है। इसके अतिरिक्त उनमें घातक रसायनों के निर्माण की एक अनियंत्रित प्रक्रिया होती है जिसके परिणाम भयावह हो सकते हैं। जीन इंजीनियरी द्वारा नए प्रकार के टॉक्सिन तथा अन्य अहितकर रसायनों, जो अप्रत्यासित, अपूर्वानुमानित और अपरिवर्तनीय हैं, को उत्पन्न करने की अद्वितीय संभावना होती है। जीएम बैंगन का एक और भी खतरा है- क्षैतिज जीन हस्तांतरण (एचजीटी)। इस प्राकृतिक प्रक्रिया के कारण बीटी जीन हमारे शरीर के अंदर पाये जाने वाले लाभदायक जीवाणुओं के अंदर घुसकर बीटी जहर पैदा करने लगेगा और हमारी सेहत का भुर्ता बना डालेगा। बीटी बैंगन में 'सीएएमवी 355' नामक एक विषाणु 'प्रोमोटर जीन' तथा 'एनपीटी 11' नामक एंटीबायोटिक प्रतिरोधी 'मार्कर जीन' पाया गया है। ये दोनों जीन मिलकर सुपर विषाणुओं का निर्माण करने में पूरी तरह सक्षम हैं। तब ऐसा हो जाने पर जिसकी संभावना बहुत अधिक है, ऐंटीबायोटिक दवाओं का हमारे शरीर पर असर ही नहीं होगा।

खैर, जन परामर्श समिति की देश के विभिन्न हिस्सों में हुई आठ दौर की बैठकों, जो 13 जनवरी से लेकर 30 जनवरी 2010 तक चली, के दौरान राज्य सरकारों, पर्यावरण संस्थानों, किसान संगठनों और निष्पक्ष विज्ञानियों द्वारा बीटी बैंगन के खिलाफ तीव्र विरोध को देखते हुए बीटी बैंगन की खेती का फैसला केंद्र सरकार को लंबित करना पड़ा। 9 फरवरी 2010 को बीटी बैंगन का अनिश्चितकालीन स्थगन भारतीय कृषि के विनाश का स्थगन था। यह हमारी कृषि प्रणाली के लिए 'टाइम बम' सिद्ध होता। इसके विरोधियों का अभियान कि वे प्रयोगशाला चूहे नहीं हैं, एक उचित और देशभक्ति पूर्ण कदम था। इससे हमारे कृषि तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्री आहत थे। उन्होंने इसे विज्ञान और वैज्ञानिक समुदाय को हतोत्साहित करने वाला बताया। पूछा जा सकता है कि विज्ञान भावनाओं द्वारा कब से संचालित होने लगा ? देश और जनहित विज्ञानियों की भावनाओं से छोटा कब हो गया ? बीटी लॉबी का इससे नाराज होना स्वाभाविक था क्योंकि भारत के बीज बाजार, जिसका 85 प्रतिशत अभी भी असंगठित और सार्वजनिक क्षेत्र में है, में वे अपनी पैठ बनाने में असफल रह गए। लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी है, उनका हमारे बीज बाजार पर कब्जा करने का प्रयास जारी है।

बीटी बैंगन तो एक बहाना था, सिर्फ दिखाने का दाँत। इसके पीछे 58 में से 41 खाद्य फसलों, करीब-करीब सभी प्रमुख खाद्यान्न और सब्जियों की फौज अनुमति के इंतजार में खड़ी थीं। कृषि बायोटेक निगम दुनिया की खाद्य शृंखला पर कब्जा करने की मुहित में जुटे हुए हैं। एक बार बीजों पर पराधीनता हो जाने से हमारे देश की राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता तथा खाद्य सुरक्षा हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगी। जैव संप्रभुता और बीज स्वराज हमारा मौलिक अधिकार है यह जीन या जैव साम्राज्यवाद है। हमें भविष्य में भी बहुत सतर्क रहना होगा।

## मकोय के औषधीय गुण

खट्टे मीठे स्वाद वाला मकोय (रसभरी) सेहत के लिए भी काफी फायदेमंद होता है। मकोय के गुणों के बारे में बता रहे है बीएचयू स्थित द्रव्य गुण विभाग के प्रो0 के.एन. द्विवेदी के अनुसार मकोय का फल और पंचांग मुख्यतः लीवर व उदर रोगों में लाभकारी है।

इसकी पत्तियों का काढ़ा पीने से पाचन अच्छा होता है साथ ही भूख भी बढ़ाता है। लीवर को उत्तेजित कर पित्त निकालता है। इसकी पत्तियों का काढ़ा शरीर के भीतर सूजन को दूर करता है और इसका पेस्ट बाहरी सूजन पर लगे लगाने से सूजन समाप्त हो जाती है। मकोय के पत्तियों में कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, विटामिन ए, विटामिन सी, बीटा-कैरोटीन नामक तत्व पाया जाता है जो एंटीऑक्सीडेंट का काम करता है। बवासीर में इसकी पत्तियों का काढ़ा पीने से लाभ मिलता है। संधिवात में पत्तियों का लेप और पत्ते का साग खाने से लाभ होता है। खांसी, हिचकी, श्वांस रोग में इसके फल का चूर्ण लाभकारी होता है। बाजार में अर्क मकोय मिलता है जो पेट के लिए उपयोगी होता है। त्वचा के रोगों में जिसे सफेद दाग कहते हैं, पत्तियों का लेप फायदेमंद होता है।

# मोटर गाड़ियों के लिए वैकल्पिक ईंधन

**प्रो० मुरारी लाल माथुर ***

प्रायः सभी मोटर गाड़ियाँ, कार, बस लौरी, इत्यादि पेट्रोल और डीजल अन्तर्दहन इंजन से चालित होती हैं। क्रूड तेल तथा पेट्रोल (पेट्रोलियम) से प्राप्त होता है, जो एक जीवाश्म ईंधन है। किन्तु कुछ दशकों से इन तेलों का उपयोग दो कारणों से चिन्ता का विषय बन गया है। प्रथम, जीवाष्म ईंधन के स्रोत तीव्र गति से समाप्त होते जारहे हैं, और द्वितीय इन तेलों के दहन से खतरनाक वायु प्रदूषण पैदा होता है। आज के संदर्भ में मोटर गाड़ियों के लिये वैकल्पिक ईंधनों को विकसित करना और उनका उपयोग करना निम्नलिखित कारणों से अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

1. विश्व में जनसंख्या और शहरीकरण के निरन्तर बढ़ने से परिवहन के लिये ऊर्जा की खपत लगातार बढ़ रही है। विश्व की जनसंख्या जो आज 680 करोड़ के लगभग है, सन् 2020 में 800 करोड़ होने का अनुमान है। इसी अवधि में शहरीकरण 50 प्रतिशत से बढ़कर 60 प्रतिशत हो सकता है। विश्व में कुल ऊर्जा खपत का 25 प्रतिशत उपयोग परिवहन क्षेत्र में होता है।
2. पेट्रोल और डीजल तेल से चलने वाले अन्तर्दहन इंजन कार्बन डाइऑक्साइड तथा अन्य ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं, जो ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार हैं। ग्लोबल वार्मिंग से जलवायु परिवर्तन का खतरा रहता है। पेट्रोल और डीजल इंजन से अन्य प्रदूषण उत्पन्न करने वाली गैसे हैं- कार्बन मोनोऑक्साइड (एक जहरीली गैस), नाइट्रोजन ऑक्साइड (जो स्मॉग और ओजोन परत क्षीण करने के लिये जिम्मेदार है) तथा पार्टीकुलेट (जो सांस की बीमारी के लिये जिम्मेदार है)।
3. भारत समेत कई देशों में क्रूड तेल का उत्पादन जितनी आवश्यकता है उससे कम होता है और वे आयात पर निर्भर रहते हैं, जो देश की सुरक्षा के लिये खतरा है।
4. क्रूड तेल के कम होते भण्डार के कारण इसकी माँग लगातार बढ़ती रहती है, जिससे राष्ट्रीय बजट पर आयात बिल का बोझ बढ़ता जाता है। इसलिए भी स्थानीय वैकल्पिक ईंधन के बढ़ते उपयोग की आवश्यकता है।
5. वैकल्पिक ईंधन जैसे बायोडीजल और एथेनॉल को विकसित करने का एक और फायदा यह होगा कि इससे रोजगार पैदा करने का एक नया स्रोत प्राप्त होगा, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देगा।

**जैवभार से ईंधन**

**भारत में पेट्रोलियम ईंधन का उभरता परिदृश्य-** सन् 2010 में भारत ने 22 लाख बैरल से अधि क्रूड तेल आयात किया (कीमत करीब 1.5 लाख करोड़ रुपये से अधिक), जो उसके कुल खपत का लगभग 75 प्रतिशत था। भारत विश्व में पांचवाँ सबसे बड़ा क्रूड तेल आयातक देश है। अन्तरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेन्सी के अनुसार भारत में क्रूड तेल का आयात सालाना 4 प्रतिशत से अधिक बढ़ रहा है। सन् 2035 तक क्रूड तेल का आयात खपत का 75 प्रतिशत से बढ़कर 92 प्रतिशत तक होने का अनुमान है। ये तेल आपूर्ति सुरक्षा के दृष्टिकोण से एक खतरनाक स्थिति होगी।

भारत में गैस ईंधन का उपयोग सन् 2009 में 59 बिलियन घनमीटर से बढ़ कर 2035 में 190 बिलियन घनमीटर होने का अनुमान है जो कुल प्राथमिक ऊर्जा की माँग का 11 प्रतिशत होगा। वर्तमान में आयातित द्रवित प्राकृतिक गैस का कुल प्राकृतिक गैस आपूर्ति में हिस्सा सन् 2012-13 में 37.1 प्रतिशत था, जो सन् 2016-17 तक बढ़ कर 46.7 प्रतिशत होने का अनुमान है।

हमारी क्रूड तेल और गैस ईंधन की आवश्यकता अगले बीस सालों में तीन गुना हो जायेगी। भारत की वैकल्पिक ईंधन नीतियों का लक्ष्य क्रूड तेल का आयात खर्चा कम करना होना चाहिए।

**मोटर गाड़ियों के लिये वैकल्पिक ईंधन-** मोटर गाड़ियों के लिये

*भूतपूर्व अध्यक्ष, मैकेनिकल इंजीनियरिंग विभाग एवं भूतपूर्व वाइसचांसलर, जोधपुर विश्वविद्यालय (राजस्थान); आवास - आलोक विला, 17 सेक्टर ए, शास्त्रीनगर, जोधपुर - 342 003.

वैकल्पिक ईंधनों में पहला विकल्प गैस ईंधन है। गैस ईंधनों में प्राकृतिक गैस (कम्प्रेस्ड प्राकृतिक गैस, द्रवित प्राकृतिक गैस) और द्रवित पेट्रोलियम गैसे हैं। ये गैसें स्वच्छ ईंधन हैं जिनसे कम प्रदूषण पैदा होता है, किन्तु इन गैसों का स्रोत पेट्रोलियम है जो कि दीर्घकाल तक उपलब्ध नहीं रहेगा। दूसरा विकल्प एल्कोहॅल या एल्कोहॅल-मिश्रित ईंधन है। इन एल्कोहॅल में एथेनॉल और मेथेनॉल मुख्य है। एथेनॉल का उत्पादन नवीकरणीय स्रोत से होता है, इसलिये यह लम्बी अवधि के लिये अच्छा विकल्प है। डीजल इंजन के लिये बायोडीजल, जिसका उत्पादन भी नवीकरणीय स्रोत से होता है, अच्छा विकल्प है।

हाइड्रोजन वैकल्पिक ईंधन के रूप में एक अलग श्रेणी में है। यद्यपि ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक तत्व हाइड्रोजन ही है, पृथ्वी पर शुद्ध गैस के रूप में यह बिरले ही पाया जाता है। इसलिए हाइड्रोजन गैस का उत्पादन करना पड़ता है, जिसमें विद्युत ऊर्जा का उपयोग होता है। अतः यह जीवाश्म ईंधन की तरह नहीं है, बल्कि बैटरी की तरह ऊर्जा वाहक हैं।

**कम्प्रेस्ड (सम्पीडित) प्राकृतिक गैस-** प्राकृतिक गैस 21वीं शताब्दी का मुख्य ईंधन माना जाता है। प्राकृतिक गैस एक मिश्रित हाइड्रोकार्बन है जिसमें मुख्यतः मेथेन (60 से 95 प्रतिशत) के साथ कुछ प्रतिशत उच्चतर हाइड्रोकार्बन, जैसे इथेन, प्रोपेन और ब्यूटेन होते हैं। इसका उत्पादन गैस के कुओं से या क्रूड तेल के उत्पादन के दौरान होता है। मोटर गाड़ियों में सीएनजी सिलेण्डर में 200 से 250 बार दाब पर रखी जाती है। प्राकृतिक गैस की निम्न केलोरिफिक वेल्यू लगभग 47500 किलोजूल प्रति किलोग्राम होती है। यह एक उच्च ओक्टेन ईंधन है (ओक्टेन नम्बर 120)। इसलिये यह पेट्रोल या गैस स्पार्क दहन इंजन के लिये अच्छा ईंधन है।

सीएनजी स्वच्छ पर्यावरणहितैषी ईंधन है। इसके उपयोग से पेट्रोल की तुलना में सब नियंत्रित गैसों का उत्सर्जन कम होता है। CO में 93 प्रतिशत कमी, पार्टीकुलेट में भी महत्वपूर्ण कमी। सीएनजी के अन्य फायदे निम्नलिखित है :

1. वाष्पिक उत्सर्जन बिल्कुल नहीं, क्योंकि ईंधन तंत्र बन्द होता है।
2. उच्च कम्प्रेशन अनुपात का उपयोग, क्योंकि सीएनजी का ओक्टेन नम्बर उच्च होता है।
3. सीएनजी पेट्रोल से सस्ता ईंधन है।

**सीएनजी गाड़ी के उपयोग में निम्नलिखित असुविधाएँ, समस्याएँ या कमियाँ हो सकती हैः**

1. सीएनजी गाड़ी की कीमत पेट्रोल गाड़ी से अधिक होती है।
2. सीएनजी ईंधन भरने के लिये स्टेशन (पंप) सीमित हैं।
3. प्राकृतिक गैस का संयोजन विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न होता है।
4. यद्यपि प्राकृतिक गैस के भंडार (कुओं) पेट्रोलियम भंडार के कुओं से अधिक समय तक उपलब्ध रहेंगे, किन्तु यह भी नवीकरणीय ईंधन नहीं है। अतः यह दीर्घकालीन समाधान नहीं है।

विश्व में लगभग 10 लाख से अधिक मोटर गाड़ियाँ सीएनजी से चल रही हैं। इटली में सीएनजी का उपयोग मोटर गाड़ियों में सन् 1935 से हो रहा है। बहुत जल्दी भारत में 10 प्रतिशत मोटर-गाड़ियाँ सीएनजी से चलने लगेंगी। सीएनजी गाड़ियों के उपयोग के पहले दिल्ली में प्रदूषण, विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों से पाँच गुना था, जो अब कम हो गया है।

**द्रवित पेट्रोलियम गैस-** द्रवित पेट्रोलियम गैस (एलपीजी), पेट्रोल और डीजल के बाद कदाचित तीसरा सबसे अधिक उपयोग में आने वाला मोटर गाड़ियों का ईंधन है। इसका उपयोग पिछले 65 वर्षो से हो रहा है। औद्योगिक उपयोग में आने वाली एलपीजी मुख्यतः 'प्रोपेन' होती है (90 प्रतिशत प्रोपेन 2.5 प्रतिशत ब्यूटेन और बाकी प्रतिशत ईथेन और प्रोपाइलीन)। इसलिये एलपीजी मोटर ईंधन को 'प्रोपेन' भी कहते हैं। यह गैस होती है किन्तु आसानी से सामान्य भूमंडलीय तापमान पर और 8.6 बार दाब पर द्रवित हो जाती है।

एलपीजी का कैलोरीफिक मान 50,000 किलोजूल प्रति किलोग्राम या 98,800 किलोजूल प्रति घनमीटर (मानक तापमान और दाब पर) है। एक लीटर एलपीजी में पेट्रोल की तुलना में 70 प्रतिशत ऊर्जा मात्रा होती है। द्रवित एलपीजी का आपेक्षित धनत्व 15°C पर 0.51 है। गैस के रूप में यह हवा से डेढ़ गुणा भारी है। इसका ऑक्टेन नम्बर लगभग 100 है और स्टोकियोमीट्रिक (सही रासायनिक) वायु-ईंधन अनुपात 23 है। एलपीजी का उत्पादन पेट्रोलियम परिष्करण और प्राकृतिक गैस संसाधित क्रिया में होता है। एलपीजी के फायदे निम्नलिखित है :-

1. पेट्रोल की तुलना में यह ईंधन 60 प्रतिशत कम CO और 60 प्रतिशत कम रिएक्टिव हाडड्रोकार्बन उत्सर्जन करता है।
2. सामान्य पेट्रोल टैंक की तुलना में एलपीजी ईंधन का टैंक 20 गुणा अधिक पंक्चर-प्रतिरोधी होता है।
3. एलपीजी इंजन पेट्रोल इंजन के मुकाबले दुगनी अवधि तक चलता है तथा स्नेहक का प्रदूषण भी कम होता है। दहन पिस्टन पर कार्बन भी नहीं के बराबर जमा होता है।

**एलपीजी के उपयोग में निम्नलिखित असुविधाएँ या समस्याएँ हो सकती हैं :**

1- भवनों के अन्दर भंडारण और गाड़ियों के रखरखाव में एलपीजी के अवगमन और वायु संवातन की समस्या।

2- सीएनजी की तरह एलपीजी भी नवीकरणीय ईंधन नहीं है। अतः यह भी मोटर ईंधन का दीर्घकालीन समाधान नहीं है।

**एल्कोहॅल और एल्कोहॅल मिश्रित ईंधन**

मोटर गाड़ियों के ईंधन की दृष्टिकोण से दो मुख्य एलकोहॅल, ईंधन एथेनॉल और मेथेनॉल है। हैनरी फोर्ड ने प्रसिद्ध टी मॉडल इंजन एल्कोहॅल ईंधन द्वारा चालित बनाया था।

**(अ) एथेनॉल :** एथेनॉल एक एल्कोहॉल है जो बायोमास (मक्का, गन्ना तथा अन्य कृषि उत्पादों) से बनता है। यह एक उच्च ओक्टेन द्रव्य है और सामान्यतः पेट्रोल में मिश्रित कर काम मे लिया जाता है। ई-10 (10 प्रतिशत एथेनॉल, 90 प्रतिशत पेट्रोल) वर्तमान पेट्रोल इंजनों में बिना किसी परिवर्तन के उपयोग में लिया जा सकता है। एथेनॉल अधिक स्वच्छ ईंधन है और यह कार्बन डाईआक्साईड और ओजोन उत्पन्न करने वाले हाइड्रोकार्बन का कम उत्सर्जन करता है। एथेनॉल का सबसे बड़ा फायदा यह है कि ये नवीकरणीय संसाधनों से बनता है। इसलिए इसकी उपलब्धता हमेशा बनी रहेगी।

**एथेनॉल के उपयोग में निम्नलिखित असुविधाएँ या समस्याएँ हो सकती हैं :**

1. कम ऊर्जा मात्रा, इसलिये बड़े ईंधन टैंक की आवश्यकता।
2. ईंधन तन्त्र में विशिष्ट एथेनॉल अनुकूल सामान की आवश्यकता।
3. वर्तमान में पेट्रोल से महँगा।
4. एथेनॉल के उपयोग में सबसे बड़ी चिन्ता इसके बड़े पैमाने पर उपलब्धता को लेकर है। चूँकि यह एक कृषि उत्पाद है, इसके उत्पादन के लिये भूमि की आवश्यकता है। इस कारण (भूमि के लिये) खाद्य फसलों से प्रतिस्पर्धा हो सकती है।

एथेनॉल के उत्पादन और उपयोग में, विश्व में, ब्राजील पहले नम्बर पर है जहाँ इसका उत्पादन प्रतिवर्ष 15 बिलियन लिटर से अधिक है। ब्राजील में सब मोटर ईंधन में कम से कम 24 प्रतिशत एथेनॉल होता है। अधिकतर मोटर गाड़ियाँ तो 100 प्रतिशत एथेनॉल ईंधन से ही चलती है। संयुक्त

राष्ट्र अमेरिका में 57 बिलियन लीटर से अधिक एथेनॉल, मिश्रित पेट्रोल काम मे लिया जाता है, जो कुल मोटर ईंधन विक्रय का 12 प्रतिशत है।

भारत में एथेनॉल का उत्पादन मुख्यतः शीरा से होता है जो शक्कर उद्योग का उपोत्पादन है। किन्तु सरकार द्वारा पेट्रोल में अनिवार्य 5 प्रतिशत एथेनॉल मिलाने का नियम बनाने के पश्चात् एथेनॉल का उत्पादन अन्य कृषि फसलों, जैसे कृषि अवशेष, सोरघम (घास) इत्यादि के उपयोग से बढ़ाना पड़ेगा।

**( ब ) मैथेनॉल :** मैथेनॉल भी एक द्रव्य एल्कोहॅल ईंधन है, जिसका उत्पादन प्राकृतिक गैस से होता है। लेकिन इसका उत्पादन लकड़ी जैसे बायोमास से भी हो सकता है। इसके उपयोग के फायदों में ओजोन उत्पन्न करने वाले हाइड्रोकार्बन और पार्टीकुलेट का कम उत्सर्जन है।

**मैथेनॉल के उपयोग में निम्नलिखित असुविधाएँ या समस्याएँ हो सकती हैं:**

1. यह संक्षारक और विषैला होता है।
2. ईंधन तन्त्र में विशिष्ट मैथेनॉल अनुकूल सामान की आवश्यकता।
3. शीत तापमान में इंजन को चालू करने की समस्या।
4. पेट्रोल की तुलना में कम ऊर्जा मात्रा, इसलिये बड़े ईंधन टैंक की आवश्यकता।
5. वर्तमान में पेट्रोल से महँगा।

**बायोडीजल**

बायोडीजल पेट्रोलियम-रहित ईंधन तेल है जो अखाद्य नवीकरणीय स्रोत जैसे अखाद्य तेल ( करंजा, नीम, जेट्रोफा, रेपसीड आदि) से बनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अधिकांश बायोडीजल सोयाबीन से बनाया जाता है। बायोडीजल खाद्य तेल और जानवरों की वसा से भी बनाया जा सकता है। सन् 1900 में रूडोल्फ डीजल ने जो पहला डीजल इंजन बनाया था वह मूंगफली के तेल से चलता था।

बायोडीजल एक रासायनिक क्रिया, जिसे ट्रांसइस्टैरीफिकेशन कहते हैं, से बनता है। इस क्रिया में वसा या वनस्पति तेल से ग्लिसरीन को अलग किया जाता है। इस क्रिया में दो उत्पाद बनते है- मिथाईल इसटर्स, जो बायोडीजल का रासायनिक नाम है, और ग्लीसरीन, एक महत्वपूर्ण उपउत्पाद जो साबुन और अन्य सामान बनाने के काम में आता है। बायोडीजल का अमेरिकन मानक ए.एस.टी.एम.डी. 6751 है।

बायोडीजल को सामान्यतः डीजल तेल में मिलाकर उपयोग में लिया जाता है। बी20 मिश्रण में 20 प्रतिशत बायोडीजल और 80 प्रतिशत परम्परागत डीजल तेल होता है। यह मिश्रण वर्तमान डीजल इंजनों में बिना किसी परिवर्तन के काम में लिया जा सकता है।

**बायोडीजल के फायदे**

1. बायोडीजल का मुख्य फायदा यह है कि ये अपने देश में ही नवीकरणीय स्रोत से बनाया जा सकता है। इससे आयात किये तेल पर निर्भरता कम होगी, जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिये अच्छा है।
2. यह प्रदूषित गैसों का उत्सर्जन कम करता है। (कार्बन मोनोआक्साइड का 47 प्रतिशत कम, हाइड्रोकार्बन का 67

प्रतिशत कम और सल्फर डाईआक्साइड का 100 प्रतिशत कम)। यह पार्टीकुलेट का उत्सर्जन भी कम करता है। इसलिये यह अधिक स्वास्थ्यकर है। यह विषैला भी नहीं है। और इसकी गंध भी अच्छी है। इसका 'सीटेन' नम्बर अधिक, लगभग 49, है जो इंजन के परिचालन को सुधारता है। बी 20 बायोडीजल (20 प्रतिशत बायोडीजल 80 प्रतिशत पेट्रो डीजल) सीटेन रेटिंग को 3 अंक बढ़ा देता है। बायोडीजल में ऊर्जा पेट्रोडीजल के लगभग बराबर होती है।

3. बायोडीजल एक अच्छा स्नेहक है जिससे इंजन अधिक अवधि तक चलता है। भारत वर्ष में बायोडीजल पर एक 'राष्ट्रीय टैक्नोलोजी मिशन' की स्थापना की गई है। सरकार बायोडीजल के लिये जेट्रोफा वनस्पति को बढ़ावा दे रही है। डीजल तेल की खपत देश में प्रति वर्ष 5 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। यह बढ़ती हुई माँग बी-20 बायोडीजल से पूरी की जा सकती है। भारत के हर एक गाँव में औसतन 100 हैक्टर बंजर जमीन है, जिसमें खेती नही की जा सकती, किन्तु उसमें बायोडीजल के लिये वनस्पति पैदा की जा सकती है। यह कदम ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुधार सकता है, और इससे रोजगार भी बढ़ेंगे।

**हाइड्रोजन**

मोटर के रूप में हाइड्रोजन एक बहुत अच्छा विकल्प है, क्योंकि इसके उपयोग में इंजन से रेचन द्रव केवल जल निकलता है, कार्बन डाइऑक्साइड बिल्कुल नहीं। किन्तु पृथ्वी पर हाइड्रोजन शुद्ध गैस के रूप में नहीं उपलब्ध होने के कारण इसका उत्पादन ऊर्जा के उपयोग द्वारा करना पड़ता है। हाइड्रोजन गैस प्राकृतिक गैस के भाप रिफोर्मिंग द्वारा बनाई जा सकती है, लेकिन प्राकृतिक गैस नवीकरणीय स्रोत नहीं है।

**भविष्य का ईंधन : हाईड्रोजन**

हाइड्रोजन गैस जल के विद्युत अपघटन द्वारा भी उत्पन्न की जा सकती है, किन्तु इसमें भारी मात्रा में विद्युत ऊर्जा खर्च होती है। इसलिये हाइड्रोजन गैस से जो ऊर्जा मोटर गाड़ी को मिलती है उसका स्रोत परम्परागत बिजलीघर ही है। यदि यह बिजली उत्पादन नवीकरणीय स्रोत जैसे सूर्य, जल, वायु आदि से हो, तो हाइड्रोजन मोटर गाड़ियों के लिये आदर्श ईंधन है। इसके उदाहरण आइसलैंड में भूतापीय ऊर्जा और डेनमार्क में वायु ऊर्जा से हाइड्रोजन का उत्पादन है।

वर्तमान में हाइड्रोजन के उत्पादन, संग्रहण, स्थानान्तरण और वितरण में अत्यधिक ऊर्जा व्यय होती है। हाइड्रोजन का आयतनिक घनत्व कम, मीथेन से एक तिहाई होता है। हाइड्रोजन के उपयोग के लिये ये सब समस्याएँ शोध के क्षेत्र हैं और इन समस्याओं का समाधान निकालने में कई दशक लग सकते हैं। हाइड्रोजन का उपयोग 'फ्यूल सैल' में किया जा सकता है, जिनकी दक्षता 50 से 60 प्रतिशत तक होती है। वर्तमान में बहुत सीमित नम्बर में हाइड्रोजन से चलने वाली प्रयोगात्मक मोटर गाड़ियाँ उपयोग में हैं।

भारत के सन्दर्भ में वैकल्पिक मोटर ईंधनों के बड़े पैमाने पर उपयोग की परम आवश्यकता है, खासकर सीएनजी, एथेनॉल-मिश्रित पेट्रोल और

मिश्रित बायोडीजल ईंधन की। वैकल्पिक ईंधन के उपयोग की नीतियाँ बनाने में कई जटिल समस्याओं जैसे पर्यावरण, प्रदूषण, ईंधन का आयात बिल कम करना, भविष्य में ऊर्जा सुरक्षा, दूसरे देशों से गैस पाइप लाइन डालना, ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक विकास आदि का गहराई से अध्ययन जरूरी है। यह अध्ययन सम्मिलित रूप से तकनीकी विशेषज्ञ, अर्थशास्त्री और योजनाकारों को करना होगा। इस मिशन की सफलता के लिये बहुत शोध और विकास के साथ दूरदृष्टि, राजनीतिक इच्छा शक्ति, सरकारी समर्थन और प्रोत्साहन का होना अति आवश्यक है।

## ज्यादा पानी पीना दिमागी क्षमता बढ़ाने के लिए जरूरी

फ्रंटियर्स इन ह्यूमन न्यूरोसाइंस शोध पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार ज्यादा पानी पीने से दिमागी क्षमता बढ़ती है। अध्ययन के मुताबिक जिन प्रतियोगियों ने संज्ञानात्मक परीक्षण से पूर्व करीब तीन कप पानी (लगभग 775 मिलीलीटर) पिया था उन्होंने पानी नहीं पीने वाले प्रतियोगियों की तुलना में परीक्षण के दौरान अच्छा प्रदर्शन किया। 'लाइवसाइंस' के मुताबिक ये निष्कर्ष विशेषकर प्यासे लोगों के लिए सत्य साबित हुए। शोधकर्ताओं के अनुमान के अनुसार प्यास बढ़ने से काम से ध्यान बँट सकता है। प्रतिक्रिया परीक्षण के लिए 34 वयस्क प्रतियोगियों को कम्प्यूटर स्क्रीन पर वस्तु को देखते ही बटन दबाना था। पानी नहीं पीने वालों की अपेक्षा पानी पीने वालों में प्रतिक्रिया की दर 14 प्रतिशत अधिक थी।

# कवकों का विचित्र संसार

प्रो0 सुनील दत्त पुरोहित *

बारिश के बाद अचानक से उग आए छतरी के आकार के मशरूम प्रारंभ से ही मानव के लिए कौतूहल का विषय रहे हैं। कवकों के प्रति मानव की रुचि इन्हीं छत्रकों को देखकर जागृत हुई। वह इन कवकों के प्रति सदा से ही जिज्ञासु व सम्मोहित रहा है। कवकजाल के चारों ओर अचानक और तीव्र गति से प्रकट हुए रंग-बिरंगे मशरूम और उनके द्वारा बनाए गए गोल चक्र नृत्य करती हुई परियों के वलय के समान नजर आते हैं। जहाँ एक ओर मशरूम आदिमानव के भोजन का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है और वह इनके प्रति आकृष्ट रहा है वहीं विषैले मशरूमों से होने वाले अनिष्टकारी प्रभाव व मृत्यु से वह भयभीत भी रहा है।

मशरूम के अध्ययन से शुरू हुआ कवक विज्ञान आज जीव जगत का एक ऐसा आकर्षक समूह है जिसमें लगभग एक लाख प्रजातियाँ हैं। कवक का एक महत्वपूर्ण वर्ग यीस्ट, शर्करा के अवस्तर पर बहुतायत से वृद्धि करता है और इसका उपयोग डबलरोटी व शराब बनाने में प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। करिश्माई औषधि के रूप में विख्यात प्रतिजैविक पेनिसिलिन कवक *पेनिसिलियम नोटेटम* की ही देन है।

क्या आप जानते हैं कि कवकों के बिना पृथ्वी पर जीवन असंभव हो जाता और पृथ्वी कई फीट ऊँची गंदगी के ढेर में दबी रहती। वातावरण में पौधों के अपशिष्ट को विघटित करने में कवकों की भूमिका है जो अवस्तर को कार्बन डाइऑक्साइड, पानी और कवक जीवभार में विघटित करते हैं तथा दूसरे पोषक तत्वों को पुनः जीवमण्डल में छोड़ते हैं। कहा जा सकता है कि मृत्यु भी कवकों के बिना अपूर्ण है।

कवकों का संसार अनेक विचित्रताओं से भरा पड़ा है और यह वैज्ञानिक जगत में सर्वाधिक चर्चित विषय रहा है। जहाँ कुछ कवक औषधीय गुणों से परिपूर्ण हैं और हर मर्ज की रामबाण औषधि हैं वहीं कुछ अन्य कवक पोषक तत्वों से भरपूर और बेशकीमती भी हैं। कुछ कवक अतिविशाल हैं तो कुछ अत्यन्त सुन्दर आकृति बनाते हैं। कुछ कवक प्रकाश उत्सर्जित करते हैं तो कुछ विष भी उगलते हैं।

स्मिथ और सहयोगियों के अनुसार अमेरिका के मिशिगन के जंगलों में बहुतायत से पाया जाने वाला कवक *आर्मिलेरिया बल्बोसा* सबसे वृहत और प्राचीन जीवों में से एक है। लगभग तीस एकड़ जमीन पर फैले हुए इस कवक का वजन करीब दस हजार किलोग्राम है और अनुमान है कि इसकी आयु पन्द्रह सौ साल से भी अधिक है। यह तथ्य वैज्ञानिक जगत में चर्चा और बहस का मुद्दा भी है कि इस कवक की तुलना व्हेल मछली, विशालकाय रेड वुड और ब्रिसल कोन पाइन से की जा सकती है या नहीं।

दूसरा दीर्घकाय कवक *कालवेशिया जाइगेन्शिया* है। इसे विशालकाय पफ बॉल भी कहा जाता है। इस कवक का फलनकाय ग्लोबाकार, क्रीमी सफेद रंग का होता है जिसका व्यास सामान्यतः 30-40 से.मी. होता है किन्तु कभी-कभी फलनकाय वृद्धि करके एक मीटर या इससे भी बड़े व्यास का हो जाता है। बीजाणु उत्पादन में इस कवक ने अन्य कवकों के मुकाबले कीर्तिमान कायम किया है। आपको यह जानकर हैरानी होगी कि *कालवेशिया जाइगेन्शिया* का एक फलनकाय सात लाख करोड़ ($7\times10^{12}$) बीजाणु उत्पन्न करता है। इन बीजाणुओं का अंकुरण विरले ही होता है। विश्वास नहीं होता है कि प्रकृति इतनी अपव्ययी भी हो सकती है।

हम सभी ने जुगनू को तो रात को चमकते हुए देखा है, परन्तु क्या आप जानते हैं कि कुछ कवक भी प्रकाश उत्सर्जित करते हैं और अंधेरे में चमकते हैं ? इन्हें फॉक्स फायर, ठण्डी आग और प्राकृतिक लालटेन के नाम से भी जाना जाता है। कवकों की लगभग 25 से भी अधिक प्रजातियाँ जैव उद्दीपन दर्शाती हैं इनमें से कुछ जातियाँ हैं – *आर्मीलेरिया, मेलिया, माइसीना क्लोरोफॉस, माइसीना सीट्रिकलर और पेनीलस स्टीप्टीकस*। इन कवकों की जनन संरचना और कवक तन्तु प्रकाश उत्सर्जित करते हैं जो अंधेरे में चमकते हैं। कवकों में इस क्रिया का कारण अभी तक अज्ञात है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि शायद ये कवक कीटों को आकर्षित करने के लिए प्रकाश उत्सर्जित करते हैं ताकि इनके बीजाणु कीटों द्वारा प्रकीर्णित हो सकें। जैव उद्दीपक कवकों का सबसे पुराना उदाहरण अरस्तू (382 ई.पू.) के रिकार्ड में मिलता है। उन्होंने अपने लेखों में लिखा है कि कुछ कवक प्रकाश उत्सर्जित करते हैं जो आग के समान प्रतीत होते हैं मगर यह आग स्पर्श करने पर ठण्डी होती है। प्राचीन काल में यूरोपियन सैनिक इन चमकते हुए कवकों को अपने हेलमेट पर लगाए रखते थे ताकि रात में वे आपस में एक दूसरे को पहचान सकें। कुछ प्रसिद्ध अंग्रेजी कविताओं और उपन्यासों में भी फॉक्स फायर प्रकाश के उपयोग के उदाहरण मिलते हैं।

संसार की लगभग सभी संस्कृतियों में मशरूम के खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग की जानकारी मिलती है। मिश्र के शासक तो मशरूम के इस हद तक दीवाने थे कि उन्होंने एक कानून बना डाला जिसके तहत कोई भी साधारण आदमी मशरूम को स्पर्श तक नहीं कर सकता था। आधुनिक व्यंजनों में मशरूम के उपयोग की नजाकत कौन नहीं जानता? विभिन्न प्रजातियों के मशरूम अब व्यवसायिक तौर पर उगाए जाते हैं। मशरूम को औपचारिक रूप से उगाए जाने का श्रेय फ्रांस के राजा लुई XIV को जाता है जिन्होंने अठाहरवीं सदी में इसकी शुरुआत की। कालान्तर में यह कला यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में फैल गई। आज मशरूम उद्योग एक अत्यन्त

*आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, वनस्पति शास्त्र विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान).

*साइएथस* ( नीड कवक )

*जीएस्ट्रम* ( अर्थस्टार )

*मार्शेला* ( स्पंज मशरूम )

*एगैरिकस*

*माइसीना* ( जैव उद्दीपक कवक )

*गेनोडर्मा* ( लींगची या रैशी )

*अमानिता मस्कारिया* ( फ्लाई मशरूम )

*लाइकोपरडॉन* ( पफ बॉल )

नृत्य करती परियों का वलय ( मशरूम )

समृद्ध व्यवसाय के रूप में स्थापित हो चुका है। मशरूम की लगभग दो हजार जातियाँ ज्ञात हैं जो खाने योग्य हैं जिसमें से प्रमुख हैं – *एगैरिकस बाइस्पोरस* (यूरोपियन या व्हाइट बटन मशरूम), *प्लूरोट्स साजोकाजू* (ढींगरी और इण्डियन ऑइस्टर मशरूम), *प्लूरोट्स ऑस्ट्रीएट्स* (अमेरिकन ऑइस्टर मशरूम) और *वोलवेरिला वोल्वेसिया* (चाइनीज या पेडी स्ट्रॉ मशरूम)। इन मशरूमों को हेल्थ फूड भी कहा जाता है क्योंकि ये प्रोटीन, विटामिन और खनिजों के अच्छे स्रोत हैं। अल्प कैलोरी खाद्य और कॉलेस्ट्रॉल न होने की वजह से यह मधुमेह और हृदय रोगियों के लिए उपयोगी गुणों से भरपूर आदर्श खाद्य पदार्थ है।

पोषक तत्वों से परिपूर्ण *मार्शेला* नामक कवक भारत के उत्तरी क्षेत्रों में बहुत ही लोकप्रिय है। इसे स्पंज मशरूम और गुच्छी के नाम से भी जाना जाता है। यह मुख्यतया *कोनिफेरस* जंगलों में मिलता है और अपनी विशिष्ट गंध की वजह से ऊँचे दाम पर बिकता है।

खाद्य कवकों में ट्रफेल्स बेशकीमती कवक की श्रेणी में आता है। इसे रहस्यों से भरा गड़ा हुआ खजाना भी कहा जाता है। इसका फलनकाय जमीन में धंसा रहता है और एक विशिष्ट गंध बिखेरता है। प्रशिक्षित सुअर और कुत्तों की सहायता से इसे खोद कर बाहर निकाला जाता है। अपनी विशिष्ट गंध की वजह से यह बेशकीमती है। सच माने तो एक पौंड फलनकाय 500 डॉलर (लगभग 25,000 रुपये) में बिकता है। व्यवसायिक रूप से बिकने वाले ज्यादातर ट्रफेल्स मूलतः फ्रांस और इटली में पाए जाते हैं।

एशिया के प्रमुख देश विशेषकर चीन और जापान ने परम्परागत रूप से मशरूम के औषधीय उपयोगों को जान लिया था। यहाँ पाए जाने वाले जादुई मशरूम *गेनोडर्मा ल्युसिडम* को जड़ी-बूटियों का चमत्कारिक राजा कहा जाता है। चीनी लोग इसे लींगची और जापानी इसे रैशी नाम से पुकारते हैं। रामबाण औषधि के रूप में प्रसिद्ध यह कवक रक्त शुद्धिकरण और कॉलेस्ट्रॉल का स्तर कम करने में अत्यन्त ही कारगर है। माना जाता है कि इस कवक का उपयोग रोग प्रतिरोधन और कैंसर के उपचार में भी किया जा सकता है। एल्जीमर्स से पीड़ित रोगियों के इलाज में भी यह बहुत उपयोगी है। कवक *कालवेशिया* में भी ट्यूमररोधी रसायन कालवासिन पाया जाता है जो कैंसर के इलाज में लाभकारी है।

टेक्सस पादप की विभिन्न प्रजातियों से प्राप्त होने वाले फिनॉलिक टेक्सॉल में कैंसररोधी गुण पाए जाते हैं यह स्तन और अण्डाशय के कैंसर के इलाज में अत्यन्त कारगर है मगर प्राकृतिक स्रोत कम होने से इसका चिकित्सा विज्ञान में उपयोग सीमित है। आधुनिक अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि टेक्सस पादप की छाल में पाए जाने वाले अन्तःजीवी कवक *एस्पर्जिलस* और *फ्यूजेरियम* की प्रजातियाँ टेक्सॉल संश्लेषित करते हैं। इन कवकों का उपयोग संवर्धन माध्यम में टेक्सॉल उत्पादन को बढ़ाने में भी किया जाता है।

यह जानकर आश्चर्य होगा कि राई घास के अर्गट नामक रोग का कवक अब उपयोगी दवाइयों के रूप में काम में लिया जाता है। कवक के अर्गट कण (जिसे स्कलेरोशिया कहते हैं) से मिश्रित आटे के सेवन से मनुष्यों में हॉलीफायर नामक रोग की जानकारी मिलती है जिसे सेंट एन्थॉनीज फायर भी कहा जाता हैं। इसमें रोगी के शरीर में आग के समान जलन होने लगती है। कवक में पाए जाने वाले एल्केलाइड्स जैसे अर्गटअमीन, अर्गोमेट्रीन और अर्गोनोवीन अब दवाइयों के रूप में बाजार में उपलब्ध हैं। शिशु जन्म के दौरान प्रसव पीड़ा प्रेरण ओर प्रसवोत्तर रक्तस्राव नियंत्रण में इनका उपयोग अचूक है। लाइसर्जिक एसिड डाइईथाइल अमाइड (एल एस डी) को कौन नहीं जानता है? मतिभ्रम रसायन के रूप में इसका उपयोग मनोरोग चिकित्सकों द्वारा मानसिक रूप से असंतुलित रोगियों के उपचार में किया जाता है।

खाद्य और औषधीय गुणों से परिपूर्ण कवकों के अलावा कुछ ऐसे सौन्दर्यपरक कवक भी हैं जो अनायास ही ध्यान आकृष्ट करते हैं। इन कवकों के फलनकाय विभिन्न सुन्दर मनोहारी आकृतियाँ बनाते हैं। कवक *साइएथस* को नीड कवक भी कहते हैं। इस कवक के परिपक्व खोखले फलनकाय के अन्दर छोटे, कठोर मसूर की आकृति की संरचनाएँ सुव्यवस्थित होती हैं जो अण्डों से युक्त चिड़िया के छोटे घोंसले के समान प्रतीत होती हैं। कवक *जीएस्ट्रम* तारों के समान संरचना बनाता है और इसे अर्थस्टार कहा जाता है।

*लाइकोपरडॉन* को पफ बॉल या स्मोकिंग फंगस के नाम से भी जाना जाता है। इसकी बॉल सदृश फलनायक पर जब बारिश की बूँदें गिरती हैं तो यह इतनी बड़ी संख्या में बीजाणु उत्सर्जित करता है कि पूरा जंगल बीजाणुओं के बादलों से ढक जाता है। वाकई प्रकृति में कवकों का यह संसार कितनी विचित्रताओं से भरा है। सूक्ष्म और विशालकाय संरचना, अमृत और विष, रोग और उपचार, दर्द और दवा न जाने कितने विरोधाभासी गुणों को अपने में समेटे हुए हैं साधारण से दिखने वाले ये असाधारण कवक।

## त्वचा की कोशिकाओं से विकसित किया गया भ्रूण

वैज्ञानिकों ने मानव क्लोनिंग की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है। उन्हें मानव त्वचा कोशिकाओं से शुरुआती दौर का मानव भ्रूण तैयार करने में सफलता मिली है। उनकी इस सफलता से अब पार्किंसन, मल्टीपल सिरोसिस, रीढ़ की हड्डी में चोट और हृदय संबंधी रोगों में प्रत्यारोपण के लिए विशेष उत्तक कोशिकाओं को तैयार करने में आसानी होगी। अमेरिका के ओरेगन नेशनल प्राइमेट रिसर्च सेंटर में यह कार्य सम्पन्न हुआ है। सेंटर के वरिष्ठ वैज्ञानिक सुखरात मितालीपोव के नेतृत्व में शोधकर्ताओं की टीम ने सोमैटिक सेल न्यूक्लियर ट्रांसफर तकनीक का इस्तेमाल करते हुए मानव शरीर की त्वचा कोशिकाओं को शुरुआती दौर के भ्रूण में तब्दील किया है।

प्रमुख समाचार पत्र 'इंडिपेंडेंट' के अनुसार वैज्ञानिकों ने क्लोनिंग से डॉली नामक भेड़ के जन्म के 17 साल बाद यह उपलब्धि प्राप्त की है। शोध पत्र में कहा गया है कि त्वचा कोशिकाओं से भ्रूण तैयार करने में कामयाबी के बाद वैज्ञानिक अब क्लोनिंग के जरिये इंसान पैदा करने की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ गए हैं। मितालीपोव के मुताबिक अब अंग प्रत्यारोपण आपरेशन के लिए विशेष उत्तक का निर्माण मरीज की त्वचा से करना आसान हो जायेगा। उनका कहना था, हमारे शोध का उद्देश्य गंभीर रोगों के इलाज के लिए भ्रूणीय स्टेम सेल तैयार करना था। इसका मानव क्लोनिंग संबंधी शोध से कोई लेना-देना नहीं है। जबकि दूसरे वैज्ञानिकों का कहना है कि यह मानव क्लोनिंग की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

## स्मार्टफोन से बच्चों के मानसिक विकास में बाधा

बच्चों को खेलने के लिए स्मार्टफोन देने से उनके मानसिक विकास में रुकावट आती है। बच्चों को स्मार्टफोन से दूर रखना ही उनके लिए अच्छा है। विशेषज्ञों ने माना है कि जो बच्चे स्मार्टफोन के साथ खेलते हैं, उनका मानसिक विकास सही नहीं होने की आशंका कई गुना बढ़ जाती है। दो साल तक के बच्चों में इतनी समझ नहीं होती कि वे इस तरह की तकनीक के जरिये कुछ सीख सकें, बल्कि इसके विपरित यह उनके ध्यान को भटकाता है। इतनी कम उम्र में स्मार्टफोन के साथ अधिक समय तक बने रहना बच्चे के जरूरी मानसिक विकास में बाधक बनता है और उसका असर बच्चे की आने वाली जिंदगी पर दिख सकती है। यह एक वास्तविकता है कि बचपन में ही मस्तिष्क का आवश्यक विकास हो जाता है। मनोवैज्ञानिक गैल सल्ट्ज के अनुसार बच्चे दो-ढ़ाई साल तक सुनना और बोलना सीखते हैं, जिससे उनका अपना शब्द भंडार तैयार होता है। ऐसे में जब वह स्मार्टफोन के साथ समय बिताएँगे तो उनके बोलने और सुनने की प्रक्रिया में रुकावट आएगी, जो उनके भविष्य को प्रभावित कर सकती है।

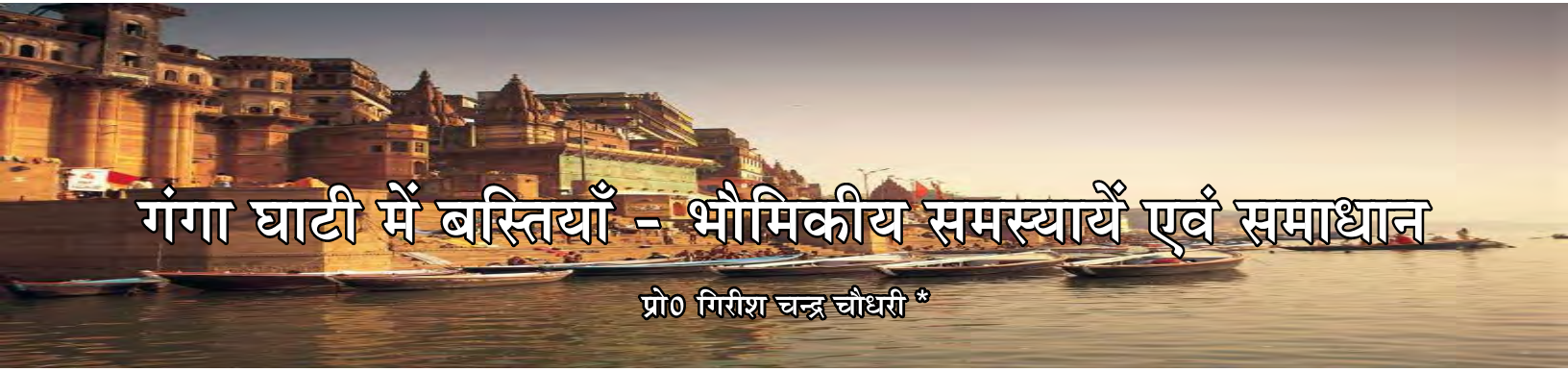

# गंगा घाटी में बस्तियाँ - भौमिकीय समस्यायें एवं समाधान

प्रो० गिरीश चन्द्र चौधरी *

उपरोक्त विषय पर प्रकाश डालने के पूर्व मनुष्य एवं प्रकृति के प्राचीन सम्बन्धों की चर्चा भी की जानी चाहिए। ज्ञातव्य है कि, प्रकृति का आधार है भौमिकी एवं मानव जीवन प्रकृति का दास है, जिसका मूर्त रूप हमारी बस्तियाँ, ग्राम, नगर एवं महानगर की स्थिति है। भौमिकी के आधार पर

गंगा तट पर पूजन

प्रकृति के अनुकूल अपने को परिवर्तित करते रहने की जीवों द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया ने ही कालान्तर में मनुष्य को जन्म दिया और यही गुण मानव के निरन्तर विकास का कारण भी है। वे जीव, जो मनुष्य से कहीं बड़े आकार के थे, आज केवल जीवाश्म रूप में प्राप्त है। कारण स्पष्ट है कि वे ब्रह्म के मूर्त रूप प्रकृति के पुजारी न बन सके अपितु अज्ञानवश उससे एक विरोधी धारा में बहकर काल के गाल में विलीन हो गये। इस यज्ञ में केवल मनुष्य ही ऐसा रहा जो समय-समय पर अपने ज्ञान द्वारा प्रकृति को पहचान कर आज भी अपना अस्तित्व निरन्तर ऊँचा उठाता चला जा रहा है। मानव की इस विकासशील दूरदर्शितापूर्ण प्रक्रिया का रूप हम भली प्रकार से अपनी प्राचीन बस्तियों, ग्रामों, नगर एवं महानगरों के निर्माण एवं विध्वंस में देख सकते हैं। मनुष्य की प्रथम शरणस्थली शैल गुफाओं से लेकर आज के आधुनिकतम सुविधापूर्ण महानगरों तक का रोचक इतिहास भौमिकी पर आधारित प्रकृति एवं मनुष्य के विशेष सम्बन्धों पर अच्छा प्रकाश डालता है। आइये! विश्व की एक प्राचीनतम नगर काशी का, जो अनादिकाल से मानवीय धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, शैक्षणिक एवं नैतिक चेतना की प्रतीक रही है, भौमिकीय दृष्टि से अध्ययन कर उपरोक्त कथन की पुष्टि करें।

प्रकृति का आधार भौमिकी है, अतः मनुष्य ने सर्वप्रथम इसी को पहचान कर प्रकृति से अपने सम्बन्ध स्थापित किये। इस सम्बन्ध का मूलाधार अपने अस्तित्व की रक्षा रहा है। इस दिशा में उदाहरण स्वरूप हमारी वे वासस्थलियाँ ली जा सकती हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि उनके निर्माण का चयन-स्थल भौमिकी के गूढ़ अध्ययन द्वारा ही किया गया है। प्रचुर मात्रा में उपलब्ध खेती एवं मकान बनाने योग्य भूमि तथा सतह एवं

वाराणसी का अर्धचन्द्राकार गंगा घाट

भूगत में प्राप्त जल की बहुलता ने प्रारम्भ में मानव सभ्यता का विकास महान नदियों की जलोढ़ अवसादयुक्त उपत्यकाओं में स्थित नगरों से हुआ। यद्यपि ऐसे कितने ही प्राचीन नगर जिनमें मिश्र का ममफिस, सीरिया का बाबील,टिग्रिस तट का नैनवा नगर कालान्तर में नष्ट हो गये, परन्तु जेरूसेलम, एथेन्स, रोम तथा काशी आदि नगर आज भी संसार के महत्वपूर्ण स्थानों के रूप में विद्यमान हैं। उत्तर ईसा काल के नदी घाटी में बसे नगर जैसे टोक्यो, मास्को, वियना तो निरन्तर विकास द्वारा विश्व के विशिष्ट स्थानों में जाने जाते हैं। सारांश यह है कि जिस मानव-सभ्यता का प्रारम्भ नदी घाटियों में हुआ वह आज भी अधिकतर वैसे ही स्थलों में फल फूल रही है। यद्यपि ऐसे अनेक प्राचीन सभ्यता-स्थल जैसे भारत में सिंधु घाटी के नगर आज अवशेष रूप में मिलते हैं। प्रश्न यह होता है कि क्या कारण है कि कहीं किसी प्राचीन नदी घाटी सभ्यता का समूल विलुप्त हो गया और कहीं यह आज भी विकसित होती चली जा रही है।

उपरोक्त का उत्तर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर मिलता है कि इस विडम्बना का कारण जहां मनुष्य ने अपने जीवन के लिए भौमिकी से सामंजस्य छोड़ दिया वहीं वह ऐसा कठिनाई में पड़ गया कि एक सभ्यता का अस्तित्व ही लुप्त हो गया। सिंधु घाटी सभ्यता के लोप होने के पीछे भी कुछ ऐसी ही बातें हुईं। परन्तु जहाँ मनुष्य ने जीवन हेतु दूरदर्शिता अपनाकर भौमिकी के ज्ञान का गहराई से उपयोग किया वहीं पुरानी गलती

*आचार्य (अवकाश प्राप्त) भौमिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221 005; आवास - भारतेन्दु भवन, चौखम्भा, वाराणसी-221 001.


ISSN 2231-2455

न दुहराकर काशी जैसे नगर बसे जो आज भी अपने महत्वपूर्ण अस्तित्व को विकसित करते जा रहे हैं।

**काशी के गंगा घाट का मनोरम दृश्य**

गंगाघाटी में नगरों-जैसे काशी की स्थिति भौमिकीय रूप से ऐसी है कि नगर सदैव जीवित रहे, साथ ही हमने इसके अलाभकर रूपों का भली प्रकार निवारण करके इसको अक्षुण्ण रखने का सफल प्रयास भी किया है। प्रायः 5000 वर्ष प्राचीन मानी जाने वाली गीता में एवं अन्य प्राचीन धार्मिक हिन्दू ग्रन्थों में काशी का वर्णन प्राप्त है। इससे भी पूर्व वेदकालीन बृहदारण्यक कौशतकी आदि उपनिषदों में ''अजातशत्रुं काश्यं'', काश्योवां वैदेही वोग्र पुत्रः, ऐसे वाक्य मिलते हैं। काशी का धार्मिक महत्व प्रथम तो यह है कि ''काश्यामरणान् मुक्तिः'' अतः काशी में गंगा तट पर मृत्यु का विशेष आग्रह रहा है। अस्सी ओर वरुणा के मध्य गंगा के तट पर स्थित नगर वाराणसी कहलाया जो तीर्थ कहलाता है। इसका अर्थ ही किसी प्रवाह के पार उतरने से है और प्राकृतिक रूप से मुख्यतः जल को ही प्रवाह का प्रतीक मानते हैं। अतः गंगा का काशी ऐसे नगरों से मौलिक सम्बन्ध रहा है। उदाहरणार्थ कभी गंगा ने काशी का रंचमात्र भी त्याग नहीं किया, जैसे यह पटना, कानपुर, इलाहाबाद, भागलपुर आदि नगरों से दूर हट गयी है। गंगा के अतिरिक्त काशी में अनेक जल-स्थान तीर्थ रूप में प्रसिद्ध रहे जैसे लोलार्क कुण्ड, नागकूप। यह नगर अष्ट कूप और नव बावलियों वाला कहा जाता है। भौमिकील जल की प्रचुर उपस्थिति काशी की भौमिकीय बनावट का ही फल है। इस प्राकृतिक सम्पदा की देन हमने अनेक कूप, तालाब, बावलियों द्वारा खूब उपयोग में प्रयुक्त की और उनको धार्मिक महत्व देकर बहुत कुछ प्रदूषण से भी दूर रखा। अभी भी काशी के प्राचीन कूपों में नागकूप, चन्द्रकूप, धर्मकूप, वापियों में ज्ञानवापी एवं अनेक कुण्ड वर्तमान हैं। भौम जल का इतनी बड़ी मात्रा में उपयोग करने का एक कारण यह भी था कि काशी की भूमि में जलस्तर को पर्याप्त नीचे बनाये रखा जाये जिससे कभी भूमि में दलदल अथवा क्षार उत्पन्न होने की आशंका न रहे।

भौमिकीय रूप से घाटी के नगर गंगा के मैदान में नदियों द्वारा लाये अवसादों पर स्थित है। ये जलोढ़ अवसाद बालू, सिल्ट, मृदा, कंकड़ एवं बजरी द्वारा निर्मित हैं। मैदानी भाग में इनकी मोटाई एवं उपस्थिति अत्यंत परिवर्तनशील है परन्तु भौम जल के भंडारण में इन जलोढ़ अवसादों के बालू एवं बजरी के रूप बहुत महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। गंगा के मैदान में नदियों द्वारा लाये जलोढ़ अवसादों को दो भागों में बांटा जाता है। जलोढ़ का यह वर्गीकरण नदी से दूरी, जीवाश्म, अवसादकण के प्रकार एवं गहराई के आधार पर किया जाता है। नदी की घाटियों में प्राप्त जलोढ़ मुख्यतः दो प्रकारों, प्रथम प्राचीन जलोढ़ एवं दूसरे नवीन जलोढ़ के नाम से विभक्त किये जाते हैं। प्राचिन जलोढ़ नदी की बाढ़द्वारा प्रभावित क्षेत्र से दूर, प्लेस्टोसीन युग के विशेष प्राणियों के जीवाश्मों तथा मुख्यतः कंकड़युक्त बालू, मृदा एवं बजरी वाले होते हैं। प्राचीन जलोढ़ में कंकड़युक्त मृदा एवं स्वतंत्र मृदा के अवसाद वाले अलग-अलग स्तर होते हैं जिनमें बालू के ऊपर मृदा एवं कंकड़युक्त मृदा के स्तर प्राप्त होते हैं। यद्यपि इन दोनों स्तरों में भौम जल प्राप्त होता है, पर बालू के स्तर में यह अधिक मात्रा में मिलता है।

इन प्राचीन जलोढ़ की आयु 1 से 4 लाख वर्ष जीवाश्मों के आधार पर आंकी गयी है। दूसरी ओर नवीन जलोढ़ वर्तमान काल में नदियों के तटबन्धों के पास, बाढ़ से प्रभावित होने वाले क्षेत्र तक सीमित रहते हैं। ये अधिकतर बालू, सिल्ट एवं मृदायुक्त होते हैं। इनमें कंकड़ बहुत कम एवं मछलियों, सीपी, घोंघे के जीवाश्म मिलते हैं। नवीन जलोढ़ गहराई तक नहीं पाये जाते और न ही इनमें स्तर होता है, साथ ही भौम जल की मात्रा भी प्राचीन जलोढ़ की अपेक्षा कम पायी जाती है। ऐसे जलोढ़ गंगा एवं सहायक नदियों के किनारे के क्षेत्रों में दृष्टिगत होते हैं।

गंगा की घाटी में इन जलोढ़ों के नीचे चट्टानों की उपस्थिति के प्रकार में अभी मतभेद हैं। इस मतभेद का कारण जलोढ़ के नीचे की चट्टानों का पूर्ण विवरण न प्राप्त होने से है। घाटी में जलोढ़ की मोटाई भी कहीं 10,000 फीट तो कहीं 15,00 फीट ही है। यह घाटी उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वतमालाओं को स्पर्श करती है। अतः दोनों पर्वत श्रेणियों की चट्टानें इस घाटी की तलहटी में प्राप्त हो सकती हैं। वर्तमान काल में हिमालयी भूकम्पों के धक्के इस घाटी में भी यदा-कदा आने के कारण इस पर्वत श्रेणी की चट्टानों की उपस्थिति का प्रायः अनुमान है। साथ ही घाटी की नदियों में विसर्पों की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि घाटी की तली भी हिमालय के निरन्तर उत्थान से सदा उठ रही है और इस उत्थान का सम्बन्ध नदियों के विसर्पण से अन्योन्याश्रित बताया जाता है। ज्ञातव्य है कि गंगा-सिन्धु का मैदान दक्षिण के पठार एवं उत्तर में हिमालयी क्षेत्र के आपसी टकराव से मध्य में एक विशालखण्ड की व्युत्पत्ति के बाद धीरे-धीरे हिमालयी नदियों के जलोढ़ द्वारा भरने से बना है। फलतः इन निक्षेपों के नीचे किस पर्वत श्रेणी की चट्टाने हैं, स्पष्ट रूप से कहना कठिन है।

इसी गंगा घाटी में स्थित काशी जैसे नगरों की भी वही भौमिकीय अवस्था है, जो संपूर्ण घाटी की विशेषता है। काशी, जो घाटी के दक्षिणी ओर पर स्थित है, जहाँ से विन्ध्यपर्वत मालायें अत्यंत निकट हैं और काशी के चकिया क्षेत्र में तो ये दृश्य भी हैं। संपूर्ण वाराणसी जिले में गंगा ही प्रमुख नदी है और इसमें गोमती तथा वरूणा सहायक नदियों के रूप में मिलती हैं। कर्मनाशा नदी इसके दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है और बिहार की सीमा बनाती है। सभी नदियां बहुत विसर्पित हैं और अनेक छाड़न झीलों की उपस्थिति उनके प्राचीन विसर्पण का इतिहास बताती हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि काशी के नगर क्षेत्र में अस्सी से राजघाट तक गंगा का विसर्प अति प्राचीनकाल से काशी को सदा अंकहु लपटाई को सिद्ध करता दीख पड़ता है और कभी यह भाग गंगा के प्रवाह से विरत नहीं हुआ, यद्यपि इसके ठीक उत्तर एवं दक्षिण के भाग में गंगा ने अनेक धाराएं बदली हैं। इस तथ्य को समझने हेतु सम्पूर्ण काशी जिले की सतह के नीचे प्राप्त जलोढ़ों के स्तर एवं उनकी स्थिति का ज्ञान करना होगा। यह स्थिति हम जिले में बने नलकूपों के उत्खनन से प्राप्त भूगत जलोढ़ स्तरों के नमूनों से मालूम कर सकते हैं। ये नमूने ज्यादातर ''प्राचीन जलोढ़'' के हैं जो विभिन्न मोटाई एवं गहराई पर उन स्थानों पर प्राप्त होते हैं, जहां से आज गंगा दूर हैं, यद्यपि कभी इसकी उपस्थिति ''प्राचीन जलोढ़'' के स्तरों द्वारा उस स्थान पर इंगित होती है। काशी का नगर क्षेत्र जो गंगा के विसर्प के बायें किनारे के तटबन्ध पर स्थित है, मुख्यतः ''प्राचीन जलोढ़'' स्तर इसके भूतल में प्राप्य है। काशी क्षेत्र में ये ''प्राचीन जलोढ़'' 120 मीटर तक की गहराई में मिलते हैं। नवीन जलोढ़ गंगा के किनारे जहां तक बाढ़का जल फैलकर जाता है, तथा गोमती, कर्मनाशा एवं वरूणा के किनारे प्राप्त होते हैं। ''प्राचीन जलोढ़'' में अपने सभी गुण पाये जाते हैं। जहां तक जीवाश्मों का प्रश्न है, चंदौली तहसील के गंगा-किनारे स्थित प्रहलादपुर ग्राम में हमें प्राचीन हाथी स्टीगोडोन इंडीकस का एक चौघड़ दाँत जो 1 फुट वर्ग का है, प्राप्त हुआ था जो विश्वविद्यालय (बी0एच0यू0) के भौमिकी विभाग में सुरक्षित है। गंगा का प्रवाह काशी नगर क्षेत्र में सदा से वर्तमान विसर्प में बना हुआ है, और कोई परिवर्तन इसकी धारा में नहीं हुआ है। यह तथ्य, जैसा कहा गया है, कि नलकूपों से प्राप्त ''प्राचीन जलोढ़'' की मोटी तह की उपस्थिति से पुष्ट होता है। साथ ही रामनगर के दुर्ग की स्थिति भी बहुत कुछ गंगा के काशी से सम्बन्ध को स्थिर रखने में सहायक है। काशी नगर क्षेत्र में प्रवेश होने के ठीक पूर्व, दक्षिण में, गंगा के दाहिने किनारे स्थित यह दुर्ग दक्षिण-पश्चिम से आने वाले गंगा के प्रवाह में एक अवरोध उत्पन्न कर उत्तर में काशी नगरी की ओर धकेल देता है, और यह धारा अपने रोष को बड़े वेग से प्रकट करती हुई एक विसर्प बनाती हुई काशी को बायें किनारे छूती हुई निकलने को बाध्य होती है। इस विसर्प के नतोदर भाग में काशी औसतन 50 मीटर की ऊँचाई के तटबन्ध पर बसी है। तटबन्ध के नीचे घाट बने हैं तथा धारा घाटों को बड़े विगरह से विशेषकर हरिश्चन्द्र, केदार एवं मर्णिका घाटों को स्पर्श करती हुई जाती है। संभवतः श्मशानघाट की स्थिति धारा के विशेष वेग को देखकर की गयी थी। ज्ञातव्य है कि घाटों के सामने गंगा की गहराई, विसर्प के बायें अथवा नतोदर भाग में स्थित होने के कारण बहुत है जबकि पार में यह अत्यंत उथली है। घाटों के समक्ष की गहराई जल के वेग व मात्रा की द्योतक हैं। साथ ही घाटों की नींव की कटाई का भी संकेत हैं। यद्यपि विसर्प के नतोदर भाग में तटबन्ध का कटाव एक नैसर्गिक भौमिकीय प्रक्रिया है जिसे नदियां सामान्य रूप से अपनाती ही हैं। परन्तु, अगर कोई नगर इन तटबन्धों पर बसा हो तो यह बात खतरनाक सिद्ध हो सकती है क्योंकि ऐसे तटबन्ध कालान्तर में ध्वस्त हो सकते हैं और नदी उनको अपने कटाव से विलीन कर देती है। परन्तु, काशी तटबन्ध पर बने पक्केघाट, जल के कटाव को सहकर नगर की रक्षा कर सकने में समर्थ हैं। यद्यपि कटाव के कारण इन घाटों की पक्की नींव भी खोखली होती जा रही है जिसे सरकार द्वारा पत्थर गिराकर पुनः भरा जा रहा है। चूँकि काशीनगर तटबन्ध पर ऊँचाई पर स्थित है, फलतः नगर के अन्दर बाढ़ का पानी बहुत कम प्रविष्ट कर जाता है। साथ ही तटबन्ध पर स्थित होने से भौमजल भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो जाता है। फलतः अनेक कूप, बावलियों एवं तालाबों द्वारा नगर की जल संभरण की स्थिति भी मजे में निपटायी जा सकती है, साथ ही भौम जलस्तर भी बहुत कुछ नियंत्रित किया जा सकता है जिससे वह अनियमित रूप से वर्षाकाल में ऊपर उठकर भूमि को नष्ट न कर सके। तटबन्धों में पाये जाने वाले भौमजल अनेक भूगत स्रोतों के रूप में मुख्य नदी में मिल जाते हैं।

काशी पंचगंगा घाट एवं दशाश्वमेध घाटों पर पायी जाने वाली अनके पाताल नदियाँ तीर्थ रूप में विख्यात हैं। इनका भी भौमिकीय दृष्टि से महत्व है। ये स्रोत धीरे-धीरे तटबन्ध में भीतर ही भीतर एक घाटी का निर्माण कर स्थान-स्थान पर कटाव उत्पन्न कर देते हैं। घाटों के निर्माण के समय इनका विशेष ध्यान रखा गया है तथा घाटों की नींव पक्की तथा भरावदार न होकर कूप विधि से रखी गयी है। फलतः कूपों के मध्य से ये स्रोत गंगा में अपना रास्ता बनाये रखे रहें। ये अन्तरवाहिकाएँ निर्बाध रूप से घाटों के नीचे से बह रही हैं और घाट अपने स्थान पर खड़े हैं। ऐसा न करने पर ये वाहिकाएँ नींव को काटकर गंगा में रास्ता बनातीं और घाट अपने को

**गंगा नदी के राजघाट पर बना विशाल लौह पुल**

संपूर्ण रूप से ले-देकर गंगा में विलीन हो जाते। काशी का सिंधिया घाट इसी स्थिति का सामना करते हुए तीसरी बार कूपदार नींव पर खड़ा किया गया है। अनेक घाट ऐसी स्थिति में न बने होने के कारण कालान्तर में भौमजल स्रोतों की वजह से गंगा में ढ़ह चुके हैं। वाराणसी एवं घाटी के नगरों की भौमिकीय स्थिति के अन्य लाभ भी हैं। जैसा ज्ञात हुआ है कि वाराणसी क्षेत्र के प्राचीन जलोढ़ स्तरों में कंकड़ की बहुतायत है। ये कंकड़ बालू की मोटी तह के ऊपर जमीन से कम गहराई में ही पाये जाते हैं। काशी में अनेक स्थानों में इनकी खुदाई चूना बनाने एवं सड़क बिछाने के कंकड़ हेतु की जाती है जो एक अच्छा उद्योग भी है। इस कंकड़ के ऊपर मृदा भी प्राप्त होती है, जिसका उपयोग खिलौने तथा बरतन बनाने के कुटीर उद्योग में काम आता है। कंकड़ के नीचे प्राप्त होने वाली बालू की मोटी परत भौमजल के भंडारण का अच्छा स्थान है जहाँ गहरे नलकूपों द्वारा काफी मात्रा में जल प्राप्त किया जा रहा है।

घाटी के नगरों की भौमिकीय स्थिति के अनेक अलाभकर पक्ष भी हैं। गंगा का वेगवान प्रवाह नगरों के तटबन्धों को तो काटता रहा है, साथ ही राजघाट जैसे पुलों के खंभों को भी सदा कटाव द्वारा कमजोर करता रहता

राजघाट पुल का विहंगम दृश्य

है, जिस पर निरन्तर ध्यान देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त गंगा के किनारे नगर एवं ग्रामीण क्षेत्रों से होने वाले बड़ी मात्रा में प्रदूषण को भौमिकीय स्थिति से समर्थन प्राप्त होता है, जिसका अध्ययन एवं रोकथाम आवश्यक है। विस्तृत रूप से इसकी चर्चा किसी अन्य लेख में की जायेगी।

# जन्तुओं का व्यवहार भी देता है भूकम्प की सूचना

सुशील कुमार *

वैज्ञानिक दुनिया की यह कड़वी सच्चाई है कि इंसान आज भी भूकंप की भविष्यवाणी करने में समर्थ नहीं हो सका है। सीधा मतलब है कि हम भूकंप को रोक नहीं सकते, लेकिन इसके लिए तैयार तो हो सकते हैं। हमें जापान की तरह इसके साथ जीने का तरीका सीखना होगा। उत्तर काशी में 1991 में आए जिस भूकंप ने हजारों जिंदगियाँ लील ली थीं, वह अगर जापान में आता, तो वहाँ शायद एक भी मौत न होती। वजह उन्होंने खुद को इस प्राकृतिक आपदा का मुकाबला करने के लिए तैयार कर लिया है। हमारे यहाँ आज भी लोग मकान या अन्य भवन बनाते समय कभी यह नहीं सोचते कि भूकंप से यह कितना सुरक्षित है। इस बारे में सख्त कानून बनाए जाने की जरूरत है कि संवेदनशील इलाकों में एक भी भवन ऐसा न बने, जिसमें भूकंपरोधी तकनीक इस्तेमाल न की गई हो। हिमालयी क्षेत्र में यह भी देखना होगा कि हम विकास का कैसा मॉडल अपना रहे हैं? क्या वह मॉडल भूकंप संवदेनशील क्षेत्र में सही है? बीते दशकों में हिमालय की संवेदनशील प्लेट्स पर दबाव काफी बढ़ा है, क्योंकि यहाँ मानव गतिविधियाँ अनियंत्रित ढंग से हो रही हैं। आम लोगों को अपना मकान या दुकान बनाते वक्त इसे ध्यान में रखना होगा। जब आप अपने मकान के नक्शे के लिए इंजीनियर की शरण में जाते हैं, तब उससे यह भी पूछें कि मकान भूकंपरोधी हो, इसके लिए क्या उपाय किए जाने हैं। भूकंप के वक्त आम आदमी क्या प्रतिक्रिया करता है, इससे भूकंप के दौरान होने वाले जान-माल के नुकसान का सीधा संबंध है। शासन-प्रशासन को गाँव-गाँव जाकर लोगों को प्रशिक्षित करना होगा कि भूकंप आने पर वे क्या करें और क्या न करें।

यह भी महत्वपूर्ण है कि भारत में भूकंप पर शोध करने के लिए नए तरीकों पर काम किया जाए। यह पाया गया है कि कई जानवर और पक्षी भूकंप से पहले की तरंगों को महसूस कर लेते हैं। खुद मैं हिमालय में कई ऐसे लोगों से मिल चुका हूँ, जिनके पालतू पशुओं ने उन्हें भूकंप की पूर्व सूचना दे दी थी। यह देखा गया है कि पक्षी, कीट-पतंगे और जानवर भूकंप से पहले असामान्य व्यवहार करने लगते हैं। चीटियाँ अपनी बांबी से बाहर आ जाती हैं, कई जानवर चिल्लाना शुरू कर देते हैं, पक्षी खाना-पीना बंद कर देते हैं और गाना नहीं गाते। इन जानवरों के व्यवहार पर नजर रखने के लिए अगर प्रयोगशाला बनाई जाए, तो ये भी भूकंप की पूर्व सूचना

भूकम्प की सूचना देता

भूकम्प की सूचना देती चींटियाँ

देने में मददगार साबित हो सकते हैं। यह कोई अनोखा विचार नहीं है, चीन में इस पर काम भी हो रहा हैं हमारे देश में भी यह किया जाना चाहिए।

बीते एक दशक में आए छोटे और मध्यम भूकंपों का डाटा हिमालयी प्लेट में भूकंप के सीजनल व्यवहार पर भी एक संकेत देता है। 1999 से 2008 तक के डाटा से पता चला है कि सर्दी के मौसम में भूकंपों की संख्या गरमी के मुकाबले दो से ढ़ाई गुना ज्यादा होती है। इसकी वजह यह है कि सर्दी से पहले मानसूनी बारिश हिमालय की नदियों-नालों को पानी से भर देती है। यह पानी प्लेटों के अंदर तक चला जाता है जिससे पहाड़ की सतह पर भार ज्यादा हो जाता है। आंकड़ों से निकल रहे इस तथ्य की पुष्टि के लिए शोध शुरू कर दिया गया है। कुल मिलाकर, भूकंप से बचाव हो सकता है, लेकिन इसमें वैज्ञानिक समाज, सरकार और आम नागरिक, सबको अपने-अपने हिस्से का काम करना होगा।

(साभार – हिन्दुस्तान 18 अप्रैल, 2013)

*समूह प्रमुख, भू-भौतिकी विज्ञान, वाडिया इन्स्टीट्यूट आफ हिमालयन जीओलाजी, देहरादून.

# एफ.एम. रेडियो प्रसारण

मेहेर वान राठौर *

भारत में रेडियो प्रसारण के लगभग 75 वर्ष बीत चुके हैं। इस लम्बे समय में प्रसारण की संरचना और तरीकों में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। रेडियो प्रसारण में प्रयुक्त होने वाली तकनीक में भी लगातार प्रगति हुई है। रेडियो प्रसारण के शुरुआती दौर में जहाँ चुम्बकीय टेप में रिकार्ड किये गये कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता था, वहीं आज डिजिटल तकनीक पर आधारित ऑडियो प्लेयर्स की सहायता से कार्यक्रमों को प्रसारित किया जाता है। डिजिटल तकनीक पर आधारित कार्यक्रमों के प्रसारण की गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ है। चुम्बकीय टेप में मोनो ट्रेक में रिकॉर्डिंग की जाती थी और अब डिजिटल तकनीक से स्टीरियों और मल्टी ट्रेक्स में रिकॉर्डिंग होने से कई इफेक्ट्स के साथ कार्यक्रमों को रिकॉर्ड करके प्रसारण की गुणवत्ता में सुधार किया गया। रेडियो प्रसारण के क्षेत्र में सबसे क्रान्तिकारी घटना थी एफ.एम. प्रसारण की शुरुआत होना। मेरे हिसाब से, यदि तकनीकों के दुरुपयोग के बारे में अध्ययन किया जाये तो रेडियो प्रसारण की एफ.एम. तकनीक भी दुनियाँ की सबसे ज्यादा दुरुपयोग की गयी तकनीकों में से एक साबित होगी।

मोनो ट्रेक रिकार्डर

मल्टी ट्रेक्स रिकार्डर

दरअसल, एफ.एम. रेडियो प्रसारण की ऐसी तकनीक है जिसकी सहायता से अत्यन्त उच्च कोटि की गुणवत्ता के साथ रेडियो कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा सकता है। रेडियो प्रसारण के शुरुआती दौर में कार्यक्रमों का प्रसारण ए.एम. अर्थात् 'एम्प्लीट्यूड मोड्युलेशन' पर आधारित तकनीक की सहायता से होता था। आकाशवाणी अर्थात् ऑल इंडिया रेडियो के सभी चैनलों का प्रसारण एम्प्लीट्यूड मोड्युलेशन वेव्स की आवृत्ति (Frequency) के बैंड पर होता था। समय के साथ शॉर्ट वेव पर भी प्रसारण किया जाने लगा। मगर इन दोनों तकनीकों में प्रसारण की गुणवत्ता लगभग समान ही थी। प्रसारण के बीच में खरखराहट और अनावश्यक ध्वनियाँ भी प्रसारित हो रहे कार्यक्रमों के साथ सुनाई देती थीं। शॉर्ट वेव और मीडियम वेव पर कार्यक्रम सुनने वाले लोग इस परेशानी के बारे में परिचित होंगे। इन अनावश्यक ध्वनियों और खरखराहट से निजात पाने के लिये और प्रसारण की गुणवत्ता में सुधार के प्रयास लगातार होते रहे, क्योंकि रेडियो ने संचार क्रांति को नये आयाम दिये थे और रेडियो सूचनाओं के प्रसार का महत्वपूर्ण साधन बनकर उभर रहा था। इसी दौर में रेडियो प्रसारण की एफ.एम. तकनीक का भी आविष्कार हुआ जिसने रेडियो प्रसारण की परिभाषा बदल दी। खरखराहट और अनावश्यक ध्वनियों से मुक्त प्रसारण एफ.एम. यानि फ्रीक्वेन्सी (आवृत्ति) मॉड्युलेशन पर आधारित प्रसारण के कारण ही संभव हो सका। इतना साफ और स्पष्ट प्रसारण ए.एम. और शॉर्ट वेव पर प्रसारण में कभी संभव नहीं था। अब हम रेडियो पर कार्यक्रमों को उसी गुणवत्ता के साथ सुन सकते थे जिस तरह कार्यक्रम को सामने बैठ कर सुन रहे हों। मूलतः, एफ.एम. रेडियो तरंगों के प्रसारण की एक तकनीक है, लेकिन इस तकनीक पर बाजार के प्रभाव के कारण रेडियो पर कार्यक्रमों द्वारा मनोरंजन की एक शैली को एफ.एम. शैली के नाम से जाना जाने लगा। इस उच्च कोटि की प्रसारण विधि का बाजार और नव-उपनिवेशवादियों ने अपने लाभ के लिये मनमाने तरीके से इस्तेमाल किया। इस तरह जनकल्याण में प्रयोग की जा सकने वाली और जनता को सूचना सम्पन्न करने में सक्षम उच्च कोटि की गुणवत्ता वाली तकनीक को खोखले

एफ. एम. रेडियो

*शोध छात्र, भौतिकी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय - 211 002.


ISSN 2231-2455

**मोबाइल में एफ.एम. रेडियो**

और लक्ष्यहीन मनोरंजन का साधन बनाया गया। दुनियाँ के युवाओं और जनता का विश्व की अत्यन्त मूलभूत और अपरिहार्य समस्याओं से ध्यान हटाकर खोखले और विचारहीन मनोरंजन के द्वारा एक गैरजिम्मेदार और बौद्धिक विपन्न समाज बनाने में इस तकनीक का इस्तेमाल किया गया। दुनियाँ के तमाम समाजशास्त्री और प्रगतिवादी, तथाकथित प्रगति की इस प्रक्रिया के मूक दर्शक बने रहे, और नवउपनिवेशवादी बाजार ने दुनियाँ के तमाम देशों के युवाओं और जनता को प्रगति, आधुनिकता की चादर ओढे छलायोजित मनोरंजन के द्वारा खोखला बनाया, और आज भी बना रहा है।

बीसवीं सदी में तकनीक के क्षेत्र में अकल्पनीय प्रगति हुई बीसवीं सदी में ही एक प्रतिभावान इंजीनियर पैदा हुआ था, जो कि तकनीक और उसके बाजारीकरण की चकाचौंध में गुम हो गया। उसके द्वारा आविष्कृत तकनीक का कोर्पोरेट शक्तियों ने भरपूर और मनमाना इस्तेमाल किया और लाभ कमाया। मगर शायद ही आपने किसी ''एड्विन हॉवार्ड आर्मस्ट्राँग'' का नाम सुना हो। एड्विन आर्मस्ट्राँग बीसवीं सदी के प्रतिभावान और महत्वपूर्ण इंजीनियर्स में से एक थे, जिसने रेडियो प्रसारण की एफ.एम. तकनीक का आविष्कार किया था। तब एड्विन आर्मस्ट्राँग मात्र ग्यारह साल के ही रहे होंगे, जब मारकोनी ने व्यावसायिक टेलीफोनी का आविष्कार करके सनसनी फैला दी थी। मारकोनी की इस सफलता से प्रभावित होकर एडविन आर्मस्ट्राँग ने वायरलेस तकनीक में शोध करने और इस दिशा में अपना कुछ योगदान करने का निर्णय लिया था। एड्विन आर्मस्ट्राँग ने रेडियो प्रसारण की एफ.एम. अर्थात् 'फ्रीक्वेन्सी मोड्यूलेशन' पर आधारित तकनीक का आविष्कार करके रेडियो प्रसारण को एक नयी दिशा देते हुये टेलीविजन, राडार और सेल्यूलर टेलीफोनी जैसी महत्वपूर्ण तकनीकों का रास्ता तैयार किया। आज भी एड्विन आर्मस्ट्राँग की तकनीक इन तकनीकी सेवाओं का आधार है। मगर आज तक एड्विन आर्मस्ट्राँग को अपनी मेहनत ओर खोजों के लिये कोई पहचान नहीं मिली। जब तक वह जिन्दा रहे, अपनी इन महत्वपूर्ण खोजों के लिये एक साधारण पहचान पाने का प्रयास करते रहे और ठीक उसी समय कॉरपोरेट इन महत्वपूर्ण खोजों का इस्तेमाल बिना किसी जिम्मेदारी के अपने लाभ के लिये करता रहा। अंततः, यह संघर्ष एड्विन आर्मस्ट्राँग को गहरे निराशावाद की तरफ ले गया और उसने सन् 1954 में आत्महत्या कर ली।

**एड्विन हॉवार्ड आर्मस्ट्राँग**

आज सम्पूर्ण भारत में कई शैक्षिक और स्वस्थ मनोरंजन उपलब्ध कराने वाले रेडियो चैनल एफ.एम. तकनीक की सहायता से चल रहे हैं, जो कि ध्यान न दिये जाने के अभाव में अपना स्तर और श्रोताओं में पहुँच कम करते जा रहे है। सरकारी मदद से चलने वाले एफ.एम. चैनल ज्ञानवाणी जैसे चैनल युवाओं के लिये और अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, यदि इनमें कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार करते हुये, इन पर उचित रूप से ध्यान दिया जाये। आज भी आकाशवाणी का एफ.एम. पर आधारित चैनल विविध भारती अपने कार्यक्रमों की गुणवत्ता और स्वस्थ मनोरंजन के लिये उदाहरण के रूप में पेश किया जा सकता है। प्राइवेट चैनलों की अपेक्षा इन सरकारी चैनलों पर ध्यान दिया जाये और इस तकनीक का इस्तेमाल सूचनाओं और ज्ञान के संचार सहित स्वस्थ मनोरंजन के लिये किया जाये तो एफ.एम. की छवि जन कल्याण तथा समाज को ज्ञानवान और जिम्मेदार बनाने के उपकरण के रूप में स्थापित होगी।

**प्रसारण**

एफ.एम. रेडियो प्रसारण की एक उच्च कोटि की तकनीक है, और उस तकनीक का उपयोग समाचार और सामाजिक मसलों पर बहसों में जनसामान्य की भागीदारी बढ़ाने के लिये किया जाना चाहिये। एक समय में रेडियो ने सूचनाओं के प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उस समय कार्यक्रमों का प्रसारण ए.एम. अर्थात प्राइमरी चैनल और शॉर्ट वेव पर होता था। इन तकनीकों की सहायता से प्रसारण साफ और स्पष्ट सुनाई नहीं देता, साथ ही इन फ्रीक्वेन्सीज पर प्रसारण में खरखराहट और अनावश्यक ध्वनियाँ भी प्रसारण को उबाऊँ बना देती थी। आज के समय यदि समकालीन मुद्दों पर चर्चायें, समाचार, स्वस्थ मनोरंजन को आकर्षक, रोचक और बेहतर ढंग से एफ.एम. फ्रीक्वेन्सी बैंड पर एफ.एम. तकनीक की सहायता से प्रसारित किये जायें तो यह कार्यक्रम साफ, स्पष्ट और बेहतर गुणवत्ता के साथ जनता तक पहुँच सकेंगे। इसके साथ ही रेडियो एक बार फिर राष्ट्र निर्माण में कल्याणकारी भूमिका निभाते हुये, विज्ञान और तकनीक के बेहतर उदाहरण के रूप में उभर कर सामने आयेगा। अन्यथा, यह तकनीक किसी परमाणु बम से कम विनाशकारी नहीं साबित होगी, जो कि एक विचारहीन, विवेकहीन और गैरजिम्मेदार अपंग पीढ़ियों का निर्माण करेगी।

# उच्च तापमान सुपर कंडक्टरः उद्योगों के लिए एक मील का पत्थर

संजय गोस्वामी *

अतिचालक विज्ञान की एक ऐसी विधा है जिनके उपयोग से विद्युत संचार, ऊर्जा संचय, स्क्विड, सुपर कम्प्यूटर, हाई स्पीड चुंबकीय ट्रेन से एक नये युग की शुरुआत हुई जो हाईटेक का युग है एक लंबे समय से अतिचालकता के खोज के 100 वर्ष से अधिक पूरा होने के पश्चात् उच्च ताप अतिचालक पदार्थ के अनुसंधान एवं विकास कार्य में विशेष अभिरुचि उत्पन्न हुई है। प्रस्तुत लेख में उच्च तापमान अतिचालक पदार्थ के गुण, क्रमिक विकास, संविचरण सूक्ष्म संरचना तथा भविष्य में उनके उपयोगों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

चालक (धातु) में ताप बढ़ाने से प्रतिरोधकता रेखिय रूप में बढ़ती है जबकि अर्द्धचालक पदार्थ में ताप बढ़ाने से प्रतिरोध बहुत तेजी से चरघांताकी रूप से बढ़ता है ($R \propto e^{T^3/_2}$)।

कुछ पदार्थों में तापक्रम एवं प्रतिरोध के बीच एक असामान्य संबंध देखा गया है। जैसे-जैसे तापक्रम घटाया जाता है, पदार्थ का प्रतिरोध शुद्ध धातु की तरह धीरे-धीरे घटता है परन्तु एक निश्चित ताप (निम्न) के बाद प्रतिरोध बहुत तेजी से घटकर शून्य हो जाता है। जैसे पारे का प्रतिरोध $4^0K$ पर शून्य हो जाता है। इस घटना को अतिचालकता कहते हैं जो निम्न से निम्न ताप पर प्रतिरोध के घटने से होती है। आज अतिचालक की खोज के 102 वर्ष पूरे हो गए हैं। वर्ष 1911 में हालैंड के लीडन विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक कैमरलिंग ने परमशून्य के काफी नजदीक ($4.2^0K$) ताप पर द्रव हीलियम (He) से महत्वपूर्ण प्रयोग किया था। उन्होंने पारा (Hg) धातु की मात्रा को द्रव हीलियम में डुबोया तथा उससे एक ठोस तार बनाया और फिर पारे के तार का एक चक्र बनाकर उसमें विद्युत धारा प्रवाहित की जो बिना रूकावट के निरन्तर बहती रही और काफी समय बाद तक विद्युत धारा का मान भी वही था अर्थात् जो पदार्थ अतिचालक की अवस्था में रहता है तो उस पदार्थ में एक बार किसी विद्युत स्रोत से धारा प्रवाहित करें और बाद में हटा लें तो भी सप्ताह या महीने भर तक उस परिपथ में धारा बहती रहे तो इसे अतिचालकता का गुण मानेंगे। वह तापमान जिस पर पदार्थ का प्रतिरोध एकाएक नगण्य हो जाए वह उस पदार्थ का क्रांतिक ताप कहलाता है।

बहुत सी धातुएँ, तत्व, यौगिक तथा मिश्र धातुएं अतिचालकता का गुण दर्शाती हैं। जैसे- Cs, Sn, Hg, एवं Pb का क्रांतिक तापमान क्रमशः $1.5^0K$, $3.7^0K$, $4.2^0K$ एवं $7.3^0K$ होता है।

अतिचालकता का सिद्धान्त वस्तुतः 1957 में बी.सी.एस. के रूप में वैज्ञानिक बार्डिन कूपर एवं श्रीफर द्वारा दिया गया था। बाद में जब प्रायोगिक सत्यापन हुआ तो 1961 में वैज्ञानिक बार्डिन कूपर को इस शोध पर नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। इस सिद्धांत का मुख्य आधार था – इलेक्ट्रॉन-फोनॉन अंतर्क्रिया। कूपर के अनुसार इलेक्ट्रॉन-फोनॉन की अर्न्तक्रिया के दौरान पदार्थ में फर्मी लेवल (f(E)=1/ehu/KT+1) के निकटवर्ती इलेक्ट्रॉन में आकर्षण अन्तर्क्रिया उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण क्रांतिक ताप के कम तापमान पर ''इलेक्ट्रॉन-युग्म'' यानि ''कूपर युग्म'' बन जाते हैं। फर्मी लेवल वस्तुतः संयोजी से चालन बैंड में इलेक्ट्रॉन के कूदने की अधिक सम्भाव्य वैल्यू (Most Probable Value) है जो अतिचालक के प्राथमिक धारा वाहक होते हैं। ''कूपर युग्म'' के दो इलेक्ट्रॉन के संवेग समानापस्तु विपरीत दिशा में होते हैं। इनके स्पिन (घुमाव) भी विपरीत होते हैं जो पॉली के सिद्धांत को मानते हैं। सिरेमिक पदार्थ पर बी.सी.एस. का सिद्धांत ठीक ढंग से नहीं बैठ पाता है। अतिचालक वस्तुतः दो प्रकार के होते हैं।

1- नरम अतिचालक

2- कठोर अतिचालक

नरम अतिचालक में उनके क्रांतिक चुम्बकीय क्षेत्र तक उसमें से गुजरने वाली बल रेखाओं की संख्या शून्य होती है। कठोर अतिचालक में उनके क्रांतिक चुम्बकीय क्षेत्र में प्रवाहित विद्युत धारा का मान अधिक होता हैं इसमें निम्न क्रांतिक क्षेत्र से धारा एक क्रांतिक ताप पर चुम्बकीय बल

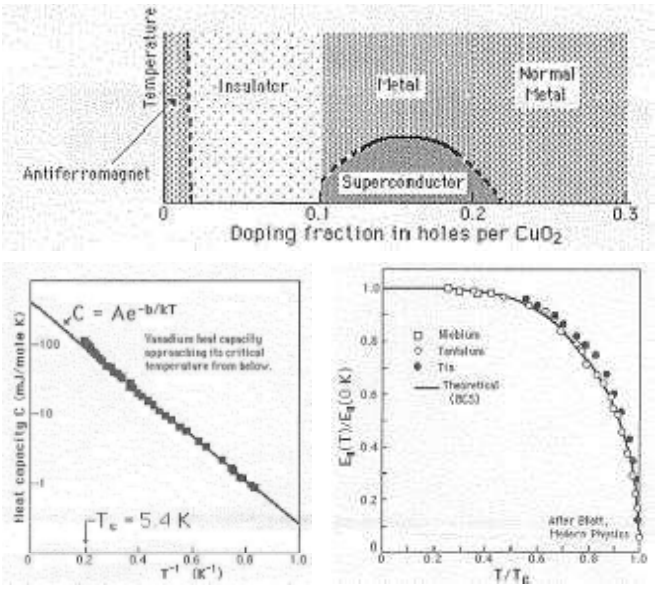


**BCS सिद्धांत द्वारा अतिचालक की पुष्टि**

*कृष्ण यमुना जी/13, अणुशक्ति नगर, मुंबई - 400 094.


ISSN 2231-2455

रेखाओं के पार हो जाती है। यह वस्तुतः मेइसनर प्रभाव पर निर्भर है। मेइसनर ने वर्ष 1933 में देखा की जब अतिचालक को चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाता है तब चुंबकीय बल रेखाए उसके अंदर से पार नहीं हो पातीं जो वस्तुतः प्रति चुंम्बकीय पदार्थ है। चुंम्बकीय क्षेत्र के अतिचालक के क्रांतिक ताप को कम कर देती हैं तथा चुंम्बकीय क्षेत्र से एक विशेष मान के बाद धारा का क्षय होता है और अतिचालकता समाप्त हो जाती है। इस चुम्बकीय क्षेत्र को क्रांतिक चुम्बकीय क्षेत्र कहते हैं और इसे ''मेइसनर प्रभाव'' का नाम दिया गया है।

1912 से 2009 तक अतिचालकता पर सतत् अनुसंधान के बाद भी क्रांतिक ताप को 4.2°K से 38.2°K अर्थात् 34°K तक ही बढ़ाया जा सका। वस्तुतः कुछ मिश्र धातुओं जैसे वेनेडियम-सिलिकॉन, वेनेडियम-टिन, निओबियम-एल्यूमिनियम एवं निओवियम-सिलिकॉन का क्रांतिक तापक्रम क्रमशः 19°K, 18°K, 18.8°K, एवं 23.5°K है। पारे में क्रांतिक ताप 4.2°K पर वस्तुतः प्रतिरोध समाप्त हो जाता है लेकिन कुछ-कुछ मिश्र धातुएं उसमें निहित अपद्रव्यों के कारण निम्न ताप पर भी प्रतिरोध की उत्पत्ति को दर्शाती हैं जिसे क्रांतिक ताप से जाना जाता है। अभी 38°K से अधिक क्रांतिक तापक्रम वाला अतिचालक प्राप्त नहीं किया जा सका है।

1986 में बहुराष्ट्रीय कंपनी आई.बी.एम. के म्यूनिख स्थित शोध संस्थान में वैज्ञानिक मूल्लर ने एक ऐसे पदार्थ को खोजा जो 36°K पर अतिचालकता दर्शाता था। वह मिश्र धातु लैन्थेनम, बेरियम एवं कॉपर आक्साइड के मेल से बनी थी।

हालाँकि, कुछ ताजा शोध में 300°K के क्रांतिक तापमान वाले अतिचालक को ढूँढ़ने का दावा किया गया है। इट्रियम, बेरियम कॉपर एवं ऑक्सीजन से बने यौगिक में अतिचालकता संक्रमण 260°K से शुरू होता है एवं 101°K पर शून्य प्रतिरोध की स्थिति हो जाती है। यह शोध आई.बी.एम. के अलमाडन शोध केन्द्र के पॉलग्रांट के द्वारा की गई थी। डॉ. पॉलग्रांट के अनुसार पदार्थ की क्रिस्टल संरचना के आधार पर तीन अवस्थाएं होती हैं जिनमें यह क्रमशः अतिचालक धातु और सुपर विद्युत प्रतिरोधक के रूप में कार्य करता है जो पदार्थ में तत्व की मात्रा (इट्रियम, बेरियम, कॉपर एवं आक्सीजन) पर निर्भर करता है। अतिचालक की स्थिति में हरा (गहरा) हो जाता है। कुछ नए शोधों में अतिचालक की स्थिति प्राप्त करने के लिए द्रव हीलियम के स्थान पर द्रव नाइट्रोजन का उपयोग किया गया जिसका तापक्रम 68°K तक ले जाया गया। इसके क्वथनांक 77°K के कारण इसके उपयोग में सुविधा हुई। इसमें से धारा हटाने के बाद महीनों तक धारा प्राप्त होती रही। इसकी धारा संघारिता बहुत अच्छी पायी गयी।

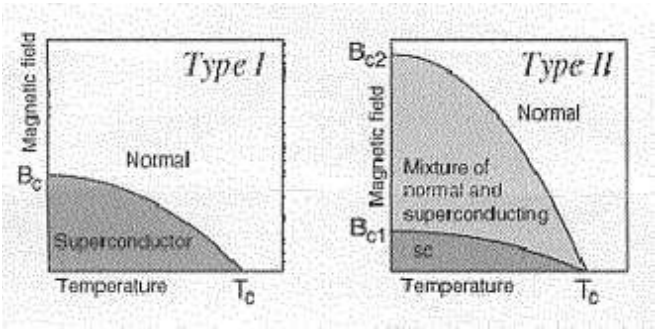


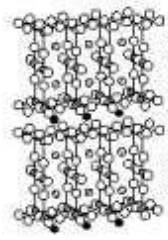


| | $T_c$(K) |
|---|---|
| $La_{2-x} Ba_x Cu O_4$ | 30 |
| $La_{2-x} Sr_x Cu O_4$ | 38 |
| $La_{2-x} Sr_x Ca Cu O_4$ | 60 |
| $Y Ba_2 Cu_3 O_7$ | 92 |
| $Bi_2 Sr_2 Ca_2 Cu_3 O_{10}$ | 110 |
| $Tl_2 Ba_2 Ca_2 Cu_3 O_{10}$ | 125 |

आज वस्तुतः उच्च तापमान अतिचालक पदार्थ की खोज जोर-शोर से चल रही है। इससे उच्च शक्ति का विद्युत चुम्बक बनाया जा सकता है जिससे विद्युत की उत्पादन क्षमता बढ़ सकती है। इसके उपयोग से मैनगैव प्रौद्योगिकी द्वारा हवा से बात करने वाली रेलगाड़ी एवं कार बनाई जा सकती हैं जो 600 किलोमीटर प्रति घंटा से भी ज्यादा रफ्तार से दौड़ सकती हैं। फिलहाल, जापान में उच्च ताप अतिचालक की मदद से 500 किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से ट्रेन चल रही हैं। नाभिकीय संलयन हेतु उच्च तापमान अतिचालक पदार्थ की खोज जारी है जिससे उच्च विद्युत चुम्बक बनाए जा सकें। धारा को तेजी से बढ़ाने वाली कुंडली निबोनियम एवं टाइटेनियम की मिश्र धातु की बनी अतिचालकीय विद्युत चुम्बक है। ऐसा शक्तिशाली चुम्बकीय क्षेत्र नवीन अतिचालक पदार्थ के निर्माण से ही संभव है जो 10^8 (मिलियन) डिग्री ताप को उत्पन्न कर सके। इस पर अनुसंधान कार्य आई.पी.आर., भारत में एस.एस.टी.-1 (SST-1) के द्वारा संलग्न की दिशा में जारी है। अतिचालक की सहायता से कुछ ऐसे उपकरण बने हैं जो ट्यूमर एवं कैंसर की जानकारी देने में कारगर सिद्ध हुए हैं। नए अतिचालक की मदद से सुपर कम्प्यूटर एवं जोसेफशन जंक्शन कम खर्च में बनाए जा सकते हैं। जोसेफशन जंक्शन द्वारा सर्किट बोर्ड, सेंसर, अर्द्धचालक पदार्थों की अविनाशी परीक्षण गुणवत्ता नियंत्रण हेतु काफी मायने रखती है।

## मध्य प्रदेश के धार जिले में मिले हैं डायनासोर के दाँत

करोड़ों वर्ष पूर्व विलुप्त हो चुके डायनासोर के अस्तित्व की वैज्ञानिकों द्वारा मध्य प्रदेश में खोज की जा रही है। डायनासोर के अंडों से लेकर घोसले और समुद्री जीव शार्क के जीवाश्म तक मध्य प्रदेश के धार जिले में पाये जा चुके हैं। अब वैज्ञानिकों के दल को मनावर में चट्टानों के नीचे दबे डायनासोर के चार दाँत मिले हैं, जिनका वैज्ञानिक अध्ययन किया जा रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार ये दाँत लगभग साढ़े छह करोड़ वर्ष पुराने हैं। धार जिले के मनावर क्षेत्र में दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ0 जी.वी.आर. प्रसाद डायनासोर के जीवाश्म की तलाश में आये थे जहाँ उन्हें रवतीतलाई क्षेत्र में पत्थरों की चट्टानों में दबे एवेलीसार नामक डायनासोर प्रजाति के दाँत मिले हैं।

# क्या टाइटन पर जीवन है ?

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी *

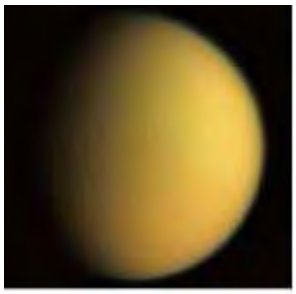

नारंगी आभा में टाइटन

पृथ्वी के बाहर किसी अन्य पिण्ड पर जीवन की उपस्थिति की संभावना हम पृथ्वीवासियों को सदा से रोमांचित करती रही है। इस विषय में कहीं से आई, कोई भी सूचना हमारा ध्यान आकर्षित करती है। पृथ्वी से भिन्न जीवन की उपस्थिति की संभावनों के कारण उपग्रह टाइटन आजकल चर्चा में है। टाइटन के अपारदर्शी वायुमण्डल को भेद कर उसकी सतह तक पहुँचे प्रोब हुयजेन्स द्वारा जुटाई गई सूचनाओं के विश्लेषण के आधार पर व्यक्त इस संभावना ने विज्ञान जगत में एक जोरदार बहस प्रारम्भ कर दी है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि टाइटन की सतह पर पृथ्वी से भिन्न प्रकार की जीवन उपस्थित है तो वैज्ञानिकों का दूसरा समूह तथ्यों की पूर्ण पुष्टि होने तक किसी भी प्रकार का अटकलबाजी नहीं करने की सलाह दे रहा है।

टाइटन हमारे सौरमण्डल के अद्‌भुत ग्रह शनि का चन्द्रमा है। शनि के 60 से अधिक चन्द्रमाओं में से यह सबसे बड़ा है। यह पृथ्वी के चन्द्रमा से तो बहुत बड़ा है ही मजे की बात यह है कि यह उपग्रह बुद्ध ग्रह से भी बड़ा है। टाइटन हमारे सौरमण्डल के सबसे बड़े उपग्रह बृहस्पति के चन्द्रमा गनीमीड के लगभग बराबर है। अपने बड़े आकार के कारण टाइटन ने सन् 1655 में ही खगोलशास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। इसे सर्वप्रथम देखने का श्रेय डच खगोलशास्त्री क्रिस्टीयान हुयजेन्स को दिया जाता है।

**सक्रिय है नदी तन्त्र**

टाइटन की सबसे बड़ी विशेषता उसका सघन एवं विस्तृत वायुमण्डल है। वायुमण्डल मूलतः नाइट्रोजन से बना है इसमें 98.4 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.4 प्रतिशत मीथेन तथा शेष में हाइड्रोजन, कार्बन मोनोआक्साइड आदि गैसें पायी जाती हैं। वायुमण्डल टाइटन की सतह से 975 किलोमीटर ऊँचाई तक फैला है। टाइटन पर वायुदाब पृथ्वी की तुलना में 45 प्रतिशत अधिक है। वायुमण्डल का घनत्व भी पृथ्वी की तुलना में अधिक है। कम गुरूत्वबल तथा सघन वायुमण्डल के कारण पंख जैसी कोई युक्ति लगा कर मनुष्य टाइटन के आकाश में उड़ भी सकता है। टाइटन के वायुमण्डल में बादल की उपस्थित तथा बिजली चमकने की घटनाएँ वहाँ पृथ्वी जैसे मौसम का अहसास कराती हैं। अभी हाल में प्राप्त एक चित्र में टाइटन पर एक नदी तन्त्र देखा गया है। टाइटन के उत्तर गोलार्द्ध में स्थित यह नदी अपने स्रोत से निकल कर लगभग 400 किलोमीटर दूरी तय कर एक समुद्र में गिरती है। टाइटन की इस नील नदी में जल के स्थान पर तरल इथेन व मीथेन बहती है। पृथ्वी के बाहर किसी सक्रिय नदी तन्त्र देखे जाने की यह प्रथम घटना है।

टाइटन के खोजकर्ता किस्टीयान हुयजेन्स

कास्सीनी हुयजेन्स मिशन की सफलता से पूर्व टाइटन की सतह के बिषय में अधिक जानकारी नहीं जुटाई जा सकी थी। टाइटन के वायुमण्डल में उपस्थित विशिष्ट प्रकार का धूम्र उसे लगभग अपारदर्शक बना देता है। इस कारण पृथ्वी की तुलना में मात्र एक प्रतिशत सूर्य का प्रकाश टाइटन की सतह तक पहुँच सकता है। इतने कम प्रकाश के कारण दूर से इसकी सतह को देख पाना सम्भव नहीं होता था। कास्सीनी-हुयजेन्स मिशन का उपयोग कर इसकी सतह तक पहुँच कर ही जानकारी जुटाई जा सकी है।

कास्सीनी-हुयजेन्स मिशन अमेरिका की संस्था नासा, यूरोपीयन स्पेस एजेन्सी तथा इटली स्पेस एजेन्सी की साझा योजना है। मिशन के सात उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं जिनमें से दो टाइटन संबन्धित हैं। पहला टाइटन के आकाश में बादलों तथा धुन्ध की बदलती स्थिति का अध्ययन करना तथा दूसरा टाइटन की सतह के भूगोल का निर्धारण करना। कास्सीनी-हुयजेन्स मिशन को अक्टूबर 1997 में अन्तरिक्ष में भेजा गया। मिशन के दो भाग कास्सीनी व हुयजेन्स को जोड़ कर बना था। इनको अलग-अलग उद्देश्यों के लिए विकसित किया गया था। कक्षा में चक्कर लगाने वाले कास्सीनी यान का निर्माण नासा द्वारा किया गया। इसका नामकरण इटली व फ्रान्स की दोहरी नागरिकता वाले खगोलशास्त्री गीयोवान्नी डोमेनिको कास्सीनी की याद में किया गया। मिशन के प्रोब भाग, जिसे मुख्य यान से अलग होकर नीचे टाइटन की सतह तक जाना था, निर्माण यूरोपियन स्पेस एजेन्सी द्वारा किया गया। डच खगोलशास्त्री क्रिस्टान हुयजेन्स के नाम पर इसे हुयजेन्स नाम दिया गया। मिशन ने ग्रहों

*पूर्व प्रधानाचार्य, 2 तिलक नगर, पाली - 306 406 (राजस्थान).


ISSN 2231-2455

के मध्य से लम्बी यात्रा तय कर 7 वर्ष बाद एक जुलाई 2004 को शनि की कक्षा में प्रवेश किया। दिसम्बर 2004 में टाइटन पर गुजरते हुए मिशन ने हुयजेन्य प्रोब को अपने से अलग कर टाइटन को अन्तरिक्ष में छोड़ दिया। धीरे-धीरे नीचे ऊतरता हुआ हायजेन्स 14 जनवरी 2005 को टाइटन के वायुमण्डल में पहुँचा तथा ढाई घन्टे बाद उसकी सतह पर उतरा। इतने समय आकाश में रहते हुए हुयजेन्स के यन्त्रों ने टाइटन के वायुमण्डल के विभिन्न भागों की गहराई से जाँच की। एकत्रित सूचनाओं को 350 चित्रों के साथ कास्सीनी को भेजा जहाँ से उन्हें पृथ्वी पर भेज दिया गया। उन सूचनाओं के विश्लेषण से ही टाइटन के विषय में नए तथ्य सामने आ रहे हैं।

हुयजेन्स प्रोब द्वारा टाइटन की सतह पर उतर कर सतह का लिया गया चित्र (मंगल से दूर किसी आकाशीय पिण्ड की सतह का यह पहला चित्र था)

**जीवन की सम्भावना ?**

जर्नल इकारस में प्रकाशित शोध पत्र में बताया गया है कि टाइटन के वायुमण्डल में हाइड्रोजन अणुओं का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। सतह पर आते-आते हाइड्रोजन के अणु लुप्त हो जाते हैं। जोहन्स होपकिन्स विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डारेल स्ट्रोबेल ने मिशन में लगे इंफ्रारेड स्पेक्ट्रोमीटर तथा आयन व न्यूट्रल मास स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से शनि तथा टाइटन के वायुमण्डल का अध्ययन कर यह सूचना जुटाई है। स्ट्रोबेल ने अपने शोध पत्र में टाइटन के वायुमण्डल में विभिन्न ऊँचाई पर हाइड्रोजन की सान्द्रता की जानकारी ज्ञात की। उनका अनुमान था कि वायुमण्डल में हाइड्रोजन की सान्द्रता सभी जगह एक सी होगी तथ्य विस्मयकारी थे, क्योंकि इाइड्रोजन की सान्द्रता नीचे की ओर कम होती जाती है तथा सतह पर शून्य। ऑकड़ों को गलत नहीं माना जा सकता। क्योंकि बार-बार जाँचने पर हाइड्रोजन की सान्द्रता नीचे की ओर घटती हुई पाई गई है। परिणाम पर आश्चर्य प्रकट करते हुए डारेल स्ट्रोबेल कहती हैं कि यह ऐसा है मानो आप पाइप से पानी जमीन पर डाल रहे हैं और पानी नीचे नहीं जाकर गायब होता जाता है। हाइड्रोजन सतह के नीचे किसी गुफा में जाकर एकत्रित होती नहीं फिर कहाँ जाती है? इसका एक संभावित कारण टाइटन की सतह पर उपस्थित मीथेन पर आधारित जीवों द्वारा उसका उपयोग करना हो सकता है मगर ऐसे जीवों की उपस्थिति की पुष्टि अभी तक नहीं हो पाई है। जर्नल ऑफ जियोग्राफिकल रिसर्च में प्रकाशित एक अन्य पत्र में बताया गया है कि टाइटन की सतह पर एसीटायलीन गैस नहीं पाई गई है टाइटन के ऊपरी वायुमण्डल में सूर्य के प्रकाश के प्रभाव के कारण मीथेन के अणु अपघटित होकर एसीटायलीन व हाइड्रोजन गैसें बनती हैं। अनुमान था कि एसीटायलीन नीचे जाकर टाइटन की सतह पर एकत्रित हो जाती होगी। कास्सीनी के अनुसंधान दल से जुड़े ज्योग्राफीकल सर्वे के रोजर क्लार्क ने दृश्य तथा इंफ्रारेड मेपिंग स्पेक्ट्रोमीटर से जाँच की तो उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि टाइटन की सतह पर एसीटायलीन गैस नहीं थी।

2005 में क्रिस मेकके तथा मोफेट फील्ड केलिफ द्वारा मेथेनोजन जीवन की कल्पना की थी। जिस तरह पृथ्वी पर जल में जलीय जीवन पाया जाता है इसी तरह टाइटन पर मीथेन की झीलों में मेथेनोजन जीवन की कल्पना की गई थी। नासा के अनुसंधान केन्द्र से जुड़े इन वैज्ञानिकों का अनुमान था कि टाइटन पर यदि जीवन है तो वह एसीटायलीन को भोजन तथा हाइड्रोजन को श्वसन में गैस के रूप में उपयोग करता होगा जैसे पृथ्वी के जीव ग्लूकोज व आक्सीजन का करते हैं। पृथ्वी के जीव कार्बन इाइआक्साइड छोड़ते हैं। टाइटन के जीव मीथेन का उत्पादन करते होंगे। टाइटन के वायुमण्डल के अध्ययन से प्राप्त जानकारी मेथेनोजन जीवन की कल्पना की पुष्टि करती प्रतीत होती है।

हुयजेन्स पर जीवन या जीवन से जुड़े जैविक अणुओं की उपस्थिति जानने की कोई व्यवस्था नहीं थी। अतः किसी भी विषय में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कह कर मात्र अनुमान ही लगाए जा सकते हैं। क्रिस मेकके अब तक प्राप्त जानकारी को टाइटन पर जीवन की उपस्थिति के रूप में देखने के पक्ष में नहीं हैं। उनका मानना है आँकड़े सीधे एकत्रित किए हुए नहीं होकर कम्प्यूटर सिमूलेशन आधारित हैं। टाइटन की सतह पर हाइड्रोजन व एसीटायलीन की अनुपस्थिति का श्रेय किसी अजैविक घटक को देने का प्रयास भी किया गया है। कहा गया है कोई उत्प्रेरक हाइड्रोजन व एसीटायलीन को पुनः मीथेन में बदलने का कार्य कर रहा हो। टाइटन के– 183 डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम पर यह कार्य किसी महान रसायन इंजिनियरिंग से कम नहीं लगता।

टाइटन पर जीवन की उपस्थिति की कहानी यहीं पर समाप्त नहीं होती। कहानी को एक नया मोड़ दिया है अरियोना विश्वविद्यालय की साराह होर्स्ट ने। प्रसिद्ध विज्ञान कथा लेखक कार्ल सांगा का मानना है हम जितनी मात्रा में धरती की सन्तान हैं आकाश भी लगभग उतना ही हक हम पर रखता है। साराह हर्स्ट सांगा के कथन को प्रमाणित करती लगती है। बच्चों की विज्ञान पुस्तकों में अब तक हम यह ही लिखते रहे हैं कि प्रथम जीव की उत्पति समुद्र में जमा प्रारम्भिक घोल में हुई होगी। साराह हर्स्ट कह रही हैं कि जीवन की बुनियाद आकाश में रखी गई होगी तथा वर्षा के साथ सतह पर आई होगी।

टाइटन के आकाश में क्या और कैसे कुछ घटित हो रहा है, यह जानने के प्रयास साराह ने किए तो विस्मयकारी तथ्य सामने आए हैं। साराह और उनके दल ने मिलर व यूरे के ऐतिहासिक प्रयोग को टाइटन के सन्दर्भ में दोहराया है। मिलर के उपकरण में टाइटन के वायुमण्डल में उपस्थित गैसें नाइट्रोजन, मीथेन तथा कार्बन मोनोआक्साइड भर कर उन पर रेडियो तरंगों को ठीक उसी तरह बरसने दिया जिस तरह टाइटन के वायुमण्डल में सूर्य का प्रकाश बरसा करता है। प्रयोग के अन्त में उन्होंने पाया कि नली में

**कास्सीन-हुयजेन्स मिशन प्रक्षेपण की तैयार स्थिति में**

जीवन के घटक अमीनों अम्ल तथा जीवन को नियन्त्रित करने वाले न्यूक्लियोटाइडों का संश्लेषण हो गया है। इस प्रयोग से पहली बार यह तथ्य सामने आया कि जीवन के लिए अब तक अनिवार्य माने जाने वाले जल की अनुपस्थिति में जीवन के घटकों का निर्माण सम्भव है।

हमारे सौरमण्डल में टाइटन अपने जैसा अकेला पिण्ड है। इस पर रेत के टीले हैं तो द्रव मीथेन से भरी झीले भी हैं। उपग्रह चारों ओर से नाइट्रोजन तथा मीथेन का सघन आवरण है। कुल मिला कर वर्तमान टाइटन पृथ्वी के आदि रूप को दिखा रहा है। पृथ्वी का वह रूप जब यहाँ जीवन की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी। अन्तर है तो इतना कि टाइटन पर पानी के स्थान पर द्रव मीथेन पाई जाती है। सौरमण्डल में पृथ्वी के अतिरिक्त टाइटन ही वह पिण्ड है जिसकी सतह पर कोई तरल उपस्थित है।

साराह हार्स्ट ने प्रयोग की प्रेरणा के विषय में कहा कि कास्सीनी हुयजेन्स मिशन से प्राप्त सूचनाओं से ज्ञात हुआ कि टाइटन के वायुमण्डल में कई प्रकार के बड़े अणु उपस्थित हैं तो हमारे मन में यह जानने कि जिज्ञासा हुई कि वे अणु कौन से हैं? इसकी जानकारी किसी के पास नहीं थी। हमने अपने स्तर पर अणुओं का पता करने के लिए ही यह प्रयोग किया। साराह के दल ने परिचित अणुओं के कम्प्यूटर कोड का उपयोग अपरिचित अणुओं को पहचानने के लिए किया। उन्हें तलाश तो अमीनों अम्लों तथा न्यूक्लियोटाइडों की थी मगर सार्थक परिणाम की उम्मीद कम ही थी। अनमने मन से इन्टर बटन दबाने पर कम्प्यूटर ने अणुओं को पहचान कर उनके नाम छापने शुरू किए तो रुकने का नाम ही नहीं लिया।

अविश्वसनीय परिणाम देख कर विचार आया कि कहीं भूल तो नहीं हो गई? पुनः जाँच की वही परिणाम थे। कहीं कोई भूल नहीं हुई थी। मिलर की नली में 5000 प्रकार के अणु उपस्थित थे। लगता था कार्बन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन के परमाणु जितने प्रकार से विन्यासित हो सकते थे उतने ही प्रकार के अणु बन गए थे। इनमें दो अमीनों अम्ल तथा पाँच न्यूक्लियोटाइड उपस्थित थे। अब प्रश्न यह था कि टाइटन की सतह पर यह सब कैसे होता होगा? इस प्रश्न का उत्तर कास्सीनी यान द्वारा जुटाई एक अन्य जानकारी से होता है। टाइटन के साथी, शनि के एक अन्य उपग्रह एन्सेलेड्स की सतह से छलककर पानी की बौछारें टाइटन के वायुमण्डल में पहुँचती रहती है। अनुसंधानकर्ताओं ने प्रमाण जुटाए हैं कि जल वाष्प के विघटन से उत्पन्न ऑक्सीजन एक शृंखला अभिक्रिया को प्रारम्भ करती है जो जीवन के घटक अणुओं के निर्माण के साथ समाप्त होती है। इस आधार पर कहा जा सकता है। कि टाइटन के वायुमण्डल मे जो बड़े हैं वे अमीनों अम्ल व न्यूक्लियोटाइड हो सकते हैं।

टाइटन पर जीवन की उपस्थिति को लेकर एक अन्य विचार भी है। इस विचार के अनुसार टाइटन पर जीवन स्वतन्त्र रूप से विकसित नहीं हुआ है। टाइटन पर जीवन (यदि है तो) सूक्ष्म बीजाणुओं के रूप में पृथ्वी से ही गया है। अन्तरिक्ष की विपरीत परिस्थितियों को सहन कर जीवन के सूक्ष्म बीजाणु के रूप में एक आकाशीय पिण्ड से दूसरे तक सुरक्षित पहुँच सकने की संभावना को ध्यान में रख कर ही यह बात कही गई है। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति को समझाने हेतु भी पेन्स्पर्मिया परिकल्पना दी जाती है। इस परिकल्पना पर विचार करने में एक परेशानी यह है कि पृथ्वी व टाइटन की जलवायु एक दूसरे से एकदम भिन्न हैं। एक पिण्ड के जीव दूसरे पिण्ड पर जीवित रहना सम्भव नहीं लगता।

कास्सीनी मिशन के 2008 में समाप्त होने से पूर्व ही इसे कास्सीनी इक्वीनोक्स मिशन के रूप में 2010 तक बढ़ा दिया गया था। अब उसे कास्सीनी सोलस्टिस मिशन के रूप में 2017 तक बढ़ा दिया गया है। इस अवधि में कास्सीनी यान कई बार टाइटन पर से उड़ान भरेगा तथा सूचनाएँ पृथ्वी पर भेजेगा। बहुत सम्भव है कि कोई निर्णायक जानकारी मिल जाये। पृथ्वी पर प्रथम जीव की उत्पत्ति के कई अनसुलझे प्रश्नों के उत्तर भी टाइटन से मिलने की सम्भावना है। कई देशों के वैज्ञानिक उत्साह से टाइटन के रहस्यों को जानने में जुटे हैं। टाइटन पर रोबोटिक उपकरण भेजकर उसकी झील के पेंदे तक जाकर जीवन तलाशने की तैयारियाँ चल रही हैं। पृथ्वी के बाहर जीवन की उपस्थिति की पुख्ता जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा हमें भी टाइटन की ओर टकटकी लगाए रहने को प्रेरित करती रहेगी।

# धातुओं का सम्राट – प्लैटिनम

डॉ0 डी.डी. ओझा[1] एवं डॉ0 के.एल. मेनारिया[2] *

वस्तुतः मनु के पुत्र मानव को धातुओं का ज्ञान पाषाण युग के बाद शुरू हुआ। उसने ताँबा, सोना तथा चाँदी इन तीनों को निश्चित रूप से पहले प्राप्त किया। आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व उसे लौह धातु का ज्ञान हुआ। सन् 1775 तक धातुओं की सूची में केवल निकेल, कोबाल्ट जस्ता तथा प्लैटिनम जुड़ पाए।

आज 100 से अधिक तत्वों में से 85 धातुएँ हैं। इनमें से 15 विरल मृदाएँ (Rare earths) मुट्ठी में समा जाने वाली, 20 रेडियोधर्मी (रेडियो एक्टिव), कुछ को छोड़कर शेष कृत्रिम, छह क्षारीय, चार क्षारीय मृदाएँ (Alkaline earths), एक तरल धातु (पारा) तथा 27 लेश धातुएँ (Minor metals) हैं। इनके अतिरिक्त 10 नाम ऐसे हैं, जो वास्तव में उपयोग में आने वाली धातुओं के हैं, जैसे– लोहा, ऐलुमिनियम, ताँबा, टिन, जस्ता, सीसा, सोना, चाँदी, निकेल तथा क्रोमियम। दो अर्द्धधातुएँ (Metalloids) हैं- आर्सेनिक तथा एंटीमनी। इनमें से पृथ्वी की पपड़ी में सर्वाधिक मात्रा ऐलुमिनियम तथा लोहे की है।

इन धातुओं में से सोना, प्लैटिनम तथा पारे को छोड़कर शेष यौगिक रूप में (सल्फाइड या ऑक्साइड) प्राप्य हैं। कीमियागर सोने की चमक से सबसे अधिक चमत्कृत थे। उन्होंने इसे सूर्य का प्रतीक माना और गोला या वृत्त संकेत (0) प्रदान किया तथा चाँदी को चन्द्रमा से सम्बद्ध करते हुए उसे अर्द्ध-चन्द्र ( ☽ ) का संकेत प्रदान किया। वस्तुतः प्लैटिनम एक

प्लैटिनम धातु

विभिन्न आकार के प्लैटिनम धातु

बहुमूल्य एवं बहुपयोगी धातु है। इस धातु ने अपने विशिष्ट गुणों, यथा चिरस्थायी चमक-दमक, उच्च गलनांक एवं क्वथनांक, उच्च घनत्व, उच्च स्तरीय तन्यता, आघातवर्धनीयता, रसायनिक अक्रियता, संक्षारण प्रतिरोधकता, आपार उत्प्रेरण गुणवत्ता, अत्यल्प विषालुता एवं जीव जगत से संगतता आदि के कारण धातु जगत में अपना शीर्षस्थ स्थान बनाता है। मध्य युगों के राजा-महाराजाओं से लेकर वर्तमान के औद्योगिक युग तथा कालांतर के इलेक्ट्रॉनी-प्रौद्योगिक युग तक इसकी श्रेष्ठता अक्षुण्ण रहेगी।

**प्लैटिनम का ऐतिहासिक परिदृश्य**

प्लैटिनम की स्वतंत्र धातु के रूप में पहचान सर्वप्रथम उस समय हुई जब स्पेनवासियों ने दक्षिण अमेरिका के कोलम्बिया क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था। उन्होंने अपनी स्पेनिस भाषा में इसे अल्प चाँदी (Little Silver) के अनुरूप ''प्लेटिना'' (Platina) नाम दिया। इसका यूरोपीय संदर्भ में प्रथम उल्लेख सन् 1557 में इतालवी विद्वान ''ज्यूलियस सीजर स्केलिजर'' (Julius Ceasor Scaliger) का मिलता है। उन्होंने इसकी एक उत्कृष्ट सफेद धातु के रूप में चर्चा की जो डारेन और मेक्सिकों के मध्य पाया जाता है तथा इसे गरम करके पिघलाना संभव नहीं है। तत्कालीन रसायन विज्ञानियों ने इसका निम्न रासायनिक संकेत निरूपित किया जो चाँदी और सोने के संकेतों से मिलकर बना है।

चाँदी ☽ ○ सोना

प्लैटिनम

*[1]अवकाश प्राप्त वरिष्ठ वैज्ञानिक, गुरूकृपा, ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा, जोधपुर - 342 001; [2]ए-1, संतोष नगर, गायरिया वास, उदयपुर- 313 002.

### प्लैटिनम की खोज

प्लैटिनम की खोज का श्रेय ''एन्टोनिओ डि उलोआ'' (Antonio de Ulloa) को है जिन्होंने सन् 1746 से 1772 तक अपने शोध कार्य कर अपरिष्कृत प्लैटिनम को सोना धातु के साथ गरम करके एक मिश्र धातु प्राप्त किया। तदनंतर इस मिश्रधातु को अम्लराज से अभिक्रिया करवाकर सभी अशुद्धियों से पृथक करने में सफलता प्राप्त की। यद्यपि यह उत्पाद पूर्णरूपेण शुद्ध नहीं था तथा इसमें प्लैटिनम के साथ उसी समूह के अन्य धातु-ऑस्मियम और इरिडियम भी विद्यमान थे जिनकी खोज उस समय तक नहीं हुई थी।

कालांतर में सन् 1786 में स्पेन के वैज्ञानिक चार्ल्स (III) ने प्रमुख धातु वैज्ञानिक ''पेरी फ्रान्कोइस चाबनेऊ'' (Pierre-Francois Chabaneau) के साथ इस विषयक अन्वेषण कार्य किया जिसके फलस्वरूप विश्व में पहली बार चाबनेऊ ने 23 कि.ग्रा. शुद्ध प्लैटिनम धातु प्राप्त किया।

### प्लैटिनम के गुण

प्लैटिनम एक विरल धातु है। पृथ्वी तल पर इसकी उपलब्धता मात्र 0.005 पीपीएम है। इस उत्कृष्ट धातु के गुण निम्नवत् हैं –

**1. भौतिक गुण-** वस्तुतः शुद्ध प्लैटिनम चाँदी के सादृश सफेद चमकीली धातु है। जिसका रासायनिक सूत्र (Pt), परमाणु संख्या 78, संयोजकता 3 और 5 है। यह आवृत्त सारणी के VIII वर्ग का सदस्य है। जिसका घनत्व 22.60 है। इसके बहुत पतले तथा लंबे तार खींचे जा सकते हैं तथा इसे पीटकर बहुत पतले वर्क भी बनाये जा सकते हैं, जिन्हें आसानी से मोड़ा भी जा सकता है।

**2. रासायनिक गुण-** जैसा कि विदित है प्लैटिनम रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय धातु है। यह संक्षारणरहित धातु है। इसके अतिरिक्त यह हैलोजन, सायनाइड, सल्फर और कास्टिक सोडा जैसे क्रियाशील अभिकर्मकों से भी अभिक्रिया नहीं करता है। यह धातु हाइड्रोक्लोरिक एवं नाइट्रिक अम्ल में भी घुलनशील नहीं है। परन्तु अम्लराज (Aquaregia) में धीरे-धीरे घुलकर ''क्लोरो प्लैटिनिक अम्ल'' बनाता है। इस धातु की आविषालुता भी अत्यल्प है।

### प्लैटिनम के समस्थानिक

इस बहुमूल्य धातु के 6 प्राकृतिक समस्थानिक निम्नलिखित है :-

$^{190}Pt$, $^{192}Pt$, $^{194}Pt$, $^{195}Pt$, $^{196}Pt$ तथा $^{198}Pt$ इनमें सर्वाधिक उपलब्धता $^{195}Pt$ की है जो प्रकृति में 33.83 प्रतिशत है, जबवि $^{190}Pt$ की प्राकृतिक उपलब्धता मात्र 0.01 प्रतिशत है। प्लैटिनम के अन्य स्रोत, यथा- $^{188}Pt$, $^{191}Pt$, और $^{193}Pt$ रेडियो सक्रिय हैं। प्लैटिनम के 31 संश्लेषित समस्थानिक है जिनका परमाणु भार 166-202 के मध्य होता है।

### वैश्विक स्तर पर प्लैटिनम के स्त्रोत

विश्व स्तर पर प्लैटिनम के स्त्रोत दक्षिण अमेरिका (कोलम्बिया), रूस यू.एस.ए. (अलास्का), कनाडा (ओन्टारियो) और दक्षिण अफ्रीका में पाए जाते हैं। इसमें विश्व के कुल प्लैटिनम उत्पादन का 75% भाग दक्षिण अफ्रीका के बुशवेल्ड इगनियस काम्प्लेक्स का है। दूसरा स्थान प्लैटिनम उत्पादन में रूस का है। उपर्युक्त प्रमुख स्त्रोतों के अतिरिक्त प्लैटिनम समूह के खनिज आस्ट्रेलिया, जिम्बावे, ग्रीनलैण्ड, फिनलैण्ड, युगोस्लाविया, पपुआ, न्यूगिनी तथा फिलीपिन्स आदि देशों में अल्प मात्रा में पाये जाते हैं। वर्ष 2009 में चन्द्रमा की सतह एवं उल्कापिंडों में प्लैटिनम समूह की धातुओं की उपस्थिति के प्रमाण मिले हैं।

प्लैटिनम समूह की धातुओं के अन्तर्गत प्लैटिनम, पैलेडियम, रोडियम, इरिडियम, ऑस्मियम तथा रूथानियम सम्मिलित किए गए हैं। इसके खनिज स्त्रोतों में प्लैटिनम के साथ सल्फर, ऐंटीमनी, आर्सेनिक, निकेल, कॉपर और बिस्मथ के यौगिक भी पाये जाते हैं।

प्लैटिनम जड़ित आभूषण

### शुद्धता एवं व्यापारिक द्रवता

वर्ष 2008 में 1000 सीसी, 99.9% शुद्धता वाले प्लैटिनम का उत्पादन हुआ था जिसका मूल्य 2009 में 9,10,000 अमेरिकी डॉलर आंकलित हुआ था। आज सम्पूर्ण विश्व के लोग अपनी आर्थिक निश्चिन्तता हेतु सोने का संचय करते हैं क्योंकि थोड़े से स्थान में संग्रहित यह पूंजी तुरंत आवश्यक मुद्रा आपूर्ति उपलब्ध करवा सकती है। प्लैटिनम अधिक घनत्व वाली बहुमूल्य धातु है। तथा यह सहज संग्रहणीय संपदा भी है जिसकी लगातार मूल्य वृद्धि होती है और बेचने में भी सहजता है।

### प्लैटिनम के उपयोग

इस बहुमूल्य धातु के अनेक क्षेत्रों में उपयोग निम्नांकित हैं-

1. वस्तुतः प्लैटिनम धातु, इसके गहने और सूक्ष्म कारीगरी से बनी सजावटी वस्तुएँ आज सम्पन्नता की द्योतक बन चुकी हैं। वर्तमान काल में सोने की अपेक्षा प्लैटिनम धारक अधिक सम्पन्न माने जाते हैं, विशेषतः महिलाएँ भी प्लैटिनम से बने गहने अधिक पंसद करती हैं। इस धातु की चमक सोने की अपेक्षा अधिक एवं चिरकाल तक

यथावत रहती है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि फ्रांस के राजा लूई (XV) ने अठारहवीं शताब्दी में घोषणा की थी कि राज परिवारों के लिए प्लैटिनम ही उपयुक्त धातु है। महारानी एलिजाबेथ, तथा ब्रिटेन के शासक जार्ज VI का ताज भी प्लैटिनम से बनाया गया था।

2. उन्नीसवीं शताब्दी से प्लैटिनम तथा प्लैटिनम ब्लैक का उपयोग हाइड्रोजन दहन में उत्प्रेरक के रूप में किया जा रहा है।
3. पेट्रोलियम उद्योग में इसका उपयोग उत्प्रेरकीय परिवर्तक के रूप में हाइड्रोकार्बनों के पूर्ण दहन में किया जाता है।
4. प्लेटिनम का ऑक्साइड ($PtO_2$), ''आदम उत्प्रेरक'' (Adam's Catalyst) कहलाता है जो ऐरोमैटिक हाइड्रोजनिकरण के लिए उपयोग में लाया जाता है।
5. वर्ष 1889 से 1960 तक अंतरराष्ट्रीय मानक के लिए प्लैटिनम की एक छड़ फ्रांस में रखी गयी थी जिस पर बनी दो लाइनों के बीच की दूरी को प्रमाणित मीटर माना जाता रहा है।
6. हाइड्रोजन इलेक्ट्रोड बनाने में भी प्लैटिनम काम में लाया जाता है।
7. घड़ियों के पुर्जे बनाने के लिए इस धातु को अति उपयुक्त माना गया है क्योंकि इसका क्षरण नहीं होता है। इस कारण इलेक्ट्रानिक्स में भी इसका व्यापक उपयोग होता है।
8. संक्षारण मुक्त होने के कारण इस धातु का उपयोग विद्युत् भट्टियों, इलेक्ट्रोड, बारीक जॉइन्ट बनाने तथा सिरेमिक आदि बनाने में होता है।
9. प्लैटिनम की बनी क्रूसिबल रसायन प्रयोगशालाओं में उच्च तापमान पर अम्ल, क्षार और ऑक्सीकारक पदार्थों की अभिक्रियाओं में उपयोग में लाया जाता है। इसका द्रवणांक $1769^0$ सें. तथा क्वथनांक $3827^0$ सें. है।
10. तीन भाग प्लैटिनम तथा एक भाग कोबाल्ट से बने मिश्र धातु का उपयोग प्रबल स्थाई चुम्बक बनाने में होता है।
11. नाइट्रिक ऑक्साइड से अमोनिया निर्माण में प्लैटिनम-रोहडियम की जालियाँ उत्प्रेरक का कार्य करती हैं।

**रासायनिक विश्लेषण में प्लैटिनम –** इस विषयक प्लैटिनम की उपादेयता निम्नवत् है –

**( अ ) लवणों का ज्वाला परीक्षण–** अतिउच्च द्रवणांक एवं रासायनिक क्रियाओं में निष्क्रियता के कारण प्लैटिनम के तार का उपयोग ज्वाला परीक्षण में किया जाता है। प्लैटिनम के तार को सान्द्र नमक के अम्ल में भिगोकर उसे लवण के चूर्ण में डालने के पश्चात् ज्वाला के ऊपरी भाग में ले जाने पर सोडियम पीला रंग दर्शाता है। इसी प्रकार बेरियम, हल्का हरा और स्ट्रॉशियम, गहरे लाल रंग की ज्वाला दर्शाता है। इन्हीं गुणों के आधार पर ज्वाला उत्सर्जन स्पेक्ट्रमिकी, ज्वाला प्रकाशमिकी (फ्लेम फोटोमिट्री) तथा परमाणवीय अवशोषण स्पेक्ट्रमिकी की तकनीकें विकसित हुई हैं, जिनसे प्रायः सभी धातुओं का सूक्ष्म विश्लेषण संभव हुआ है। बहुलक विश्लेषण में भी ज्वाला तकनीक दहन प्रक्रिया समझने में कारगर सिद्ध हुई है।

**( ब ) चालकतामूलक अनुमापन** (Conductometric titration), चालकता मितीय विश्लेषण (Conductumetric analysis) तथा विभवमूलक अनुमापन (Potentiometric titration) में प्लैटिनम के सैल और प्लैटिनम के तार, इलेक्ट्रोड आदि काम में लाये जाते हैं। प्लैटिनम से बनी क्रूसिबल का भारात्मक विश्लेषण में बहुतायत से उपयोग होता है।

**प्लैटिनम की औषधीय उपयोगिता :** प्लैटिनम के कतिपय संकुल डी.एन.ए. की क्रॉस बंधन क्रिया द्वारा अनेक प्रकार की जीव कोशिकाओं को नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। अतएव, इनका व्यापक उपयोग रसायन चिकित्सा (Chemotherapy) में किया जाता है। आजकल शारीरिक अंगों की सुरक्षा एवं पुर्ननिर्माण में भी प्लैटिनम का उपयोग होने लगा है। कृत्रिम लुम्बर डिस्क (Lumbar disc) में भी प्रोस्थेटिक जोड़ निर्माण में इसका व्यापक उपयोग होने लगा है।

होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति में प्लैटिनम मुरियाटिकम (Platinum muriaticum) का अनेक स्त्री रोगों, मस्तिष्क विकार, सिरदर्द, आँख, कान, मुख तथा आमाशयजन्य रोगों के निदान में उपयोग किया जा रहा है तथा इसके आशाजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

**प्लैटिनम के यौगिक –** प्लैटिनम के महत्वपूर्ण यौगिक निम्नांकित हैं-

1- प्लैटिनम (II) क्लोराइड ($PtCl_2$)
2- प्लैटिनम (IV) क्लोराइड ($PtCl_4$)
3- अमोनियम हैक्साक्लोरो प्लैटिनेट $(NHu)_2\,PtC_6$
4- हैक्सा क्लोरो प्लैटिनिक अम्ल $(H3O)_2\,PtCl_6$
5- प्लैटिनम (IV) ऑक्साइड ($PtO_2$)

इन यौगिकों की कई क्षेत्रों में उपयोगिता सिद्ध हो चुकी हैं।

अतः वर्तमान काल में प्लैटिनम धातु की अनेकानेक क्षेत्रों में उपादेयता की सम्पुष्टि हो चुकी है तथा विश्वस्तर पर इसकी महिमा का गुणगान किया जा रहा है। अतएव, इस बहुमूल्य धातु को ''धातुओं का सम्राट'' कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

यह सही है कि विज्ञान में देश और राष्ट्र की दीवारें नहीं होतीं। विज्ञान का हर आविष्कार सारी मानव जाति की सम्पत्ति होती है। कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि विज्ञान की एक अपनी भाषा होती है : सांकेतिक भाषा अथवा प्रतीक भाषा। ये सारी बातें अपनी जगह सही हैं किन्तु चिन्तन का एक बुनियादी भाषाई आधार होता है, मौलिक चिन्तन अपनी भाषा में ही सम्भव है। यदि वैज्ञानिक एवं तकनीकी चिन्तन अपनी भाषा में विकसित हों तो पारिभाषिक शब्दावली की समस्या अपने आप हल हो जायेगी।

**- प्रो0 नामवर सिंह**

# 21वीं सदी में हिन्दी विज्ञान लेखन की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

अंशुल गुप्ता *

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन को सदैव अग्रगामी व्यवस्थित एवं विकसित दिशा दी है। विज्ञान का उद्देश्य उसके अन्वेषण, उसके व्यावहारिक सम्प्रेषण और जनमानस की भाषा में अंतिम व्यक्ति तक पहुँचने वाले जनसंचार में निहित रहता है। विज्ञान का जनमानस की भाषा में सम्प्रेषण समसामयिक आवश्यकता भी है। हिंदी में विज्ञान लेखन बहुमुखी चुनौतियों से जूझ रहा है। अनुमान के अनुसार विश्व में नब्बे करोड़ हिंदी भाषिओं की संख्या के अनुपात में विज्ञान साहित्य संख्यात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही प्रकार से अपनी पकड़ मजबूत नहीं कर पा रहा है और जहाँ तक पहले से उपलब्ध विज्ञान-साहित्य की बात है उसमें 'हिंदी जीवित तो है जीवंत नहीं है' हिंदी पाठकवर्ग के स्तरीय विज्ञान-सामग्री की बढ़ती आवश्यकता और उसकी निर्बाध आपूर्ति के मध्य अंतर बढ़ने से एक पूरी पीढ़ी विज्ञान और उसकी तर्कसंगत विधाओं से दूर हो सकती है। उनमें विषय के प्रति अरुचि जन्म ले सकती है। एक अन्य दशा में यह विशाल पाठकवर्ग अंग्रेजी पर निर्भर होने को पूर्णतः बाध्य हो सकता है, जबकि यह सर्वविदित है कि ज्ञानार्जन की स्वाभाविक क्षुधा अपनी भाषा में पढ़ने पर ही बेहतर ढंग से शांत होती है। विगत कुछ दशकों में हिंदी में विज्ञान लेखन के बदले परिदृश्य ने इसकी तात्कालिक समस्याओं के कारण और उनके निराकरण की चर्चा को अपरिहार्य बना दिया है।

हिंदी जनमानस की भाषा है। विशाल हिंदी भाषी प्रक्षेत्र के अतिरिक्त विश्व के अन्यत्र स्थानों पर हिन्दी-पाकेट्स में विज्ञान लेखों की प्रतीक्षा की जाती है। हिंदी में लिखे गये विज्ञान से सर्वाधिक लाभान्वित होने वाला वर्ग हिन्दी माध्यम से बारहवीं तक की शिक्षा प्राप्त कर रहा विद्यार्थी ही होता है। यद्यपि हिंदी के विज्ञान लेख अन्य भारतीय भाषाओं से शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों को भी सुगम लगते हैं। दूसरे विज्ञान एवं तकनीकी उद्यमों में डूबे हिंदी पृष्ठभूमि के लोग भी इन लेखों को उसी रुचि से पढ़ते हैं। चूँकि हिंदी हम सबकी मौलिक चिंतन की भाषा है और अंग्रेजी तात्कालिक आवश्यकता, इसलिए प्रत्येक पाठक वर्ग को हिंदी में लिखे विज्ञान-आलेखों को पढ़ने में स्वाभाविक आनंद की अनुभूति होती है।

इसके अतिरिक्त गैर-हिन्दी, गैर-अंग्रेजी पृष्ठभूमि के अन्य भारतीय पाठक और गृहणियाँ भी विज्ञान को जिस सुगमता के साथ हिंदी में लिखे विज्ञान को आत्मसात कर सकती हैं किसी अन्य भाषा में नहीं कर पातीं। फिर भी क्या कारण है कि विज्ञान-लेखन निरंतर नई चुनौतियों से जूझ रहा है? विज्ञान लेखन की चुनौतियों की समीक्षा हम इसके तीन महत्वपूर्ण एवं मौलिक तत्वों - भाषा, विषय-वस्तु एवं प्रसार के आधार पर कर सकते हैं।

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र होती है। देखा जाता है कि विज्ञान लेखन में मानक हिन्दी का प्रयोग उसे उसके मूल उद्देश्य, विषय संचरण से भटका देती है। शुद्ध हिंदी के प्रति स्नेह किसी भी लेखक का एक अतिरिक्त सदगुण कहा जा सकता है। परन्तु विज्ञान-लेखन के संदर्भ में यही बात नकारात्मक प्रभाव छोड़ती है। साहित्यिक हिंदी के विकास के लिए दूसरे माध्यम प्रभावी रूप से उपलब्ध हैं।

विज्ञान लेखन का मूल उद्देश्य सरल एवं बोधगम्य रूप में विषय का सम्पूर्ण सम्प्रेषण होना चाहिए न कि तराशी गयी क्लिष्ट हिंदी के माध्यम से साहित्य सेवा। और सच कहा जाये तो पंचमेल हिंदी में लिखे गये विज्ञान-गल्प भी मन के अधिक करीब लगते हैं। दूसरी ओर उच्च कोटि की भाषा-दक्षता के साथ लिखे गये लेख अरुचिकर ही नहीं, नीरस भी हो जाते हैं। वस्तुतः, यही कारण है कि अंग्रेजी से अनुदित लेखों में स्वतः स्फूर्त ताजगी के अभाव का अनुभव होता है। विज्ञान लेखन में दक्षता इसके मुख्य अंग सरल भाषा से आती है जिससे अधिक से अधिक लोगों के बीच सम्प्रेषण हो सके न कि उच्च भाषा दक्षता से। हमें भारत की हिंदी की विविधताओं को अंगीकार करके लिखना चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि भाषा का सौंदर्य विज्ञान सम्प्रेषण की मूल भावना पर हावी न हो जाए।

एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों के अधिकांश, हिंदी समकक्ष उनके मूल अंग्रेजी शब्दों के समान ही कठिन लगते हैं। दूसरे कई बार उनमें एकरूपता का अभाव भी पाया जाता है। इससे पाठकों को धाराप्रवाह में बाधा सी आती है।

इस समस्या का निराकरण तो बहुत आसान है। विज्ञान-लेखों को हिन्दी में लिखते समय अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दावली को हिन्दी (रोमन) में प्रयोग करना चाहिए। उन शब्दों के हिन्दी रूपांतरणों को नहीं। और इसका एक गुप्त लाभ भी है। क्योंकि उच्च शिक्षा की प्राप्ति के इच्छुक पाठकों को अंततोगत्वा स्तरीय पुस्तकें और शोध प्रबंध तो अंग्रेजी में ही पढ़ने होते हैं। जब तक भारत में स्नातक और परास्नातक (सभी प्रकार के पाठ्यक्रमों) की शिक्षा का माध्यम स्वैच्छिक रूप से हिन्दी नहीं हो जाता तब तक हिन्दी शब्दावली को थोपकर हम हिंदी माध्यम से पढ़ रहे छात्रों का समय ही खराब करते हैं। दुर्भाग्यवश, जब ये छात्र अच्छे संस्थानों में जाते हैं तो इनके प्रारंभिक कुछ माह या वर्ष तो हिंदी से अंग्रेजी में 'स्विच-ओवर' की भेंट चढ़ जाते हैं। जब बोलचाल की हिंदी में विज्ञान लेख लिखे जाते हैं तो

*सहायक प्राध्यापक, भौतिकी विभाग, के.जे. सोमैया विज्ञान और वाणिज्य महाविद्यालय, विद्याविहार, मुम्बई-400 077.

अपेक्षाकृत अधिक सुगम हो जाते हैं। उन्हें पढ़कर आत्मसात करना आसान होता है और भाषागत विषमताओं पर नियंत्रण भी हो जाता है।

सरकारी संस्थानों की रिपोर्टों और शिखर शोध संस्थानों की गतिविधियों के हिंदी प्रकाशनों को देख लीजिए। अंग्रेजी में लिखे गये स्तरीय अनुसंधान पत्रकों और शोध प्रबंधों का अनुवाद हिंदी प्रकोष्ठ के गैर-विज्ञान की पृष्ठभूमि के कर्मचारी ही करते हैं। ''वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग'' के शब्दकोशों को खंगाल कर ये अनुवाद की खाना-पूर्ति कर देते हैं।

केंन्द्रीय हिंदी निदेशालय, उसके दूरस्थ अंग और हिंदी के विकास में लगी अन्य संस्थाएँ वर्ष के अंत में अपनी उपलब्धियाँ तो गिनाती हैं परन्तु विज्ञान के हिंदी में प्रसारित करने को लेकर उनकी उपलब्धियाँ 'न' के बराबर होती है। कारण स्पष्ट है कि विज्ञान में सक्षम लोग इनमें योगदान देना अपने समय का सदुपयोग नहीं मानते और गैर-विज्ञान पृष्ठभूमि के लोग विज्ञान लेखन को छूना भी नहीं चाहते। नए अन्वेषणों के वैज्ञानिक प्रकाशन के उपरांत भी अन्वेषक का दायित्व अपूर्ण रहता है यदि वह अपने अनुसन्धान को जनसामान्य की भाषा में द्वितीय पंक्ति के अनुसंधित्सुओं के लिए प्रकाशित न कराये। और भारत में यह कार्य हिंदी से अच्छा कौन सी भाषा में हो सकता है। हिंदी लेखन के दौरान विज्ञान की जटिलताओं की अभिव्यक्ति प्रायोगिक प्रदर्शनों के त्रिविमीय चित्रों और सुसंगत उदाहरणों से जीवंत हो उठती है और इस कार्य में हमारे विश्वविद्यालय के शिक्षकगण और वैज्ञानिक बंधु सक्षम हैं। परन्तु हिंदी में लिखकर स्वयं को सीमित समझने की कुंठा उन्हें लिखने से रोके रहती है।

ई-लेखन की दुविधा भी इसी से जुड़ी हुई है। इण्टरनेट पर उपलब्ध ई-पुस्तकों में हिंदी में लिखी गयी ई-विज्ञान पुस्तकें नगण्य हैं। यह दावा किया जा सकता है कि विज्ञान में लिखने वाले सभी लेखक कम्प्यूटर और इंटरनेट के साधारण उपयोग से निःसंदेह परिचित होते ही हैं। इसलिए उन्हें पाण्डुलिपियों का ई-संस्करण बनाना और इसे दूसरों को उपलब्ध कराना आसान होता है परन्तु, प्रचुर उपलब्धता अभी भी नहीं है। विज्ञान साहित्य और उच्च कक्षाओं की उपयोगी सामग्री तो दूर माध्यमिक एवं प्राथमिक छात्रों के लिए भी पाठ्य पुस्तकें तक उपलब्ध नहीं हैं। एन सी ई आर टी सरीखी गिनी-चुनी संस्थाओं के अतिरिक्त कहीं भी पुस्तकों का ई-संस्करण उपलब्ध नहीं है। इंटरनेट जैसे अद्भुत प्रसार माध्यम का प्रयोग सर्वाधिक यदि किसी ने किया है तो वो विज्ञान ही है। विडम्बना यह है कि इस पर उपलब्ध विज्ञान की विषय वस्तु हिंदी में अतिअल्प मात्रा में हैं। इसे दूसरी भाषाओं के आईने में देखें तो पाएंगे कि रूसी, चीनी, पुर्तगाली इत्यादि में विज्ञान का अतुल्य भंडार उपलब्ध है। विज्ञान के लेखकों को इंटरनेट पर पहले से उपलब्ध सामग्री के अनुवाद मात्र की परजीविता के साथ ही राजकीय आश्रिता छोड़कर लिखने की प्रवृत्ति का विकास करना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि हिंदी में विज्ञान लेखन का बेहतर विकास 'मुक्त स्रोत वितरण' के द्वारा ही हो सकता है।

सच पूछा जाये तो विभिन्न कम्प्यूटरों की आपरेटिंग – प्रणालियों, साफ्टवेयरों और प्रोटोकाल्स के मध्य इतना अच्छा समन्वय तो स्थापित हो ही चुका है कि हिन्दी में ई-लेखन विशेष तकनीकी कुशलता पर निर्भर नहीं रहा है। और यदि कुछ तकनीकी बाधा आती भी है तो विज्ञान में अभिरुचि रखने वाले स्वयं भी अपने लेखन के लिए 'कम्पेटिवल प्लेटफार्म' ढूँढना जानते हैं। इसलिये आवश्यकता मात्र जिजीविषा और इच्छा शक्ति की रह जाती है। यह एक मिथ है कि अंग्रेजी में लिखने पर प्रसार अधिक होता है। यदि कुछ हिंदी लेखक भी लगातार अच्छे ई-लेखन में जुट जायें तो इंटरनेट पर अंग्रेजी में उपलब्ध अतुल्य सामग्री और उसके पाठकों की संख्या का तुलनांक हिंदी सामग्री और उनकी पाठक संख्या के तुलनांक से बेहतर नहीं हो सकता।

हमने तो लोकप्रिय विज्ञान के प्रसार का सबसे सशक्त प्रसार माध्यम 'समाचार पत्र' का भी समुचित उपयोग नहीं कर पाया है। अभी भी हिंदी पाठकों का एक विशाल वर्ग सूचनाओं के लिए इसी माध्यम का सहारा लेता है। अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं की तुलना में समाचार पत्रों में विज्ञान आलेखों का अभाव रहता है। अक्सर संपादकों को कहते सुना गया है कि हमें एक तो प्रभावी विज्ञान लेख नहीं मिलते, दूसरे हमारा समाचार तंत्र उनका पुनः सत्यापन नहीं करा पाता, क्योंकि विज्ञान में अच्छा लिखने वाले हिंदी समाचार पत्रों से परहेज करते हैं। दूसरी ओर वे यह बताना भी आवश्यक समझते हैं की यदि हिंदी के विज्ञान लेखक चाहें तो संपादक विज्ञान के अतिरिक्त परिशिष्ट भी लगा सकते हैं। सामग्री तो मिले। उन्हें पता होता है कि ये सामग्री नव युवा और पाठकों की संख्या में अच्छी वृद्धि कर सकती है।

जहाँ तक अनुदित रिपोर्टों और वार्षिकियों के प्रकाशन का प्रश्न है तो विज्ञान से जुड़े वैज्ञानिकों और लेखकों को स्वतंत्र रूप से हिंदी में लिखने को प्रोत्साहित किया जा सकता है। बाद में उन लेखों का अंग्रेजी संस्करण अलग से लिखा जाये या हिंदी से अनुदित किया जाए। अपने उप-विषय को व्यक्ति स्वयं रुचिकर ढंग से लिखता है न कि उसको अनुवादित करने वाला गैर-विज्ञानी अनुवादक। अन्वेषण का नैसर्गिक प्रवाह भी अपनी भाषा में ही आता है फिर हम उसे चाहे-अनचाहे भाषांतर करते समय तनु कर देते हैं।

एक और सुझाव जो 'लोकप्रिय-विज्ञान' लेखन में विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकता है वह है– पत्रकारिता की भाषा में लिखना। सफल समाचार पत्र जनसामान्य की भाषा का प्रयोग करते हैं। इसमें हिंदी व्याकरण में अंग्रेजी तकनीकी शब्दावली पिरोयी जाती है। विज्ञान विषय को 'वर्तमान काल में' और संवाद की शैली में लिखने पर लेखक पाठक के साथ जुड़ सा जाता है। किशोरों की विज्ञान पत्रिकाओं में कुछ प्रसिद्ध लेखकों की प्रतिष्ठा का एक कारण यह भी है। क्लिष्ट हिंदी की जबरिया स्थापना के लिए लिखे गए लेखों की अपेक्षा 'साफ्ट-हिंदी' में स्वच्छ कलेवर के साथ सुगमता से लिखने पर साधारण लेखन भी रुचिकर हो जाता है।

दूसरी आवश्यकता प्रतिबद्ध लोकप्रिय लेखन पर अधिक जोर देने की है। इंटरनेट के आने से पहले दिल्ली प्रेस, हिंदुस्तान टाइम्स और सी एस आई आर इत्यादि की पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान/कथाओं का बोलबाला रहता था, जो अब लगभग

समाप्त हो गया है। ऐसा नहीं है कि स्तरीय 'फिक्शन' या विज्ञान गल्प में पाठकों की रुचि नहीं रही अपितु इंटरनेट के प्रति लेखकों के आत्मसमर्पण ने किशोरों एवं नवयुवा पाठकों का यह क्षेत्र छीन लिया है। देशी नामों के पात्रों वाली जमीन से जुड़ी कोई भी विज्ञान कथाएँ यदि 'भविष्य की सोच' के साथ 'अवधारणाओं' को मजबूत करने के लिए लिखी जाती हैं तो आज भी अत्यधिक लोकप्रिय होती हैं।

कुछ समस्याएँ उन लेखक-बंधुओं ने भी उत्पन्न की हैं जिनकी कल्पना शक्ति बस पात्रों की परा-मानवीय (सुपर नेंचुरल) शक्तियों को दिखने पर रुक जाती है। इस तरह की कथाओं को लिखना तो आसान है मगर बिना किसी प्रायोगिक वैज्ञानिक प्रमाण की पुष्टि के लिए लिखी गयी ये कथाएँ मात्र साधारण मनोरंजन बनकर रह जाती हैं। सच तो यह है कि तर्कहीन मनोरंजन विज्ञान में संभव ही नहीं होता। विज्ञान गल्प और कथाओं को लिखा ही इसलिए जाता है की वो न सिर्फ भ्रान्तियों और रूढ़ियों पर प्रहार करें बल्कि पाठकों में जिज्ञासु रूप से सुदृढ़ और अन्वेषण केन्द्रित सोच को प्रोत्साहित करें।

जब ऐसी कथाओं को लिखा जाए तो नये-नये शोधों से प्राप्त परिणामों का अति साधारणतम भाषा में अवश्य समावेश करना चाहिए। इससे पाठकों विशेषतः किशोरों में शुद्ध-विज्ञान के प्रति आकर्षण बढ़ता है एवं शंका निवारण में भी सहायता मिलती है। यह भी देखा गया है कि देवनागरी में लिखी जाने वाली सभी भाषाओं में हिन्दी में लिखी गयी विज्ञान कथाएँ खूब पसंद की जाती हैं। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि ये कथाएँ भारतीय माहौल में ढ़ली होनी चाहिए। अनुवादित गल्प और कथाओं में स्वतंत्रता का लुप्त होना उनके स्वाद को कसैला बना देती है और पाठक उन्हें यथावत नहीं ले पाते हैं।

हिंदी में विज्ञान लेखन की चर्चा के साथ हिंदी में लिखी गयी विज्ञान की उत्तर-पुस्तिकाओं की चर्चा करना आवश्यक है। यह पाया गया है कि विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी में उत्तर देने को भले ही औपचारिक अनुमति प्रदान की गयी है परन्तु परीक्षकों का उनके प्रति रवैया दोयम दर्जे वाला ही रहता है। परीक्षकों का यह भाषागत दुराग्रह हिंदी में उत्तर देने वाले विद्यार्थियों को हतोत्साहित करता है। यह भ्रांति बन चुकी है कि हिंदी में उत्तर देने वाला छात्र अंग्रेजी में उत्तर देने में अक्षम है, भले ही छात्र इसमें योग्य हो। चूँकि विद्यार्थी भी इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हो चुके हैं, अतः वे हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी में लिखी सामग्री पढ़ने और विकृत अंग्रेजी में लिखने पर जोर देते हैं। और, इसके फलस्वरूप भी हिंदी में विज्ञान लेखन ही प्रभावित होता है।

प्रमाणिक ज्ञान अपनी भाषा में मिलने पर विज्ञान में प्रखर और अंग्रेजी में साधारण बालकों की भी रचनाधर्मिता विकसित हो जाती है। यदि अद्यतन और स्तरीय पाठ्य हिंदी में मिलें तो राष्ट्रीय ओलंपियाड इत्यादि कार्यक्रमों में भी ये बालक अपना प्रदर्शन सुधार सकते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर के लिए भले ही इन्हें एक अतिरिक्त अंग्रेजी का प्रशिक्षण दे दिया जाये। ये कार्यक्रम हिंदी में भी आयोजित कराने की चेष्टा भी हिंदी विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित कर सकती है।

विज्ञान से जुड़े समाज में पिछले दशक तक अंग्रेजी का वर्चस्व था। आज भी अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में अच्छी अंग्रेजी ही शोध और उनके प्रकाशन का माध्यम है और इस भाषा पर अच्छा नियंत्रण हमें वैश्विक प्रगति से जोड़े रखती है। परन्तु अब यह वैयक्तिक उपलब्धि नहीं मानी जाती। आज के भारत के वैज्ञानिक समाज में अच्छी हिंदी में लिखना गौरव का विषय बनता जा रहा है। विज्ञान को हिंदी में लिखकर हम न सिर्फ अंग्रेजी की सीमा से मुक्ति पाते हैं बल्कि आनंदमयी आत्मानुभूति भी करते हैं।

यदि हम शिक्षक हैं तो हमारा दायित्व यह भी बनता है कि हम आंकलन करें कि हिंदी में हमने कितना लिखा है और कितना स्वेच्छा से प्रकाशित किया है। यहाँ 'प्रकाशित' से तात्पर्य इंटरनेट को दिया गया निःशुल्क सहयोग भी है। हम हिंदी लेखों को कितना पढ़ते हैं, कितनी विज्ञान आलोचनाएँ लिखते हैं एवं उन्हें पढ़ने के लिए कितना प्रोत्साहन नई पीढ़ी को देते हैं, सब महत्वपूर्ण है।

## बेरी फल और स्वास्थ्य : वैज्ञानिक तथ्य

सब जानते हैं कि बेरी जो एक प्रकार के रसदार एवं गोल फल होते हैं, मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक हैं। इसमें मौजूद पिगमेन्ट्स के कारण यह फल आकर्षक रंगों के होते हैं। यह वृद्धावस्था को टालने तथा कर्क रोग के प्रति अवरोध भी उत्पन्न करते हैं। इन फलों के इन महत्वपूर्ण पिगमेन्ट्स का मुख में जाने और लार से मिलने के बाद क्या होता है, इस पर शोध जारी है। नये शोधों से यह तथ्य सामने आया है कि मुख में मौजूद बैक्टीरिया 6 में से 2 मुख्य पिगमेन्ट्स को पूर्णरूप से नष्ट कर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि बेरी का सेवन करने के बाद भी हमको पूर्ण चिकित्सीय लाभ नहीं मिल पाता। इसका मतलब यह है कि पिगमेन्ट्स के विखण्डन से बनने वाले पदार्थ ही स्वास्थ के लिए लाभदायक होते हैं न कि बेरी में मौजूद पिगमेन्ट्स। वैज्ञानिक इन तथ्यों का पता लगाने की दिशा में कार्यरत हैं।

# हृदयाघात के प्रमुख लक्षण तथा उससे जुड़ी कुछ भ्रांतियाँ

प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल *

हृदयाघात (हार्ट अटैक) एक जानलेवा बीमारी है पर सामान्यतः लोग इसके प्रमुख लक्षणों से अवगत नहीं रहते और लोग अज्ञानता और समय से चिकित्सा सुविधा उपलब्ध न हो पाने के कारण विषम परिस्थिति में पहुँच जाते हैं। कभी-कभी तो मरीज तथा उससे सम्बंधित लोग बीमारी की गंभीरता को समझ ही नहीं पाते और मौत के मुँह में पहुँच जाते हैं। हृदयाघात एक ऐसी बीमारी है जिसमें रक्त का थक्का अचानक कोरोनरी रक्त वाहिका को अवरुद्ध कर देता है जिससे आक्सीजनयुक्त रक्त पूरी तरह से हृदय की कोशिकाओं तक नहीं पहुँच पाता है और वह धीरे-धीरे नष्ट होने लगती हैं। अगर यह स्थिति जल्द ही सामान्य नहीं होती है तो हृदय को काफी नुकसान पहुँचता है। यहाँ हम जानने की कोशिश करेंगे कि हृदयाघात होने के कौन-कौन से प्रमुख लक्षण हैं। यदि इन लक्षणों को हम एक पूर्व चेतावनी के रूप में अपने जीवन में उपयोग करते हैं तो इससे हृदयाघात के समय होने वाली एक अनहोनी घटना को टालने में बहुत हद तक सफल हो सकते हैं।

**हृदयाघात के कुछ प्रमुख लक्षण**

1. **वक्षस्थल ( चेस्ट ) में बैचेनी महसूस होना :** यह हृदयाघात के समय उत्पन्न एक प्रमुख लक्षण है जिसमें वक्षस्थल में बेचैनी एवं भारीपन महसूस होता है। कभी-कभी इसी स्थान पर जलन भी महसूस होती है। इस प्रकार के लक्षण पर इनको मजाक में टालना अथवा हल्केपन में नहीं लेना चाहिए और पीड़ित व्यक्ति को तुरन्त किसी नजदीकी चिकित्सक या चिकित्सालय में जाकर सलाह तथा समुचित परीक्षण (टेस्ट) जैसे ई.सी.जी. इत्यादि कराना चाहिए।
2. **साँस लेने में तकलीफ :** अगर व्यक्ति को साँस लेने में भारीपन या थोड़ी दूर पैदल चलने या सीढ़ी चढ़ने, कसरत करने या शारीरिक श्रम करने से साँस में तकलीफ हो या व्यक्ति हाँफने लगता हो तो यह एक चिन्ता का विषय है। अगर इस समय वक्षस्थल पर भारीपन न भी हो तो इसे एक चेतावनी के रूप में लेना अधिक श्रेयस्कर होगा।

हृदयाघात की वेदना

3. **थकावट तथा मिचली ( नौसिया ) आना :** अगर थोड़ा सा कार्य करने पर भी थकावट बनी रहे और घबराहट का अहसास हो तो यह हृदयाघात बीमारी के प्रारंभिक लक्षण हो सकते हैं। इसको सिर्फ थकावट मानना एक नादानी होगी। यह रक्त वाहिकाओं के अवरुद्ध होने या सिकुड़ने की वजह से भी हो सकता है। इस दशा में थोड़ा सा श्रम करने से भी थकावट महसूस होने लगती है तथा उपयुक्त भोजन व निद्रा लेने के बाद भी कमजोरी का अनुभव होता है।
4. **पसीना होना ( स्वेटिंग ) :** वैसे तो पसीना होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, खासतौर पर गर्म व शुष्क मौसम में, परन्तु जब पसीना सर्द मौसम में भी होने लगे तो यह एक चिन्ताजनक अवस्था का सूचक होता है।
5. **बाँहों में संज्ञाशून्यता का अनुभव होना :** अगर आपके हाथों में अचानक संज्ञाशून्यता का अहसास होने लगे और हाथ बगल में स्थिर से हो जाए तो यह हृदयाघात का एक संकेत हो सकता है।
6. **शरीर के विभिन्न अंगों से प्रतिक्रिया का न मिलना :** अगर शरीर के कुछ अंग प्रतिक्रिया देना बन्द कर दें तो इस दशा को गंभीरता से न लेकर टालना एक बड़ा खतरा साबित हो सकता है। सामान्यतः कंधे, बाँहें तथा गर्दन का पिछला हिस्सा प्रभावित होने वाले अंगों में आ सकते हैं।

*आचार्य, वनस्पति विज्ञान विभाग एवं समन्वयक, हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221 005.

7. **बोलने में परेशानी या हकलाहट का होना :** यह जरूरी नहीं है कि बोलने में हकलाहट या रुकावट केवल मदिरापान या अन्य मादक द्रव्यों के सेवन से ही होती है। बोलने में घबराहट या हकलाहट, हृदयाघात की वजह से भी हो सकती है। अगर ऐसी स्थिति सामने आती है तो किसी मित्र या रिश्तेदार की मदद से यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि पीड़ित व्यक्ति क्या कहना चाहता है। अगर जरूरी हो तो चिकित्सीय परामर्श अवश्य लें।

हृदयाघात की संभावना को आसानी से टाला जा सकता है, बशर्ते, इसके लक्षणों को सही समय पर और सही प्रकार से समझ लिया जाए। ऊपर दिये गए किसी एक या ज्यादा लक्षणों का पता चलने पर तुरन्त उचित चिकित्सा सुविधा प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए। यह समस्या मुख्यतः रक्त वाहिकाओं में अवरोध उत्पन्न होने से पैदा होती है। ऐसे लक्षण अगर हृदयाघात की वजह से न भी हो तब भी एक योग्य चिकित्सक की देखरेख में समुचित जाँच करा लेनी चाहिए।

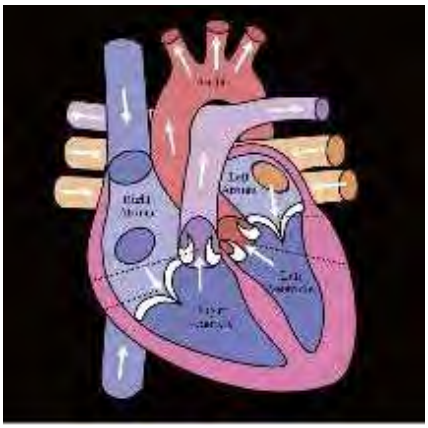

हृदय की बनावट

ज्यादातर लोगों को हृदय और उससे संबन्धित बीमारियों के बारे में पूर्ण व उचित जानकारी नहीं होती है। वास्तव में वह यह भी नहीं जानते कि उनके हृदय को स्वस्थ रखने के लिए क्या अच्छा होता है और क्या बुरा। हृदयघात से संबन्धित कुछ भ्रांतियाँ इस प्रकार हैं :

1. **अगर आप शारीरिक रूप से स्वस्थ हों तो क्या आपको हृदयाघात नहीं होगा ?:** अगर आप शारीरिक रूप से स्वस्थ हैं तो हृदयाघात के खतरे कम जरूर हो सकते हैं परन्तु इससे आप निश्चिंत नहीं हो सकते कि आपको भविष्य में कोई बीमारी या हृदयाघात नहीं हो सकता। लोगों में यह भी भ्रांति मिलती है कि सिर्फ मोटे लोगों में ही इसकी संभावना ज्यादा रहती है। वास्तव में पतले तथा स्वास्थ्य के प्रति सतर्क व्यक्तियों में भी कोलेस्ट्राल के संग्रहित होने से रक्त वाहिकायें सिकुड़ जाती हैं। इसके प्रमुख कारणों में धूम्रपान, तम्बाकू, गुटका आदि का सेवन, मधुमेह, आनुवांशिकता, उच्च रक्तचाप या कोलेस्ट्राल का बढ़ना शामिल है जिनकी वजह से हृदयाघात की संभावना बढ़ जाती है।

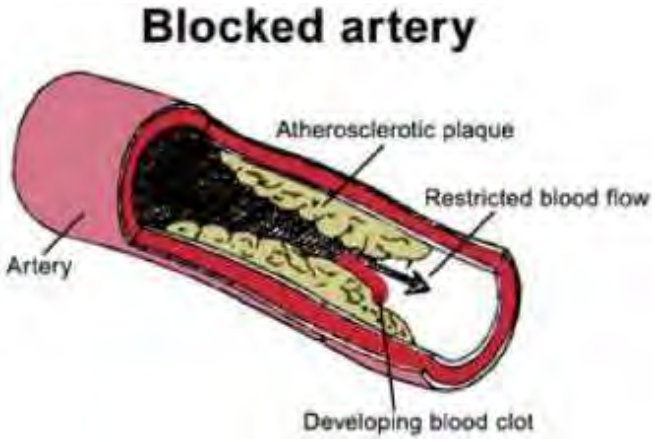


2. **क्या हृदयाघात के लक्षणों को पहचानना बहुत सरल है ?:** इस प्रश्न का उत्तर सिर्फ यही है कि साधारण व्यक्ति को तो छोड़ दीजिए, कभी-कभी तो प्रशिक्षित चिकित्सक भी हृदयाघात के लक्षण पहचानने में चूक कर जाते हैं। इस बीमारी के लक्षण हमेशा खतरनाक नहीं होते तथा यह थोड़े-थोड़े अन्तराल में बदलते रहते हैं। अगर मरीज को वक्षस्थल में दर्द या भारीपन महसूस हो, साँस फूल रही हो, ठंढ़क में भी पसीना आ रहा हो, पीठ में दर्द हो, मिचली आ रही हो, अपच हो या हृदय तेजी से धड़क रहा हो तो ऐसे लक्षणों को गंभीरता से लेना होगा। इन लक्षणों के महसूस होने पर उचित चिकित्सकीय उपचार प्राप्त करना चाहिए।
3. **अगर वक्षस्थल में दर्द न हो तो क्या हृदयाघात की संभावना नहीं रहती ?:** इस बीमारी के विभिन्न प्रकार के अजीबो-गरीब सूचक हो सकते हैं। मधुमेह से पीड़ित तथा वृद्ध लोगों में इस समय दर्द का एहसास नहीं होता है। साथ ही यह भी जरूरी नहीं है कि मरीज वक्षस्थल (चेस्ट) में दर्द महसूस करे। दर्द दाँतों के जबड़ों से और नाभि प्रदेश तक कहीं भी हो सकता है। इसमें एक विशेष प्रकार का 'भारीपन, खिचाव या तनाव' का अनुभव होता है तो यह मन्द गति का माना जाता है। यह अवस्था लम्बे समय तक या रुक-रुक कर हो सकती है। अगर पीठ में दर्द या किसी प्रकार की विशेष तकलीफ हो तो यह जरूरी नहीं है कि यह हृदयाघात की वजह से ही हो। चिकित्सकीय जाँच की वजह से इस संभावना को नकारा नहीं जा सकता। यदि व्यक्ति हृदय की धड़कन को अस्थिर या तेज महसूस कर रहा हो तो इसको साधारण तनाव मानकर इसकी अनदेखी नहीं करनी चाहिये। अगर हम पुरानी कहावत ''इन्तजार करो और देखो'' को मानकर चलते हैं तो यह हृदय के मामले में जानलेवा साबित हो सकती है। इस स्थिति में तुरन्त कुशल चिकित्सक से जाँच करानी चाहिए क्योंकि जीवन के लिए हर क्षण मूल्यवान होता है और जरा सी असावधानी से हृदय को भारी क्षति पहुँच सकती है। हमेशा यह सोचना कि वक्षस्थल में दर्द अपच या गैस उत्सर्जन की वजह से है, एक बचकाना पूर्ण कदम होगा।
4. **क्या हृदयाघात युवा लोगों में नहीं हो सकता ?:** पुराने समय में ऐसा पाया जाता था कि यह बीमारी युवाओं में बहुत कम पायी जाती थी परन्तु आज के समय में इस तथ्य में कोई सच्चाई नहीं है। आज 20 से 40 वर्ष के युवाओं में भी हृदयाघात का प्रतिशत काफी बढ़ गया है। इसका मुख्य कारण बताना थोड़ा मुश्किल जरूर है, परन्तु आज के युवाओं की जीवनशैली एकदम से बदल गयी है। धूमपान, मदिरापान, जंक फूड, बढ़ता मानसिक तनाव, घटता शारीरिक श्रम

आज शहरों में रहने वाले आमजनों की एक जीवनशैली सी बन गई है। इसके अलावा युवाओं में मधुमेह, रक्तचाप तथा कोलेस्ट्राल की मात्रा का बढ़ना भी इसके मुख्य कारण हैं।

5. **क्या प्रतिदिन एक एस्पिरिन की गोली लेने से हृदयाघात को रोका जा सकता है ?:** एस्पिरिन की गोली तीव्र हृदयाघात को तथा वक्ष में वेदना के होने पर चिकित्सक द्वारा लेने की सलाह दी जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इसको रोकने के लिए प्रतिदिन इसका सेवन करना चाहिए। इस औषधि के अपने कुछ दूसरे प्रकार के विषैले प्रभाव भी शरीर पर पड़ सकते हैं। कुछ लोगों पर इसका रिएक्शन होता भी देखा गया है। अतः इस दवा का उपयोग सिर्फ चिकित्सकीय परामर्श के बाद ही करना चाहिए।

6. **क्या हृदयाघात के बाद जीवन स्थिर हो जाता है ?:** यह बात बिल्कुल सच नहीं है। किसी भी मनुष्य का जीवन हृदयाघात के बाद एकदम सामान्य हो सकता है अगर वह अपनी जीवनशैली के प्रति सचेत रहे और चिकित्सकों द्वारा दिये गये निर्देशों का पूरा-पूरा पालन करे। ऐसी स्थिति में हृदयाघात को एक अच्छे व स्वस्थ जीवन का अन्त कदापि नहीं माना जाना चाहिए। व्यक्ति को अपने को खुश रखने व अकेलेपन से बचने की कोशिश करनी चाहिए। अपने खान-पान की आदतों में सावधानी बरतें तथा व्यायाम नियमित रूप से करें और धूम्रपान व मदिरापान का सेवन न करें। सबसे ज्यादा जरूरी है अपने काम के प्रति एक सकारात्मक रवैया अपनाएँ। इन सब आदतों को अपना करके पीड़ित व्यक्ति पुनः अपने को पहले की तरह स्वस्थ और प्रसन्न महसूस कर सकते हैं। इन सबके साथ-साथ बराबर चिकित्सकीय जाँच व सलाह के प्रति भी सतर्कता बरतनी चाहिए।

7. **क्या हृदय संबधी बीमारियाँ पुरुषों व महिलाओं को समान रूप से प्रभावित करती हैं ?:** पुरुष एवं महिलायें दोनों ही हृदय संबधी बीमारियों से प्रभावित हो सकते हैं। परन्तु पुरुषों में इसकी संभावना महिलाओं (जो रजोवृत्ति में हो) के मुकाबले ज्यादा होती है। यह धारणा कि हृदयाघात महिलाओं में नहीं हो सकता, एकदम गलत है। महिलायें अपनी युवावस्था में पुरुषों के मुकाबले इस बीमारी से कम ग्रसित होती हैं, लेकिन 60-65 वर्ष की अवस्था पार करने के बाद, वे पुरुषों के समान ही इस बीमारी के प्रति संवेदनशील हो जाती हैं। महिलाओं में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है अगर वे मधुमेह तथा उच्च रक्तचाप से पीड़ित हों, धूम्रपान व मदिरापान करती हों या गर्भनिरोधी दवाओं का उपयोग करती हों। हृदयाघात के लक्षण ज्यादातर दोनों ही लिंगों में समान होते हैं मगर महिलाओं में उल्टी, मिचलाहट तथा साँस फूलने की अतिरिक्त समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

8. **क्या मधुमेह की बीमारी हृदयाघात में कोई समस्या नहीं है, अगर रक्त शर्करा का स्तर नियंत्रित हो ?:** मधुमेह रक्त वाहिकाओं में सूजन पैदा करती है जिससे वह कमजोर पड़ जाती हैं और इससे हृदय संबधी तथा अन्य बीमारियों का संकट बढ़ जाता है। इसलिए हर एक को अपने शरीर के रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित रखने के अलावा अपना वजन, रक्तचाप तथा कोलेस्ट्राल का स्तर नियंत्रित रखना जरूरी है।

9. **क्या एक बार एंजियोप्लास्टी ( सिकुड़ी हुई रक्त वाहिकाओं को चौड़ा करने की प्रक्रिया ) होने पर व्यक्ति सभी प्रकार के हृदय संबधी समस्याओं से मुक्ति पा जाता है ?:** यह बात वास्तव में हास्यापद है ? अगर आप पुनः अपनी पुरानी जीवनशैली (गरिष्ठ भोजन, मदिरा सेवन, धूम्रपान, मधुमेह व रक्तचाप का नियंत्रित न होना तथा व्यायाम का अभाव) व असावधानियाँ अपनाते हैं जिसकी वजह से आपको हृदयविकार हुए थे तो आप पुनः संकट को आमंत्रण देते हैं। इससे आपका हृदय कमजोर व नष्ट हो सकता है। हमको यह समझना होगा कि हृदय शरीर का एक महत्वपूर्ण तथा संवेदनशील अंग है। अतः, इस पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है।

अगर हम खान-पान, नियमित व्यायाम तथा इससे होने वाले खतरों के प्रति सतर्क रह सकें तो हृदय संबधी बीमारियों पर नियंत्रण पा सकते हैं। बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि लोग अपने स्कूटर, कार या लैपटॉप का अपने शरीर से ज्यादा ध्यान रखते हैं। अतः स्वस्थ व खुशहाल जीवन जीने के लिए हृदय का विशेष ध्यान रखना बहुत ही जरूरी है। जब भी हृदयाघात से संबधित लक्षण महसूस करें तो तुरन्त ही योग्य चिकित्सक से सम्पर्क करें। उचित फोन नम्बरों को सदैव अपने पास रखें और उनका तत्काल उपयोग करें। अगर आप किसी चिकित्सालय में जा रहे हो तो वाहन खुद चला कर न जाएँ। ज्यादा अच्छा होगा कि आप चिकित्सा वाहन को ही घर पर बुलाएँ जिससे चिकित्सालय जाने के रास्ते में ही समुचित उपचार शुरू हो सके और आपका बहुमूल्य जीवन बचाया जा सके।

आकस्मिक सहायता सेवा

विज्ञान हमारे विचारों में नवीनता लाता है और हमारे बचकाने विश्वासों को दूर करता है। प्रकृति के नियमों के अनुसार वह हमारे जीवन को शक्तिशाली आधार देता है।

**- इमर्सन**

# पवित्र वन : प्रकृति संरक्षण की प्राचीन परंपरा

प्रो0 हरेन्द्र नाथ पाण्डे *

प्रकृति संरक्षण प्राचीन काल से आदिवासियों की संस्कृति का एक अटूट अंग रहा है। इसके मूल में उनकी प्रकृति पर निर्भरता एवं उसके प्रति उनका सम्मान है। प्रकृति प्रेम के द्वारा वे अपने को पूर्वजों और ईश्वर से जुड़ाव का अनुभव करते हैं। इस प्रकार की परंपरा कबीलों में रहने वाले मूल निवासियों में विश्व के विभिन्न देशों में आज भी पायी जाती है। इनमें पौधों, जीव-जन्तुओं, यहाँ तक कि प्राकृतिक स्थान जैसे झील, पर्वत, नदी इत्यादि को पवित्र मानकर संरक्षित किया गया है। इसे आज भी शिकार एवं वनजन्य वस्तुओं पर निर्भर (Hunter gatherer) समुदायों के धार्मिक अनुष्ठानों में देखा जा सकता है। जंगली पशु-पक्षी, शिकार के औजार और शिकारी की पूजा इनके धार्मिक अनुष्ठानों में देखने को मिलती है।

भारतवर्ष के विभिन्न भागों में आदिवासियों की एक बड़ी संख्या निवास करती है। ये समुदाय अपने आस-पास के वनों को पवित्र मानते हुए उनका संरक्षण करते हैं। भारत में यह परंपरा अति प्राचीन है जिसका उल्लेख वैदिक ऋचाओं में भी मिलता हैं अनेक पौधों की प्रजातियाँ जैसे पीपल, तुलसी, रुद्राक्ष, कदम्ब, अशोक आदि पवित्र माने जाते हैं। अनेक पौधों का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठानों में होता है। वनों, जलायशों को स्थानीय देवी देवताओं को समर्पित करने की पंरपरा रही है।

आदिवासियों में प्रकृति पूजा की एक महत्वपूर्ण पंरपरा वनों के संरक्षण के रूप में दिखाई देती हैं। इसमें गाँव के पास स्थित वन के एक भाग को इस विश्वास के साथ संरक्षित किया जाता है कि इनमें पूर्वजों और स्थानीय देवी-देवताओं का निवास होता है। इस कारण इन्हें पवित्र माना जाता है और इनमें किसी प्रकार का विध्वसंक कार्य वर्जित होता है। केवल समय-समय पर पंरपरा के अनुसार पूजा-अर्चना की जाती है। इस प्रकार के

**मेघालय का एक पवित्र वन जहाँ स्थानीय लोगों द्वारा पूर्वजों की याद में स्थापित पत्थर की शिला पर चावल की मदिरा चढ़ाकर पूजन-अर्चन।**

वनों को पवित्र वन (Sacred grove) कहा जाता है। वैज्ञानिकों ने इन वनों को परिभाषित करने का प्रयास किया है। ह्यूगीज और चन्द्रन (1998) के अनुसार लैन्डस्केप (Landscape) का वह भाग जिसमें उस स्थान की भूसंरचना एवं वनस्पति का एक हिस्सा जिसे वहाँ के आदिवासियों का संरक्षण प्राप्त है, पवित्र वन कहा जाता है। इस स्थान को स्थानीय लोग अपने पूर्वजों एवं अदृष्य ईश्वरीय शक्ति से जुड़ाव का माध्यम मानते हैं। अतः इसकी पवित्रता अक्क्षुण रखने के लिये इसमें सामान्यतः मनुष्यों का प्रवेश वर्जित होता है। इन वैज्ञानिकों के मतानुसार ये वन शायद आदि मानव के ''प्रथम देवालय'' थे। इस प्रकार के वनों के अवशेष ग्रीस में पाये जाते हैं। इन अवशेषों के अध्ययन से आभास होता है कि वन के एक भाग को पत्थरों से घेरकर सुरक्षित रखा जाता था। इन्हें ग्रीक भाषा में ''टेमीनॉस'' (Temenos) अथवा Cut-off or demarcated place कहा जाता था।

पवित्र वनों के इतिहास का अध्ययन करने वाले दो भारतीय वैज्ञानिक, प्रोफेसर माधव गाड़गिल और वर्तक (1975), इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मानव मन में अक्षुण (Virgin) वन की परिकल्पना लगभग 3000-5000 वर्ष ईसा पूर्व की है जब मनुष्य शिकार और वनों से प्राप्त वस्तुओं पर निर्भर था। इस समय मनुष्य ने खेती करना नहीं सीखा था। ऐसा संभव है जब मनुष्य ने जंगलों को जलाकर खाली भूमि में खेती प्रारम्भ किया हो उस समय वनों के छोटे-छोटे हिस्सों को अपने पूर्वजों और स्थानीय देवी-देवताओं को समर्पित किया हो। सामान्यतः ये वन जलसह (Watershed) क्षेत्र में स्थित होते थे जहाँ से उन्हें वर्षभर जल उपलब्ध था। अतः शायद यह मान्यता रही होगी कि इन वनों में निवास करने वाले देवी-देवताओं की कृपा से उन्हें जल उपलब्ध होता है। कुछ मानव पुरावेत्ता (Anthropologist) जैसे कलाम (1995) का विचार है कि ये वन एक प्राचीन पंरपरा का फल है जिसके फलस्वरूप एक ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था का जन्म हुआ जिसमें कबीलाई लोग अपने धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्य इन वनों के पास करने लगे क्योंकि उनकी मान्यता थी कि यहाँ पूर्वजों की आत्मा और स्थानीय देवी-देवता निवास करते हैं। कारण जो भी रहा हो आज भी विश्व के विभिन्न देशों में पवित्र वनों की उपस्थिति मनुष्य के प्रकृति प्रेम और उसके संरक्षण की भावना की ओर इंगित करती है।

### विश्व में पवित्र वनों का वितरण

धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक विभिन्नताओं के बावजूद विश्व के अनेक देशों में पवित्र वन, पवित्र जलाशय, पवित्र स्थान जैसी मान्यतायें

*आचार्य (अवकाशप्राप्त), वनस्पति विज्ञान विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग.


ISSN 2231-2455

पायी जाती हैं। ह्यूगीज और चन्द्रन (1998) और मलहोत्रा आदि (2007) के अनुसार अफ्रीका, एशिया,योरोप, एस्ट्रो-पैसिफिक क्षेत्र और अमेरीका महाद्वीप में इनकी उपस्थिति दर्ज की गई है। अफ्रीका में ये सियरा लियोन, घाना, आईवरी कोस्ट, नाईजीरिया, ओल्ड केलावार, जिम्बावे, दक्षिणी अफ्रीका, मिस्र और केनिया में पाये जाते हैं। एशिया महाद्वीप में पवित्र वन भारतवर्ष, कोरिया, जापान, थाईलैन्ड और इन्डोनेशिया से वर्णित हैं। ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे पता चलता है कि प्राचीन काल में जर्मनी, ब्रिटेन, इटली और फिनलैन्ड में भी पवित्र वन थे। ऐस्ट्रोपैसिफिक क्षेत्र न्यूजीलैंड और पॉलीनेशिया में भी इनके उपस्थित होने के प्रमाण मिले हैं। अमेरिका के मूल निवासियों में भी यह प्रवृत्ति अनेक स्थानों पर उनके द्वारा संरक्षित वृक्ष समूहों (Grove) के रूप में परिलक्षित होती है। प्रारम्भ में यूरोप से आये अप्रवासियों ने वृक्ष समूहों को स्थान-स्थान पर संरक्षित किया जिन्हें बाद में लड़ाई में मारे गये अप्रवासी सैनिकों एवं लोकप्रिय नेताओं के नाम पर समर्पित किया।

**भारतवर्ष के पवित्र वन**

भारत के लगभग 18 प्रदेशों में पवित्र वन पाये गये हैं जिनकी अनुमानित संख्या तालिका आगे दी गयी है। इनकी अधिक संख्या देश के दक्षिणी-पश्चिमी राज्यों जैसे महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और केरल में है। पूर्वोत्तर भारत के अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर और मेघालय में भी इनकी संख्या काफी अधिक है। यद्यपि पूरे देश के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं परन्तु वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इनकी संख्या 1,00,000 से 1,50,000 के बीच हो सकती है। अभी तक 13,720 पवित्र वन वर्णित हैं।

पवित्र वनों के क्षेत्रफल में काफी भिन्नता पाई जाती है। इनका क्षेत्र कुछ वृक्षों के समूह से लेकर सैकड़ों हेक्टेयर का हो सकता है। सामान्यतः इनका क्षेत्र 0.001-40 हेक्टेयर के बीच पाया गया। ये अधिकांशतः आदिवासी बहुल क्षेत्रों में हैं। देश के विभिन्न राज्यों में पाये जाने वाले इन वनों को अनेक स्थानीय नामों से जाना जाता है। विभिन्न राज्यों में पाये जाने वाले पवित्र वनों का स्थानीय नाम आगे दिया गया है।

**भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में उपस्थित पवित्र वनों की संख्या एवं उनका अनुमानित क्षेत्रफल**
**( स्त्रोत : मलहोत्रा 1998, मलहोत्रा आदि 2001 ).**

| क्र.सं. | प्रदेश | संख्या | अनुमानित क्षेत्रफल ( हे0 ) |
|---|---|---|---|
| 1. | आन्ध्र प्रदेश | 1550 | - |
| 2. | अरुणाचल प्रदेश | 58 | - |
| 3. | आसाम | 40 | - |
| 4. | कर्नाटक (कुर्ग) | 1214 | 2407 |
| 5. | केरल | 2000 | 500 |
| 6. | गुजरात | 29 | 200 |
| 7. | उत्तर प्रदेश / उत्तराखण्ड | 6 | 5500 |
| 8. | हरियाणा | 248 | - |
| 9. | हिमाचल प्रदेश | 11 | - |
| 10. | मध्य प्रदेश | 275 | - |
| 11. | महाराष्ट्र | 2333 | 3570 |
| 12. | मणिपुर | 531 | 756 |
| 13. | मेघालय | 91 | 26326 |
| 14. | उड़ीसा | 322 | 50 |
| 15. | राजस्थान | 10 | 158 |
| 16. | सिक्किम | 56 | - |
| 17. | तमिलनाडु | 462 | - |
| 18. | पश्चिमी बंगाल | 867 | - |

**विभिन्न राज्यों में पवित्र वन का स्थानीय नाम**

| राज्य | स्थानीय नाम |
|---|---|
| मध्य प्रदेश | सरना, देव |
| महाराष्ट्र | देवराय, देवराथी |
| बिहार | सरनास |

| | |
|---|---|
| राजस्थान | ओरान्स |
| कर्नाटक | देवर्वन, देवराकॉडू, रूलीदेवराकॉडू, नागवन |
| तमिलनाडु | कोविलकाडू |
| केरल | कॉबू |
| हिमाचल प्रदेश | देव वन |
| मेघालय | की लॉ लिंग्डोह, की लॉ किंटांग |
| झारखण्ड | सरना, जोहेरथान |
| मणिपुर | लाई उमांग |
| गोवा | देवराय, देवगल, देवरन, देव वन |
| छत्तीसगढ़ | मातागुड़ी, देवगुड़ी, गाँवदेवी |

**पवित्र वनों से जुड़ी मान्यताएँ**

इनसे जुड़ी मान्यताओं में काफी विभिन्नता मिलती है परन्तु अधिकांश स्थानों पर ये वन स्थानीय देवी-देवताओं को समर्पित होते हैं, जैसे केरल में सर्प देवताओं, देवी भगवती, और वन देवी और बंगाल में देवी दुर्गा को समर्पित होते हैं। मणिपुर में मेतेई समुदाय इन वनों में अपने पूर्वजों की आत्माओं का निवास मानते हैं जो इनके पूरे समुदाय को प्रभावित करने की शक्ति रखते हैं। मेघालय में खासी जनजाति इनमें ''की रिंक्यू की बासा'' (Ki Rying kew ki Basa) रक्षक (Protector) का निवास मानते है जो पूरे गाँव के लोगों और जानवरों की विपत्तियों से रक्षा करता है। गोवा में मैन्ग्रूव स्वैम्प के वनों में मगरमच्छ की स्थानीय लोग पूजा करते हैं क्योंकि ये परभक्षी मछलियों को खा जाते हैं जिनसे मछलियों का उत्पादन काफी बढ़ जाता है।

इन वनों को धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से तीन प्रमुख समूहों में रखा जा सकता है।

(1) पारंपरिक पवित्र वन- ये स्थानीय देवी-देवताओं और पूर्वजों को समर्पित होते हैं जिनकी किसी मूर्त वस्तु जैसे पत्थर की शिला के रूप में पूजा की जाती है। (2) मन्दिर वन – इन वनों में विभिन्न देवी-देवताओं का मंदिर होता है। ये सामान्यतः संरक्षित होते हैं। (3) कहीं-कहीं श्मशान स्थल अथवा कब्रगाह चारो ओर से संरक्षित वन से घिरा होता है। इनकी संख्या अत्यन्त सीमित है।

**पवित्र वन के अन्दर का दृश्य जहाँ पर पत्थर की दो शिलायें स्थानीय देवी-देवताओं के प्रतीक स्वरुप हैं जिनकी पूजा-अर्चना की जाती है**

**पवित्र वनों का धार्मिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व**

देवी-देवतओं की समर्पित वनों का आदिवासियों के धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन से गहरा संबध होता है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वार्षिक अनुष्ठान और समारोह आयोजित किये जाते हैं जिनमें पशुओं की बलि दी जाती है। किन्हीं-किन्ही स्थानों पर फल-फूल भी चढ़ाये जाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन वनों में उपस्थित देवी-देवताओं के आर्शीवाद पर समुदाय की सुख समृद्धि निर्भर होती है और इन वनों को नुकसान पहुँचाने वाले को देवी-देवताओं द्वारा विभिन्न प्रकार से दण्डित किया जाता है।

धार्मिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त इन वनों का सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व है। अनेक त्योहार इन वनों के पास सामूहिक रूप से मनाये जाते हैं। शादी आदि अन्य सामाजिक कार्य इन्ही वनों के पास आयोजित किये जाते हैं। गाँव के लोग बीमारी से बचाव एवं स्वस्थ रहने के लिये प्रार्थना करते हैं। व्यापार अथवा नौकरी के लिए गाँव से बाहर जाने वाले व्यक्ति यहाँ आकर अपनी सफलता और सुरक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं। ऐसी मान्यता है कि अच्छी वर्षा, अच्छी खेती की उपज एवं लाभकारी आर्थिक गतिविधियाँ वनों में उपस्थित पूर्वजों के आर्शीवाद से ही संभव होती हैं।

**पवित्र वनों की जैव विविधता एवं पारिस्थितिक महत्व**

सामान्यतः छोटे-छोटे क्षेत्रफल में फैले इन वनों में पौधों और जीव-जन्तुओं की प्रजातियाँ बहुतायत संख्या में पायी जाती हैं। अनेक प्रजातियाँ जिनका अस्तित्व संकट में है अथवा जो विलुप्त होने के कगार पर हैं उनके लिये ये वन शरणस्थली का कार्य करते हैं। इन वनों में पौधों की सामुदायिक संरचना जटिल होती है। इन वनों में पौधों, जीव-जन्तुओं और पर्यावरण के पारस्परिक क्रियाओं से असंख्य सूक्ष्म आवासों (Micro habitat) का निर्माण होता है जिनमें विविध प्रकार के जीवधारी निवास करते हैं। मेघालय की जयन्तिया पहाड़ियों में स्थित पाँच छोटे-छोटे पवित्र वनों में लगभग 550 प्रकार के पुष्पी और अपुष्पी पौधों की प्रजातियाँ पाई गई हैं। इनमें शैवाल, कवक और ब्रायोफाइटा समूह के पौधे शामिल नहीं हैं। इनमें अनेक स्थानिक, दुर्लभ और संकटग्रस्त प्रजातियाँ भी हैं। इसके अतिरिक्त इनमें खाने योग्य और औषधीय महत्व की प्रजातियाँ भी पाई गई हैं जिनका प्रयोग यहाँ के निवासी विभिन्न रोगों के उपचार के लिये पीढ़ियों से करते आ रहे हैं। जैव विविधता के भण्डार के अतिरिक्त ये वन अनेक बहुमूल्य सेवायें प्रदान करते हैं जिनसे आस-पास के निवासी लाभान्वित

होते हैं। ये स्थानीय जलवायु के साथ-साथ जलचक्र को प्रभावित करते हैं। वर्षा जल के बहाव को कम करके उसका मिट्टी में अवशोषण बढ़ाते हैं जिसके कारण स्थानीय जल स्रोतो से वर्ष भर पानी उपलब्ध होता हैं। ये मिट्टी के क्षरण को कम करते हैं तथा इनके भीतर स्थित झरनों आदि से निकला जल आस-पास के खेतों की उर्वराशक्ति बढ़ाता है। इन वनों से स्थान का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोरम और दर्शनीय होता है अतः सौंदर्यपरक दृष्टि से मूल्यवान होते हैं। ऐसे स्थान शैक्षणिक कार्यों एवं इको-पर्यटन के लिये भी अत्यन्त उपयुक्त हैं।

**भारतवर्ष में पवित्र वनों कि स्थिति**

यह अत्यन्त दुख का विषय है कि प्रकृति संरक्षण की प्राचीन विश्व परंपरा धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही है जिसके फलस्वरूप जैव-विविधता बहुल ये वन नष्ट हो रहे हैं। यद्यपि अलग-अलग क्षेत्रों अथवा स्थानों में अलग-अलग कारक इन वनों के विघटन के लिये जिम्मेदार हैं, परन्तु सभी का किसी न किसी रूप में मनुष्य से संबध है। कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है :

1. आधुनिक शिक्षा ने सदियों से चली आ रही पवित्र वनों से जुड़ी मान्यताओं में विश्वास को कम किया है। इनसे जुड़ी मान्यताओं को अन्धविश्वास के रूप में देखा जाने लगा है।

2. प्रारम्भिक प्रकृति पूजा का स्वरूप धीरे-धीरे बदल गया। उसकी जगह मन्दिरों ने ले लिया। देश के कई भागों में जैसे-जैसे ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार होता गया उन स्थानों पर इन वनों के विघटन की प्रक्रिया तेज हो गई।

3. पिछले लगभग दो सौ वर्षों में व्यापारिक वानकी का काफी विकास हुआ है जिसके फलस्वरूप आदिवासियों का वनों पर से अधिकार समाप्त होने से अनेक स्थानों पर ये वन नष्ट हो गये। उनका स्थान विभिन्न प्रजातियों के बागानों (Plantation) ने ले लिया।

4. तेजी से विकसित होता हुआ शहरीकरण एवं उससे जुड़ी विकास की गतिविधियाँ भी कुछ हद तक इनके नष्ट होने में सहायक हुई हैं।

5. कुछ स्थानों पर इन वनों से सूखे पत्ते, सूखी लकड़ियाँ, औषधीय पौधे और धार्मिक कार्यों के लिए कुछ वृक्षों को काटने की अनुमति होती है। कहीं-कहीं जानवरों के चरने की अनुमति होती है जो इन वनों को क्षति पहुँचाते हैं।

6. कुछ राज्यों में भूमि सुधार लागू होने से इनकी संख्या कम हुई है अथवा उनका क्षेत्रफल छोटा हो गया है।

उपरोक्त कारणों से विघटित पवित्र वनों में अनेक स्थानों पर विजातीय (exotic) पौधों की प्रजातियाँ तेजी से फैलती हैं जिनके फलस्वरूप इन वनों में उपस्थित देशज प्रजातियाँ धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं। अंततः इन वनों की जैवविविधता का ह्रास हो रहा है जिसके लिये ये जाने जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि पीढ़ियों से संरक्षित इन प्राकृतिक धरोहरों की सुरक्षा की जाय। इस दिशा में वैज्ञानिकों का योगदान महत्वपूर्ण होगा यदि वे अपने शोधों द्वारा इस प्राचीन परंपरा को वैज्ञानिक आधार प्रदान करें और पवित्र वनों के संरक्षण में सहायक बनें।

## इसरो और टाटा मोटर्स लिमिटेड ने बनायी हाइड्रोजन से चलने वाली बस

इंडियन स्पेस रिसर्च ऑर्गनाइजेशन (इसरो) और टाटा मोटर्स लिमिटेड ने मिलकर देश में पहली बार हाइड्रोजन से चलने वाली बस विकसित की है। दोनों संस्थानों ने कई वर्षों की खोज के बाद यह बस बनाई है। इस बस का प्रदर्शन तमिलनाडु के महेंद्रगिरि स्थित इसरो के केंद्र लिक्विड प्रोपल्सन सिस्टम्स सेंटर में किया गया। इसके अधिकारियों के अनुसार यह सीएनजी से चलने वाली बस की तरह ही है। हाई प्रेशर में भी हाइड्रोजन की सिलेंडर बस की छत पर होती है। इससे किसी तरह का प्रदूषण नहीं होता। हाइड्रोजन सेल क्रायोजेनिक टेक्नॉलजी का एक सह-उत्पाद है जिसे इसरो पिछले कई सालों से विकसित कर रही है। उनके अधिकारियों के अनुसार यह पूरी तरह से क्रायोजनिक टेक्नॉलजी नहीं है। यह लिक्विड हाइड्रोजन हैंडलिंग है जिसमें इसरों को विशेषज्ञता हासिल है। इसरो और टाटा मोटर्स ने हाइड्रोजन से चलने वाली बस के विकास के लिए सन् 2006 में समझौता किया था। इस आविष्कार से जनता में एक नया उत्साह देखने को मिल रहा है और आशा की जा रही है कि पेट्रोल और डीजल से जल्द ही छुटकारा पाया जा सकेगा। परन्तु हाइड्रोजन महँगी है इसे सस्ता करने की दिशा में और शोध किये जाने चाहिए।

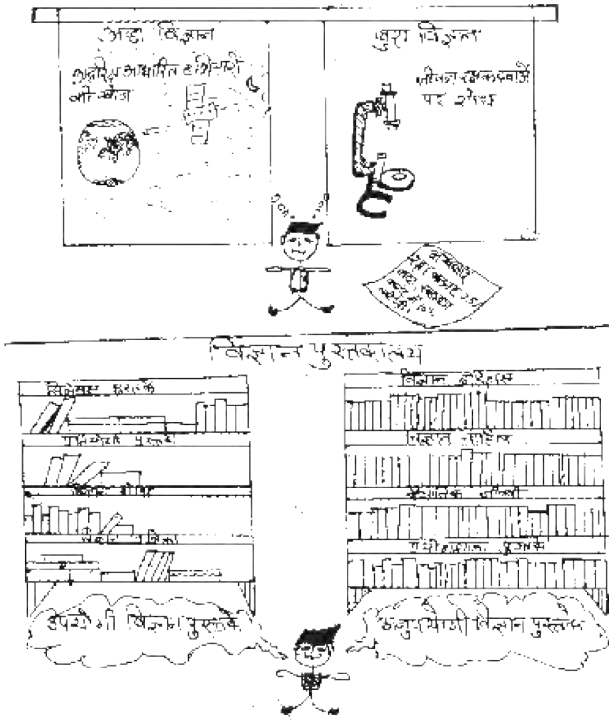

**सौरभ मिश्रा,** बी.एस.सी. (प्रथम वर्ष), विज्ञान संकाय, का.हि.वि.वि.

# परखनली शिशु : आधुनिक विश्वामित्रों का चमत्कार

शुकदेव प्रसाद *

परखनली शिशु (Test Tube Baby) नाम्नी संबोधन एक भ्रांत धारणा है क्योंकि परखनली शिशु का जन्म परखनली से नहीं होता। गर्भधारण का काम तो माँ ही कर सकती है। ऐसा गर्भधारण (Conception) एक काँच की प्लेट में संपन्न होता है। अतः इसे आई.वी.एफ. (In Vitro Fertilization) कहना अधिक युक्तिसंगत है। लैटिन भाषा में काँच को 'विट्रो' कहा जाता है।

इस विधि में गर्भधारण में अक्षम किसी भी स्त्री की अंड कोशिका/डिंब को निकालकर, उसके शरीर से बाहर शुक्राणु द्वारा निषेचित किया जाता है और फिर उसे गर्भाशय में आरोपित कर दिया जाता है। आई.वी.एफ. तकनीक उन्हीं महिलाओं में प्रयुक्त की जाती है जिनकी डिंबवाही नलिका (Fallopian Tube) बंद हो लेकिन उनका गर्भाशय स्वस्थ अर्थात् गर्भधारण के योग्य हो।

25 जुलाई, 1978 को लंदन के ओल्डहैम जनरल हास्पिटल में 32 वर्षीय महिला लेसली ब्राउन ने लुइसी जाय ब्राउन नामक एक कन्या को जन्म दिया जिसे विश्व की प्रथम परखनली शिशु होने का श्रेय प्राप्त है। प्रथम परखनली शिशु लुइसी की माँ श्रीमती लेसली ब्राउन प्राकृतिक तरीके से गर्भधारण में अक्षम थीं क्योंकि उनकी फैलोपियन ट्यूब बंद थी। फलतः उनका गर्भधारण पेट्री डिश में कराया गया। तीन दिनों के बाद भ्रूण को उसकी माँ की कोख में स्थापित कर दिया गया जहाँ सामान्य बच्चों की तरह भ्रूणावस्था की शेष अवधि उसने बिताए और गर्भावधि पूरी होने पर सामान्य बच्चों की तरह लुइसी ने बाहर की दुनिया देखी।

मानव प्रजाति में गर्भधारण की सामान्य प्रक्रिया यह है कि हर महीने मासिक धर्म चक्र (Menstrual Cycle) के 8-18 दिनों के उपरांत स्त्री की दोनों डिंबग्रंथियों में से किसी एक डिंबग्रंथि से परिपक्व डिंब/अंड डिंबवाही नलिका में आ जाता है और डिंबवाही नलिका के ऊपरी सिरे पर पुरुष के शुक्राणु से निषेचित होता है। यह सच है कि एक स्वस्थ पुरुष के वीर्य में 20-40 करोड़ तक शुक्राणु होते हैं लेकिन डिंब का भेदन करने में एक ही शुक्राणु सफल हो पाता है। हफ्ते-दस दिन के भीतर निषेचित डिंब सरक कर अपने को गर्भाशय में आरोपित कर लेता है। निषेचित डिंब यानी जाइगोट में विभाजन से भ्रूण विकसित होता है जो प्रायः 9 महीने में माँ के गर्भ में पूर्ण विकसित शिशु का रूप ले लेता है।

ऐसा भी हो सकता है कि किसी स्त्री की डिंबवाही नलिका अवरुद्ध हो तो वह गर्भधारण में अक्षम होगी। ऐसी ही स्थिति का विकल्प है परखनली शिशु। श्रीमती लेसली ब्राउन की स्थिति भी ऐसी ही थी। प्रजनन विज्ञानी डॉ0 पैट्रिक स्टेप्टो और डॉ0 राबर्ट एडवर्ड्स ने आधुनिक विश्वामित्रों की भूमिका का निर्वहन किया। उन्होंने श्रीमती ब्राउन के परिपक्व डिंब को सुई की मदद से बाहर निकाल लिया और एक पेट्रीडिश में उनके पति गिल्वर्ट जॉन ब्राउन के शुक्राणु से निषेचित कराने में सफलता प्राप्त की। निषेचित अंड को 8 कोशिकीय स्तर तक पेट्रीडिश में रखने के बाद उसे श्रीमती ब्राउन के गर्भाशय में स्थांतरित कर दिया गया जहाँ वह सामान्य भ्रूण की तरह विकसित होता रहा और 25 जुलाई, 1978 की रात ऑपरेशन द्वारा दुनिया की प्रथम परखनली शिशु लुइसी ब्राउन ने अपनी आँखें खोलीं। इस प्रकार एडवर्ड्स और स्टेप्टो ने आल्डुअस हक्सले की विज्ञान फंतासी (ब्रेव न्यू वर्ल्ड, 1932) को जीवंत आयाम देकर चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में एक नया अध्याय लिखा। एक अदभुत आख्यान। मातृत्व सुख से वंचित महिलाओं के लिए वरदान!

पैट्रिक स्टेप्टो

इस प्रविधि के आविष्कार और सफलता के बाद लाखों की संख्या में परखनली शिशु वजूद में आ चुके हैं। लुइसी स्वयं सुखद और सामान्य जीवन जी रही है। बहुत सी ऐसी भी औरतें हैं जिन्हें 9 महीने अपनी कोख में बच्चे को पालना नागवार लग सकता है तो वे किराए की कोख ले सकती हैं। दूसरी स्त्री के भ्रूण को अपनी कोख में पालने वाली माँ को प्रतिनिधि माँ, धाय माँ (Surrogate mother) की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

परखनली शिशुओं के बारे में आरंभिक अवस्था में बहुत से प्रश्न उठाये गए थे लेकिन समय के साथ वे अब ठंडे पड़ गए हैं और इस प्रविधि को जैव प्रौद्योगिकी की एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में सामाजिक स्वीकृति मिल चुकी है और यह चिकित्सा अब आम चलन में आ गयी है।

स्टेप्पटो और एडवर्ड्स इस दिशा में 1950 के दशक से ही अनुसंधानरत थे। 1968 में उन्हें शरीर के बाहर अंड कोशिका (egg cell) को निषेचित करने में सफलता मिली लेकिन उन्हें चर्चों, सरकारों और मीडिया का कोपभाजन बनना पड़ा, साथी वैज्ञानिकों ने भी अविश्वास जाताया। फिर भी उनका संधान जारी रहा। 1972 में बांझ महिलाओं में शरीर से बाहर निषेचित अंड कोशिका का प्रत्यारोपण किया गया लेकिन ऐसे सैकड़ों प्रयासों के बाद भी असफलता ही मिली। अचिर में ही सभी

*135/27-सी, छोटा बघाड़ा (एनी बेसेंट स्कूल के पीछे), इलाहाबाद – 211 002.

भ्रूणों का गर्भपात हो गया। अंततः प्रायः 3 दशकों के बाद 1978 में उनकी मेहनत रंग लायी और संसार की प्रथम टेस्ट ट्यूब बेबी दुनिया में आयी। खोजियों ने अपार यश अर्जित किया।

आरंभ में इस खोज को लेकर कुछ भ्रांतियाँ थीं और सामाजिक उपेक्षा का भाव भी, जन-मानस ने खोजियों की सराहना नहीं की लेकिन समय के साथ सब कुछ तिरोहित हो चला है। यह तकनीक संतान सुख से वंचित करोड़ों दम्पतियों के लिए वरदान बन चुकी है। यह भी सिद्ध हो चला है कि परखनली शिशु भी आम बच्चों की तरह सामान्य जीवन-यापन करते हैं। स्वयं लुइसी अब 34 साल की हो चली है और उसका एक बेटा भी है। बहरहाल, इस तकनीक ने दुनिया भरके दस फीसदी से अधिक निःसंतान दंपतियों का दामन खुशियों से भर दिया है। 1978 से लेकर आज तक प्रायः 40 लाख बच्चे इस तकनीक से जन्म ले चुके हैं।

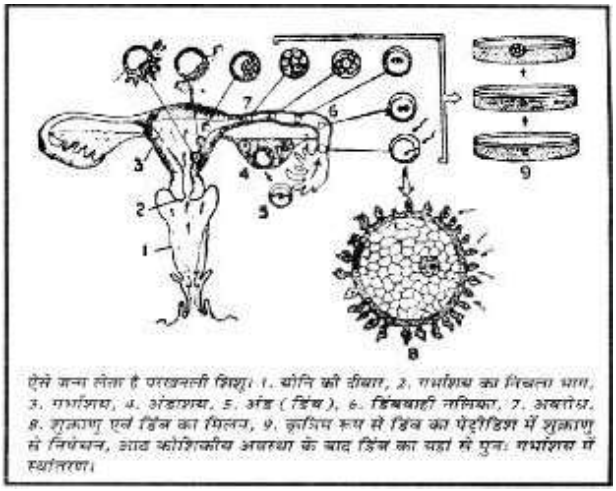

ऐसे जन्मा लेता है परखनली शिशु। 1. योनि की दीवार, 2. गर्भाशय का निचला भाग, 3. गर्भाशय, 4. अंडाशय, 5. अंड (डिंब), 6. डिंबवाही नलिका, 7. अवरोध, 8. शुक्राणु एवं डिंब का मिलन, 9. कृत्रिम रूप से डिंब का पेट्रीडिश में शुक्राणु से निषेचन, आठ कोशिकीय अवस्था के बाद डिंब का यहां से पुनः गर्भाशय में स्थानांतरण।

इस तकनीक का विकास करने वाली ब्रिटिश प्रजनन विज्ञानी डॉ0 पैट्रिक स्टेप्टो का निधन हो चुका है। नोबेल प्रतिष्ठान की अघोषित आचार संहिता में दिवंगत प्रतिभाओं के समादर की व्यवस्था नहीं है। कदाचित इसीलिए नोबेल फाउंडेशन ने पैट्रिक स्टेप्टो का उल्लेख भी करना आवश्यक नहीं समझा, यद्यपि ऐसा करना चाहिए था।

बहरहाल, कैंब्रिज विश्व-विद्यालय के प्राध्यापक एडवर्ड्स (85) को इस चमत्कारिक खोज के लिए वर्ष 2010 का चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पारितोषिक दिया गया। चिकित्सा विज्ञान के इतिहास का एक अपूर्व आख्यान!।

अस्वस्थ होने के कारण एडवर्ड्स नोबेल पुरस्कार लेने स्टॉकहोम तो नहीं जा सके, अलबत्ता उनकी पत्नी रूथ ने यह सम्मान ग्रहण किया। वह लंबे अरसे से बीमार थे, खेद है कि वह अब हमारे बीच नहीं रहे। 10 अप्रैल, 2013 को 87 वर्ष की वय में डॉ0 एडवर्ड्स का लंदन में निधन हो गया।

दुनिया की प्रथम परखनली शिशु लुइसी ब्राउन ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए अपने उदगार कुछ इस तरह व्यक्त किये- 'मैंने हमेशा राबर्ट एडवर्ड्स को अपने दादा की तरह माना। उन्होंने जो काम किया, उससे दुनिया भर में लाखों लोगों की जिंदगी में खुशियाँ आईं। मुझे इस बात की खुशी है कि वह इतने लंबे अरसे तक हमारे बीच रहे कि अपने काम को नोबेल की मान्यता मिलते देख सके। दुनिया भर में आईवीएफ पर हो रहे काम के साथ उनकी विरासत आगे बढ़ती रहेगी।'

## उपेक्षा और प्रताड़ना के शिकार भारतीय खोजी को करनी पड़ी खुदकुशी

राबर्ट जी. एड्वर्ड्स

ब्रिटिश जीव विज्ञानी राबर्ट जी. एड्वर्ड्स (Robert G. Edwards) और उनके सहयोगी स्त्री रोग विशेषज्ञ पैट्रिक स्टेप्टो (Patrick steptope) 1950 के दशक से ही शरीर से बाहर कृत्रिम निषेचन की दिशा में चेष्टारत थे, जिसमें स्त्री की अंडकोशिका को सुरक्षित ढंग से निकालकर उसे निषेचित करने के पश्चात उसके गर्भाशय में भ्रूण को रोपित कर दिया जाय। एक सुदीर्घ अवधि के बाद उन्हें इसमें सफलता मिली जिसकी फलश्रुति थी संसार की प्रथम टेस्ट ट्यूब बेबी लुइसी।

यद्यपि इन प्रजनन विज्ञानियों को सराहना तो नहीं मिली, अपितु इन्हें सामाजिक वहिष्कार और प्रताड़ना का शिकार अवश्य होना पड़ा। देर-सबेर ही सही, इनकी खोज को जन स्वीकृति मिली। एड्वर्ड्स 'नोबेल' की बुलंदियों तक पहुँचे, अलबत्ता उनके सहयोगी स्टेप्टो अरसा पहले (1988) दिवंगत हो चुके थे।

इस तस्वीर का दूसरा पहलू अत्यंत कारुणिक और त्रासदपूर्ण है। जिस वर्ष (1978) संसार की प्रथम टेस्ट ट्यूब बेबी लुइसी जन्मी, उसी वर्ष संसार की दूसरी ओर भारत की पहली टेस्ट ट्यूब बेबी दुर्गा (कनुप्रिया अग्रवाल) कलकत्ता में जन्मी। हाँ, उसका जन्म लुइसी के जन्म के 67 दिनों बाद हुआ था। लेकिन भारत की पहली टेस्ट ट्यूब बेबी के जनक डॉ0 सुभाष मुखर्जी को मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया। उन्हें इस दिशा में अनुसंधान करने से मना किया गया। इतना ही नहीं, अपने कार्यों की विवृत्ति भी वह प्रकाशित नहीं कर सके। उन्हें रोका गया था।

उस समय मुखर्जी पश्चिम बंगाल सरकार के बी.एस. मेडिकल कॉलेज में कार्यिकी के प्रोफेसर थे। उनके शोध के सहयोगी थे- जादवपुर विश्वविद्यालय के सुनीत मुखर्जी और कलकत्ता मेडिकल कॉलेज के सरोज कांति भट्टाचार्या।

डॉ0 मुखर्जी ने एड्वर्ड्स द्वारा अपनायी गयी तकनीक से थोड़ी भिन्न पद्धति अपनायी। यहाँ यह जानना दिलचस्प है कि एड्वर्ड्स और मुखर्जी दोनों ने ही एडिनबर्ग विश्वविद्यालय से डाक्टोरेट की उपाधियाँ अर्जित की थी।

एक लंबी जद्दोजहद के बाद डॉ0 मुखर्जी को इसका श्रेय मिला भी लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी। उन्हें उनके कार्यों का श्रेय 8 वर्ष बाद मिला लेकिन तब जब वे दुनिया में नहीं रहे।

**- शुकदेव**

# टिकाऊ खेती के लिए पर्यावरण हितैषी पोषक तत्व

अनुराग कुमार सिंह[1], संजीव कुमार[2] एवं प्रो0 राणा प्रताप सिंह[3] *

भारत दुनिया के भौगोलिक क्षेत्र का मात्र 2.5 प्रतिशत है, परन्तु विश्व की 17 प्रतिशत जनसंख्या यहाँ निवास करती है। भारत की जनसंख्या 1951 में 36 करोड़ थी, जो 2010 में बढ़कर 121 करोड़ हो गयी। लगभग 60 वर्षों में देश की जनसंख्या में करीब 300 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी है। भारत को 2020 तक लगभग 300 लाख टन खाद्यान्न की आवश्यकता है, जो वर्ष 2010-11 में महज 234 लाख टन थी।

उर्वरक देश की खाद्य सुरक्षा के लिए अति महत्वपूर्ण हैं। अधिक उपज वाली किस्मों, रासायनिक उर्वरकों तथा सिंचाई के साधनों के विकास के चलते भारतीय कृषि में हरित क्रान्ति का दौर आया। उर्वरकों का खाद्यान्न के उत्पादन में लगभग 50 प्रतिशत योगदान माना जाता है। इसी कारण उर्वरकों की खपत 1965-66 में 0.785 मिलियन टन से बढ़ कर वर्ष 2010-11 में 28.1 मिलियन टन हो गयी है।

रासायनिक उर्वरकों के अन्धाधुंध प्रयोग का नकारात्मक प्रभाव दीर्घकालीन तथा टिकाऊ कृषि उत्पादन पर तो पड़ता ही है, यह जलवायु परिवर्तन जैसे-गर्मी, ठंड, वर्षा, बाढ़ तथा सूखा पर भी प्रभाव डालता है। पानी और रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग के कारण मिट्टी में जल धारण शक्ति कम हो जाती है, मिट्टी में लवणता का निर्माण हो जाता है, और अन्य पोषक तत्वों एवं कार्बनिक तत्वों की कमी हो जाती है। इससे कृषि उत्पादन की स्थिरता में गिरावट और पर्यावरण प्रदूषण जैसे- वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा मिट्टी के प्रदूषण में वृद्धि हो रही है। इसके समाधान के लिए जैव उर्वरक, कार्बनिक खेती, पारिस्थितिकीय खेती तथा समन्वित कृषि प्रबंधन (इन्टिग्रेटेड एग्रो मैनेजमेंट) जैसे तरीके अपनाने की कोशिश की जा रही है। परन्तु, इन वैकल्पिक तरीकों की अपनी सीमाएँ हैं, और इनसे जुड़े तमाम पहलुओं पर विभिन्न तरीकों के अनुसंधान की आवश्यकता है।

### रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से होने वाली क्षति

1. अधिकांश नत्रजन आधारित रासायनिक उर्वरक पानी में घुलनशील होते हैं, जिसके कारण इनका एक तिहाई भाग पौधों को प्राप्त नहीं हो पाता तथा रिसाव (लीचिंग) द्वारा मिट्टी में नीचे चला जाता है। इन उर्वरकों का मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में कोई योगदान नहीं है।
2. उर्वरकों का एक बड़ा हिस्सा जल बहाव के साथ बह कर पानी के स्रोतों में चला जाता है, जिससे पानी का प्रदूषण होता है, और इसकी जैव विविधता नष्ट होती है।
3. रासायनिक उर्वरकों का एक बड़ा हिस्सा वाष्पीकरण के कारण वातावरण में अमोनिया या नाइट्रस ऑक्साइड गैसों के रूप में विसरित होता रहता है, जिससे ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा और प्रभाव बढ़ जाता है। इन गैसों के बढ़ने से पृथ्वी पर उष्मीकरण हो रहा है।
4. अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करने पर यह फसलों को झुलसा देता है तथा ये उर्वरक जमीन पर कठोर परत का निर्माण करते हैं जिसके कारण मिट्टी में धूप तथा वायु का संचार अवरोधित हो जाता है, एवं पौधे कमजोर हो जाते हैं, जिस कारण उत्पादन भी कम हो जाता है।

### जैविक खेती तथा जैव-उर्वरक

जैविक खाद उत्पादों की वैश्विक माँग बहुत तीव्र गति से बढ़ रही है। जब से पर्यावरणविदों ने खेती में रसायनों के बढ़ते उपयोग के हानिकारक प्रभावों के बारे में चिंता व्यक्त करना शुरू किया है, उपभोक्ता सचेत और खाद उत्पादों के बारे में चयनात्मक हो रहे हैं। दुनिया में जैविक खाद्य उद्योग 15 प्रतिशत की दर के साथ मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन तथा जापान आदि देशों को मिलाकर 40 अरब डालर तक पहुँच रहा है।

इस माँग की पूर्ति के लिए कम्पनियाँ किसानों को उनके फसल की कीमत प्रदान करने के साथ-साथ उनसे अनुबंध कर रही हैं। विश्व भर में लगभग 3.5 करोड़ हेक्टेयर भूमि को जैविक खेती हेतु चिह्नित किया गया है तथा उचित फसल चक्र, वर्मीकम्पोस्ट, काऊ पैट पीट (सी.पी.पी.), नादेप कम्पोस्ट, जैविक कीट नियंत्रण, समन्वित खेती (इन्टिग्रेटेड फार्मिंग) तथा जैव-उर्वरकों द्वारा जैविक खेती को प्रोत्साहित करने हेतु फसल उत्पादन बढ़ाने पर जो दिया जा रहा है।

जैविक खेती कृषि का ही एक प्रकार है जिसमें रासायनिक उर्वरकों, रासायनिक कीटनाशकों एवं पौध वृद्धि नियमों (प्लांट ग्रोथ प्रमोटर्स) का प्रयोग वर्जित है। इस प्रकार की खेती में विभिन्न प्रकार के कम्पोस्ट, गोबर की खाद, अन्य कार्बनिक खाद तथा जैव-उर्वरकों का प्रयोग करके उत्पादन बढ़ाया जाता है।

### जैविक खेती के निहितार्थ

अन्तर्राष्ट्रीय महासंघ-जैविक कृषि आन्दोलन (IFOAM) के निम्नलिखित निहितार्थ हैं :

1. पर्याप्त मात्रा में उच्च गुणवत्ता का भोजन उपलब्ध कराना।
2. प्राकृतिक प्रणाली (नेचुरल सिस्टम) तथा प्राकृतिक चक्र के भीतर काम करना।

*[1]शोध सहायक, [2]शोध छात्र एवं [3]आचार्य, पर्यावरण विज्ञान विभाग, बाबा साहेब भीमराव अम्बडेकर विश्वविद्यालय, लखनऊ - 226 025.

3. सूक्ष्मजीवों, मिट्टी के वनस्पतियों एवं जीवों, पेड़ों तथा जानवरों को शामिल करके जैविक चक्र में वृद्धि को प्रोत्साहित करना।
4. प्राकृतिक संसाधनों के लगातार उपयोग को बढ़ावा देना।
5. मिट्टी की उर्वरा शक्ति को लंबी अवधि तक सुरक्षित रखना।

**पारिस्थितिक कृषि ( इकोलाजिकल फार्मिंग )**

पारिस्थितिक कृषि का लक्ष्य खाद्य पदार्थों के उत्पादन के साथ-साथ मिट्टी के स्वास्थ्य का बचाव, जल एवं जलवायु, जैव विविधता को बढ़ावा देना तथा रासायनिक निवेश (कैमिकल इनपुट) या आनुवांशिक अभियांत्रिकी आदि क्रियाओं द्वारा पर्यावरण को दूषित न करना है।

पारिस्थितिक कृषि में आमतौर पर पशुओं, फसलों और विधियों की विविधता शामिल है। इसके प्रबंधन तकनीकों में कवर फसल (कवर क्रापस) मल्चींग, जैविक खाद, फसल चक्र, हरी खाद तथा पशुओं से प्राप्त कचरे अथवा गोबर आदि का उपयोग शामिल है।

पारिस्थितिक कृषि के सिद्धान्त निम्नलिखित है :

1. कृषि प्रणाली में जैव विविधता तथा आस-पास का वातावरण प्रदूषणमुक्त बनाये रखना।
2. ऐसे बीजों तथा पौधों का संरक्षण करना जो स्थानीय वातावरण के अनुकूल हों।
3. जहाँ तक संभव हो, लगातार कार्बनिक पदार्थ डालकर मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ तथा जैविक गतिविधियाँ लम्बे समय के लिए बनाये रखना।
4. उत्पादकता में वृद्धि के लिए कृषि पारिस्थितिकी खेती के विभिन्न घटकों जैसे- जल संरक्षण, नत्रजन स्थिरीकरण, खनिज चक्र, मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ का गठन तथा अधिक अनुकूलित पोषक तत्वों का परिरक्षण आदि को मजबूती प्रदान करना।
5. पशुओं के स्वास्थ्य एवं व्यवहार पर ध्यान देना।
6. विकास तथा लंबी सामाजिक और पारिस्थितिक प्रभाव के लिए विचार के साथ-साथ नवीन प्रौद्योगिकियों का प्रयोग करना।

**जैव-उर्वरक**

जैव उर्वरकों को मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए तथा टिकाऊ खेती में फसल उत्पादन हेतु रासायनिक उर्वरकों के विकल्प के रूप में माना जाता है। ये जीवित कोशिकायुक्त सूक्ष्मजीव हैं, जिनमें महत्वपूर्ण पोषक तत्वों को जैविक प्रक्रियाओं द्वारा अनुपलब्ध रूप से उपलब्ध रूप में परिवर्तित करने तथा पर्यावरणीय रूप से बेहतर पोषक तत्वों द्वारा फसल उत्पादन बढ़ाने की क्षमता रखते हैं।

**जैव-उर्वरकों के प्रयोग के तरीके**

1. जैव उर्वरकों को ठंडे तथा सूखे स्थान पर रखना चाहिए जहाँ सीधे धूप और गर्मी से बचाव हो सके।
2. उपयुक्त फसलों के लिए उपयुक्त जैव-उर्वरकों का चयन करना आवश्यक है, अन्यथा फसलों पर इनका विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।
3. रसायनों को जैव-उर्वरकों के साथ प्रयोग नहीं करना चाहिए।
4. ये जीवित सूक्ष्मजीव उत्पाद हैं, अतः इसके भण्डारण व देखभाल की

**जैव उर्वरकों को उनके कार्य एवं प्रकृति के आधार पर निम्न समूहों में वर्गीकृत किया गया है :**

| क्र.सं. | समूह | उदाहरण |
|---|---|---|
| 1 | नत्रजन स्थिरिकारक | |
| अ | स्वतंत्र जीवीय | *एजेटोबैक्टर, एनाबीना, नास्टाक* |
| ब | सहजीवी | *राइजोबियम, एनाबीना, एजोला* |
| स | साहचर्य सहजीव | *एजोस्पाइरुलम* |
| 2 | फास्फेट घोलक | |
| अ | जीवाणु | *बैसिलस सबटायलीस, स्यूडोमोनास,* |
| ब | कवक | *फास्फेटिकम पेनीसिलियम, एस्परजिलस* |
| 3 | जिंक घोलक जीवाणु | *स्यूडोमोनास प्रजाति, बैसिलस* प्रजाति |
| 4 | पौध वृद्धि काराक रोम जीवाणु | *स्यूडोमोनास क्लोरिसेंस* |

**जैव उर्वरक तथा उपयुक्त फसलें**

| क्रं.सं. | जैव उर्वरक | लाभार्थी फसलें |
|---|---|---|
| 1 | *राइजोबियम* | मूँगफली, सोयाबीन, मटर, अरहर इत्यादि |
| 2 | *एजेटोबैक्टर* | सब्जियाँ, चावल, गेहूँ, सरसो, बाजरा इत्यादि |
| 3 | *एजोस्पाइरुलम* | गन्ना, सब्जियाँ, मक्का, गेहूँ, चावल एवं फल-फूल |
| 4 | *एजोला* | चावल |
| 5 | फास्फेट-घोलक सूक्ष्मजीव | सभी फसलों के लिए |
| 6 | जिंक घोलक सूक्ष्मजीव | धान, गेहूँ, मक्का, गन्ना इत्यादि |
| 7 | नील-हरित शैवाल | चावल |

**जैव-उर्वरकों के प्रकार**

**1. नत्रजन स्थिरीकारक जैव-उर्वरक**

***एजेटोबैक्टर –*** यह एक वायुजीवी मुक्त पाया जाने वाला तथा प्रकृति से परपोषी होता है। *एजेटोबैक्टर* तटीय तथा क्षारीय मिट्टी में पाया जाता है। *एजेटोबैक्टर क्रोकम, ए0 बाइलेण्डी, ए0 बीजेरीनीली, ए0 इनसाइन* तथा *ए0 मैकोसाइजिंस* आदि प्रजातियाँ मिट्टी में अत्यधिक मात्रा में पायी जाती हैं। *एजेटोबैक्टर* जैविक रूप से सक्रिय वृद्धिकारक तत्वों

जैसे विटामिन्स समूह, इण्डोल एसिटिक एसिड तथा जिबरेलीन इत्यादि का कृत्रिम रूप से उत्पादन भी करता है।

इन जीवाणुओं को *राइजोबियम* फलियों तथा अन्य फसलों जैसे चावल, मक्का, गन्ना, बाजरा, सब्जियों इत्यादि में भी नत्रजन स्थिरीकारक के रूप में चिह्नित किया गया है।

***एजोस्पाइरुलम*** – यह एक प्रकार का नत्रजन स्थिरीकारक जैव-उर्वरक है जो सभी पौधों के लिए एक प्रमुख पोषक तत्व है। *एजोस्पाइरुलम लाइपोफेरम* एक बहुत ही उपयोगी जीवाणु है जो मिट्टी तथा पौधों की जड़ में पाया जाता है तथा स्वभाव से साहचर्य सहजीवी प्रकार का होता है।

**प्रयोगशाला में संवर्धित विभिन्न प्रकार के जैव-उर्वरक**

यह जीवाणु पौधों के विकास में सहयोग करने वाले तत्वों जैसे इण्डोल एसिटिक एसिड, जिबरेलीन, पेन्टोथिनिक एसिड, थायामीन तथा नियासिन पैदा करता है तथा जड़ प्रसार को बढ़ाता है। इससे उत्पादन में वृद्धि होती है व जड़ों के निचले भाग का घनत्व तथा शाखाओं की वृद्धि में सहयोग देता है, जिसके कारण खनिजों तथा पानी का अवशोषण तीव्र गति से होने लगता है तथा पौधा स्वस्थ्य बना रहता है।

इनका उपयोग मोटे अनाज, तिलहन, फल एवं सब्जियों, गन्ना, केला, नारियल, कपास, मिर्च, कॉफी तथा चाय, सुपारी, नींबू, मसाले आदि फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए किया जाता है।

***राइजोबियम–*** यह जीवाणु मिट्टी में स्वतंत्र रूप में निवास करता है, तथा वायुमण्डलीय नत्रजन को अवशोषित कर पौधों के जड़ों को प्रदान कराता है जिससे पौधों के विकास में सहायता मिलती है। यह जीवाणु नत्रजन की सबसे अधिक मात्रा उपलब्ध कराने के साथ-साथ सबसे कुशल जैव-उर्वरक भी है। इनका प्रयोग गैर-फलीदार (नॉन-लेग्यूमिनस) जैसे- चावल, गेहूँ, मक्का, जौ, बाजरा एवं अन्य अनाज प्रदान करने वाले पौधों इण्टोफिटिक संघ बनाने तथा फसल की उपज बढ़ाने में किया जाता है।

### 2. फास्फेट घोलक जैव उर्वरक

इस समूह में वे जीवाणु, कवक इत्यादि आते हैं जो अघुलनशील अकार्बनिक फॉस्फेट जो पौधों के लिए सुलभ रूप में बदल देते हैं जिससे इन पोषक तत्वों को पौधे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। ये सूक्ष्मजीव निम्न हैं, जैसे- *स्यूडोमोनास, माइक्रोकोकस, बैसीलस, ज्यूजेरियम* इत्यादि।

### 3. जिंक घोलक जैव उर्वरक

फास्फेट घोलक के रूप में *बेसिलान मागाटोसिम, स्यूडोमोनास स्टाइटा* व फॉस्फेट त्वरण कारक रोम जीवाणुओं को जैव-उर्वरकों के रूप में स्वीकार किया गया है। *बेसिलस सबपग्लस, थायोबेसीलस थायोआम्सीडॉस* व *सैक्रोमाइसीज* की जातियाँ जिंक को घुलनशील अवस्था में बदल देते हैं और पौधों को पोषक तत्व प्रदान कराते हैं। ये जैव-उर्वरक के रूप में प्रयोग किये जाते हैं जो जिंक जैसे सूक्ष्म तत्व प्रदान कराते हैं।

### जैव उर्वरकों की सीमाएँ

जैव उर्वरकों के उत्पादन, भंडारण और वितरण के लिए राज्य संस्थानों तथा निजी संस्थानों का कोई बड़ा समर्पित एवं प्रभावी नेटवर्क नहीं है। छोटे स्तर के प्रयास सफल नहीं हो पा रहे हैं, क्योंकि इस संबंध में किसानों में जागरूकता तथा तकनीकी जानकारियों का अभाव है। कुछ संस्थाएँ इसके प्रसार पर काम कर रही हैं, परन्तु विशाल कृषि ढ़ाँचे के हिसाब से ये प्रयास अत्यन्त कम हैं।

हमने अपने अध्ययन में पाया है कि जैव उर्वरकों की निर्धारित मात्रा विभिन्न क्षेत्रों में मौसम और क्षेत्र के हिसाब से नहीं हैं, इसलिए इनका उचित प्रभाव हासिल नहीं हो पा रहा है जिस मात्रा में, और जिन तरीकों से इनका उपयोग किया जाता है। उससे इनकी पोषक क्षमता रासायनिक खादों से बहुत कम होती है। इस कारण किसान इनके उपयोग पर निर्भर न होकर, रासायनिक खादों पर निर्भर रहते हैं। इस क्षेत्र में पर्याप्त ढ़ाँचे, शोध, तकनीकीकरण और प्रसार की आवश्यकता है ताकि इन्हें रासायनिक खादों का विकल्प बनाया जा सके।

बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के फिल्ड लेबोरेटरी में रासायनिक उर्वरकों के सापेक्ष गेहूँ, धान, मूँग, सरसों, तिल, मिर्च, लहसुन आदि फसलों की उपज बढ़ाने हेतु जैव-उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी तथा कम्पोस्ट के साथ मुक्त तथा बढ़े दाने (ग्रेन्यूल्स) के रूप में किया जा रहा है। यह देखा गया है कि जैव-उर्वरकों की मात्रा को बढ़ाकर और इसे कार्बनिक तत्वों से बने बड़े दाने में बाँधकर फसलों की उपज बढ़ायी जा सकती है। यह तकनीक रासायनिक खादों का विकल्प बन सकती है।

### कार्बनिक खाद

कार्बनिक खाद वे प्राकृतिक उत्पाद हैं जिनका प्रयोग किसान खेती में फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए करते हैं। इनमें हरी खाद, फसलों के अवशेष, अन्य कृषि अपशिष्ट, पशु अपशिष्ट, वर्मीकम्पोस्ट (केचुआ खाद), जानवरों की हड्डियों आदि का इस्तेमाल किया जाता है।

कार्बनिक खाद को निम्न प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं :

**1. वर्मीकम्पोस्ट ( केचुआ खाद ) –** यह केचुओं की गतिविधि द्वारा उत्पादित जैविक खाद है। वर्मीकम्पोस्ट सूक्ष्म एवं स्थूल पोषक तत्वों विटामिन्स, वृद्धि हारमोन्स तथा गतिहीन सूक्ष्म वनस्पतियों से परिपूर्ण होता है। खाद में N, P, S, K, Be, Zn इत्यादि तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जिससे पौधों की वृद्धि तथा फसल उपज को बढ़ाया जाता है।

इस प्रकार की खाद बनाने के लिए केचुएँ की विभिन्न प्रजातियों का इस्तेमाल होता है जिनमें से *इड्रूलस यूजिनि, इसोनिया फोइटीडा, ल्यूम्ब्रीकस* मुख्य हैं।

**2. कृषि उत्पादों से बनी खाद ( फार्म यार्ड खाद ) –** यह खाद कूड़े के साथ गोबर तथा जानवरों के मूत्र को चारे की सामग्री के साथ सड़ाकर (डि-कम्पोज) बनाया जाता है। इस प्रकार की खाद के उपयोग से पौधों को नत्रजन, पोटाश व फास्फोरस की मात्रा उपलब्ध हो जाती है तथा फसल की उपज अच्छी हो जाती है।

फार्म यार्ड खाद का प्रयोग करने से फसलों की उपज पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। दूसरा प्रयोग सब्जियों जैसे-आलू, टमाटर, गाजर, प्याज इत्यादि के साथ-साथ गन्ना, चावल, फलों आदि के उत्पाद के लिए किया जाता है।

**3. मुर्गी खाद ( पोल्ट्री खाद ) –** मुर्गियों का मल-मूत्र तीव्र गति से सड़ता है तथा इसमें नत्रजन की प्रचुर मात्रा पायी जाती है। पोल्ट्री खाद में नत्रजन तथा फास्फोरस की उपलब्धता अन्य कार्बनिक खादों की तुलना में अधिक होती है जिससे पौधों की वृद्धि अच्छी हो जाती है।

**4. भेड़ तथा बकरी से प्राप्त खाद –** भेंड़ तथा बकरी के मल-मूत्र में पोषक तत्वों की मात्रा कम्पोस्ट तथा कृषि उत्पादित खाद की तुलना में अधिक पायी जाती है। इनके मल-मूत्र को गड्ढ़े में डाल कर मिट्टी से ढ़क कर अपघटित किया जाता है, तथा अपघटन के पश्चात् इसे खेत में प्रयोग किया जाता है।

**5. भारी कार्बनिक खाद –** इस प्रकार की खाद में पोषक तत्वों की मात्रा बहुत कम पायी जाती है। अतः इनका प्रयोग अधिक मात्रा में करना पड़ता है। इनके प्रयोग के निम्न लाभ हैं :

1. यह पौधों को पोषक तत्व तथा सूक्ष्म पोषकतत्व दोनों की आपूर्ति करता है।
2. यह मिट्टी की जल-धारण तथा उपजाऊ क्षमता में वृद्धि करता है।
3. यह पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाता है।

**कार्बनिक खाद की सीमाएँ**

1. पशुओं की संख्या कम होने एवं कृषि कार्यों में लोगों की भागीदारी घटने से कार्बनिक खादों की उपलब्धता कम होती जा रही है। इसके अतिरिक्त कार्बनिक खाद, पोषक तत्वों को बहुत धीमी गति से पौधों को प्राप्त होती है।
2. कार्बनिक खाद का अपघटन बहुत हद तक मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवों पर निर्भर करता है। यदि मिट्टी में इन जीवों की कमी है तो पौधों को कार्बनिक खाद का पूरा लाभ नहीं मिल पाता है।
3. कुछ कार्बनिक खादों का प्रयोग बड़े क्षेत्रों में करना कठिन हो सकता है।
4. इनकी उपलब्धता सभी स्थानों पर समान रूप से नहीं हो पाती।

**कार्बनिक खाद का प्रभाव**

1. कार्बनिक खाद के प्रयोग से मिट्टी में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है जिससे मिट्टी की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है।
2. खेतों में कार्बनिक खाद का प्रयोग करने पर मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की वृद्धि तीव्र गति से होती है।
3. मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ती है जिससे फसलों को कम पानी की आवश्यकता पड़ती है।
4. रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से पौधों को कुछ विशिष्ट तत्व ही मिल पाते हैं जबकि कार्बनिक खाद के प्रयोग से भी आवश्यक तत्वों की पूर्ति हो जाती है।
5. कार्बनिक खाद की अधिक मात्रा डालने से फसलों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। जबकि रासायनिक उर्वरकों से फसलें झुलस सकती हैं।
6. कार्बनिक खाद के प्रयोग से वातावरण संतुलित रहता है जिससे आस-पास का वातावरण प्रदूषित नहीं होता।

**अनुकूलित उर्वरक**

अनुकूलित उर्वरक वे हैं जो प्रणालीगत (सिस्टेमिक) प्रक्रिया द्वारा फसल की पोषक तत्वों की आवश्यकता, विशेष क्षेत्र, मिट्टी और पौधे की वृद्धि की अवस्थानुसार वृहद् तथा सूक्ष्म कार्बनिक तथा अकार्बनिक पोषक तत्वों के मिश्रण को बड़े दानेदार रूप में निर्मित किये जाते हैं।

पौधों को अपना जीवन चक्र पूर्ण करने के लिए 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जिनमें से 8 की बहुत कम मात्रा अपेक्षित है। इनमें से एक या दो तत्वों की कमी से पौधों की वृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा उपज कम हो जाती है। सभी तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चत करने हेतु अनुकूलित उर्वरक का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। इसके लिए उर्वरकों का ऐसा सम्मिश्रण बनाया जा रहा है जिससे पौधे के लिए सभी पोषक तत्वों की उपलब्धता हो सके।

फसल तथा क्षेत्र के आधार पर देश में एन., एन.पी., एन.पी.के. तथा एन.पी.के.एस. के विभिन्न सम्मिश्रण उपलब्ध हैं। अनुकूलित उर्वरकों में जिंक घटित यूरिया तथा बोरान घटित सुपर फॉस्फेट का प्रयोग किया गया। परन्तु इसका उचित प्रसार न होने के कारण यह किसानों की पहुँच से दूर रह गया। प्रसार न होने का एक कारण इनकी ऊँची कीमत भी थी।

ग्रोनर बेन्टोनाइट सल्फर तथा दानेदार बोरेग्स पेन्टा हाइड्रेट जिसको ग्रोनेबोर-2 कहा जाता है, को नत्रजन-फॉस्फोरस/नत्रजन, फास्फोरस तथा पोटाश के साथ सम्मिश्रण ने किसानों को एक बेहतर अवसर प्रदान किया है। बेन्टोनाइट सल्फर को नत्रजन-फास्फोरस/नत्रजन-फॉस्फोरस, पोटाश – इनके सम्मिश्रण को आयल सीड तथा दालों की उपज बढ़ाने हेतु प्रयोग किया जा रहा है।

जैव उर्वरकों के बड़े दाने ( ग्रेन्यूल्स )

व्यापारिक जैव-उर्वरक

कुछ अन्य अनुकूलित (कस्टमाइज्ड) उर्वरक निम्नलिखित हैं :

1. **धीमी गति से जारी होने ( स्लो रिलीज ) वाले उर्वरक–** इस प्रकार के उर्वरक धीमें अथवा नियंत्रित गति से समाप्त होते हैं जिससे इनकी उपलब्धता मिट्टी में लम्बे समय तक बनी रहती है तथा पौधे द्वारा ग्रहण की जाती है। इस प्रकार के उर्वरकों को कार्बनयुक्त पदार्थ (गोबर की खाद, नीम की खली, वर्मीकम्पोस्ट इत्यादि), चिकनी मिट्टी, गोंद तथा संतुलित मात्रा में जैव-उर्वरक मिलाकर बड़े दाने के रूप में प्रयोग किया जाता है। ये घुलनशील रासायनिक उर्वरकों के साथ जुड़े जोखिम के बिना ही उच्च फसल उत्पादन की क्षमता रखते हैं।

2. **दानेदार एन.पी.के. उर्वरक –** एन.पी.के. मिश्रण को पोषक तत्वों के विशिष्ट मिश्रण देकर फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए तैयार किया जाता है। एन. (नाइट्रोजन) विभिन्न प्रोटीनों, पत्ती के विकास तथा क्लोरोफिल बढ़ाने में सहयोग देता है। पी. (फास्फोरस) जड़ तथा फूलों का विकास करता है तथा के. (पोटैशियम) जड़ों के विकास तथा प्रोटीन संश्लेषण में योगदान देता है।

एन.पी.के. उर्वरकों को अकार्बनिक उर्वरक तथा जैव-उर्वरकों की अलग-अलग मात्रा को मिलाकर फसलों का उत्पादन बढ़ाने हेतु दानेदार रूप में प्रयोग किया जाता है।

### अनुकूलित उर्वरक के विकास की नीति

इन उर्वरकों की विकास की परिकल्पना निम्न कारणों से हुई है :

1. पौधों को उनकी आवश्यकतानुसार पोषक तत्व प्रदान करना।
2. मिट्टी की उपजाऊँ क्षमता में वृद्धि करने के साथ-साथ अधिकतम उपज प्राप्त करना।
3. पोषक तत्वों की आपूर्ति अधिकतम करना अथवा अधिकतम फसल उपज तक पहुँचाना।

### पोषक तत्व प्रबंधन-भावी संभावनाएँ

विगत कुछ वर्षों से विकसित तथा विकासशील देशों में उच्च उपज किस्मों, सघन शस्य पद्धतियों के अपनाने एवं उर्वरकों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। लेकिन नत्रजन एवं सूक्ष्म तत्वों की कमी एवं उनके उच्च मूल्य ने जैव उर्वरकों, कार्बनिक खेती एवं पारिस्थितिकीय खेती के प्रयोग की सम्भावनाओं को काफी महत्व दिया है। घटते एवं बिगड़ती मृदा की दशा की स्थिति में जैव-उर्वरक निश्चय ही मृदा उर्वरता एवं कृषि उत्पादन बढ़ाने में मदद करते हैं जो वातावरणीय नत्रजन जिसे पादप स्वतंत्र रूप से ग्रहण नहीं कर पाते उसे घुलनशील अवस्था में पौधों को उपलब्ध कराते हैं, तथा फास्फेट को मृदा में बाँधते हैं। इसके साथ ही सड़े-गले कार्बनिक पदार्थों के अवशेषों को पोषक तत्व के रूप में पौधों को उपलब्ध करता है जिससे पौधे इन तत्वों को सरलता से ग्रहण कर सकें। अतः, हमें यह जान लेना चाहिए कि यदि मृदा स्वास्थ्य बनाये रखने के साथ अच्छी उपज तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि करनी है तो सभी कार्बनिक स्रोतों एवं जैव-उर्वरकों का संतुलित एवं तर्कसंगत उपयोग तथा फसल चक्र को भली प्रकार अपनाना होगा। यह टिकाऊ कृषि का आधार है।


## प्रकाशनाधीन

## ''ओजोन प्रदूषण : वनस्पतियों एवं मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव''

लेखक : **प्रो. शशि भूषण अग्रवाल एवं निवेदिता चौधरी**

वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

ए-4 आकार में पूर्णतया रंगीन, आकर्षक आवरण एवं सुसंगत छाया चित्रों व रेखाचित्रों के साथ सरल, रोचक एवं सुग्राह्य हिन्दी भाषा में लिखित कुल लगभग 100 पृष्ठ।

**वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ( उच्चतर शिक्षा विभाग ), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली** के विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्यपुस्तक निर्माण योजना के अन्तर्गत शत-प्रतिशत अनुदान से प्रकाशित। स्नातक, स्नातकोत्तर एवं शोध छात्रों तथा पर्यावरण जागरुकता के लिए कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए उपयोगी।

**अन्य प्रकाशन :** पर्यावरण विज्ञान के विविध आयाम (प्रकाशन वर्ष 2013; मूल्य रु. 160.00), मात्र, ए-4 आकार में रंगीन आवरण सहित कुल 208 पृष्ठ।

**पुस्तक प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें :**

हिन्दी प्रकाशन समिति, द्वितीय तल, हिन्दी भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005 (उ.प्र.)

दूरभाष- 0542-6701424, 6701829

Email-hindipublications.bhu@gmail.com # sbagrawal56@gmail.com

# सिंधु-गंगा मैदानी क्षेत्र में वायुमंडलीय एरोसोल की प्रवृत्ति और उनके संभावित प्रभाव

मनीष कुमार[1] एवं तीर्थंकर बनर्जी[2] *

जलवायु परिवर्तन 21वीं सदी की सबसे अहम चुनौती के रूप में उभर कर सामने आया है। पृथ्वी के बढ़ते हुए तापमान और कई महत्वपूर्ण प्राकृतिक प्रक्रियाओं में बदलाव को वैश्विक स्तर पर काफी गंभीरता से लिया जा रहा है। विभिन्न मानवीय गतिविधियों से वायु प्रदूषण के स्तर में काफी वृद्धि हुई है और यह जलवायु परिवर्तन का एक प्रबल स्रोत है। वायुमंडलीय प्रदूषण में मुख्यतया ग्रीन हाउस गैसें तथा कुछ और हानिकारक गैसों के प्रभावों पर काफी शोध और अध्ययन हो रहे हैं। हाल के कुछ वर्षों में गैसों के अतिरिक्त वायुमंडल में विद्यमान एरोसोल भी वैज्ञानिक जगत का ध्यान आकर्षित किये हैं। पृथ्वी के ऊर्जा बजट और कई अन्य जलवायु प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण योगदान देने में सक्षम एरोसोल अपने अनेक नकारात्मक विशेषताओं की वजह से भी शोध का मुख्य केंद्र बनते जा रहे हैं। सिंधु गंगा मैदानी क्षेत्र में एरोसोल की भारी उपलब्धता और विविधता इस क्षेत्र में इनकी उपस्थिति के महत्व को बढ़ा देती हैं। कृषि, बायोमास दहन, वाहनों से होने वाले उत्सर्जन और औद्योगीकरण से इस क्षेत्र में एरोसोल की बढ़ती मात्रा और उनके स्पष्ट प्रभाव सामने आ रहे हैं। परन्तु जलवायु परिवर्तन में इनके योगदान पर अनिश्चितता बनी हुई है। वैश्विक जल चक्र, कृषि उत्पादन तथा मानव स्वास्थ्य पर एरोसोल का प्रभाव एक चिंता का विषय है। एरोसोल उत्सर्जन की रोकथाम के लिए नवीन तथा उन्नत तकनीक का इस्तेमाल करना समय की आवश्यकता है। संपोष्य विकास की संकल्पना को पूरा करने के लिए एरोसोल उत्सर्जन की रोकथाम वैज्ञानिकों और नीति निर्देशकों के लिए एक चुनौती भरा विषय है जिसके सक्रिय कार्यान्वयन की आवश्यकता है।

## एरोसोल क्या है ?

विभिन्न वायु प्रदूषकों में एरोसोल एक प्रबल अंशभूत है। ये वायुमंडल में विद्यमान एक भौतिक प्रजाति है जिनका निर्माण किसी ठोस अथवा तरल पदार्थ के कणों के किसी गैस में निलंबन से होता है और यह अपनी अलग विशेषताओं से वायुमंडल की विभिन्न प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान एफ.जी. डॉनन ने पहली बार हवा में सूक्ष्म कणों के बादलों के लिए एरोसोल शब्द का प्रयोग किया था। विभिन्न स्रोतों के आधार पर इन्हें दो महत्वपूर्ण श्रेणियों में रखा जाता है। प्राथमिक अथवा 'प्राइमरी एरोसोल' की श्रेणी ऐसे एरोसोल की होती है जो प्रत्यक्ष रूप से वायुमंडल में उपक्षेपित होते हैं और अपना प्रभाव छोड़ते हैं। हालाँकि कुछ एरोसोल का निर्माण विभिन्न वायुमंडलीय गैसों के रूपांतरण से होता है और उन्हें द्वितीयक अथवा 'सेकेंडरी एरोसोल' की श्रेणी में रखा जाता है। एरोसोल सौर्य विकिरणों के प्रकीर्णन और अवशोषण से पृथ्वी की ऊर्जा बजट को सीधी तरह से प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त ये अप्रत्यक्ष रूप से बादलों के गुणों और जीवनकाल को भी संशोधित करते हैं। स्थानिक और सामयिक स्तर पर अपनी भौतिक और रासायनिक गुणों में विविधताओं की वजह से एरोसोल कणों के विकीर्णन प्रभाव में काफी अनिश्चितता होती है, जिसपर शोध की आवश्यकता है। एरोसोल कणों के परिमापन की अनेक विधियाँ और ईकाइयाँ हैं लेकिन पर्यावरणीय विज्ञान में उन्हें मुख्यतया 'मास कंसंट्रेशन' यानी वायुमंडल के प्रति इकाई आयतन में मौजूद इनके भार के आधार पर प्रदर्शित किया जाता है। मास कंसंट्रेशन के अलावे इनके विभिन्न भौतिक, रासायनिक, जैविक अथवा प्रकाशीय गुणों का अलग-अलग तरह से अध्ययन किया जाता है। जलवायु परिवर्तन में एरोसोल की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए हाल के कुछ वर्षों में यह पर्यावरण विज्ञान में शोध का अहम केंद्र बनकर सामने आया है। भारतीय उपमहाद्वीप में एरोसोल के कई आयामों पर विस्तृत शोध कार्य हुए हैं जिनमें भारत के मैदानी और तटीय क्षेत्रों में इनकी बहुतायत उपस्थिति पाई गयी है।

## वायुमंडलीय एरोसोल : सिंधु-गंगा मैदानी क्षेत्र के परिपेक्ष्य में

सिंधु-गंगा के मैदानी क्षेत्र पूरे विश्व में अपनी उर्वरता के लिए विख्यात हैं और भारत एक बड़े पैमाने पर रबी और खरीफ की फसलों के उत्पादन में इस क्षेत्र पर निर्भर है। कृषि के अतिरिक्त यह क्षेत्र कई लघु, मध्यम और विस्तृत औद्योगिक ईकाइयों को समेटे हुए है जो इस क्षेत्र में वायु प्रदूषण में अहम भूमिका निभाते हैं। हरित क्रांति के 'सघन कृषि अभियान' की संकल्पना का सिंधु-गंगा क्षेत्र में वायु प्रदूषण पर गहरा प्रभाव पड़ा है। हालाकि वैज्ञानिक कृषि पद्धति और कृषि मशीनीकरण ने बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यान्न जरूरतों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परन्तु इसके नकारात्मक पहलुओं पर भी विचार करना होगा। गंगा के मैदानी क्षेत्र, भारत की सबसे घनी आबादी वाले क्षेत्रों में से एक है। उत्तर भारत में पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और मध्य गांगीय क्षेत्र में स्थित उत्तर प्रदेश खासकर पूर्वांचल और बिहार, भारत की एक बड़ी आबादी का प्रतिनिधित्व करते हैं। पूर्वी भारत में स्थित पश्चिम बंगाल भी सघन आबादी वाला प्रदेश है और इन सभी क्षेत्रों में जलावन के लिए बायोमास का प्रयोग, वाहनों के उत्सर्जन, सड़क किनारे से उड़ने वाले धूल कण, और कई बिंदु स्रोत वायुमंडलीय एरोसोल की उपस्थिति में योगदान देते हैं।

पूर्व में हुए कई शोधों से यह पता चलता है कि सिंधु-गंगा मैदानी क्षेत्र के ऊपरी हिस्से में पाए जाने वाले एरोसोल की भौतिक और रासायनिक विशेषताओं में विविधताएँ हैं जो इन क्षेत्रों के उत्सर्जन स्रोतों की अवधारणा

*[1]शोध छात्र, [2]सहायक आचार्य, पर्यावरण एवं धारणीय विकास संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी- 221 005.

**सिंधु-गंगा मैदानी क्षेत्र का मानचित्र**

स्पष्ट करती हैं। गौतम एवं सहयोगियों (2011) ने सिंधु-गंगा मैदान के पश्चिमी हिस्से में एरोसोल कणों में भारी मात्रा में 'मिनरल डस्ट' के अंतर्प्रवाह का अवलोकन किया और पाया कि उस क्षेत्र में पाए जाने वाले एरोसोल कणों का आकार पूर्वी हिस्से में पाए जाने वाले कणों से बड़ा है। पश्चिमी वायु और थार रेगिस्तान की वजह से उन हिस्सों में 'डस्ट लोडिंग' की प्रवृत्ति ज्यादा पायी गयी जबकि मध्य सिंधु-गंगा के मैदानी क्षेत्रों में पूर्व मानसून के चक्रवातीय बहाव से संबद्ध प्रचलित वायु की कमी की वजह से अपेक्षाकृत कम 'डस्ट लोडिंग' देखी गयी हालाँकि पूर्वी क्षेत्रों में 'कार्बनिक एरोसोल' की बहुतायतता पायी गयी है। गिल्स एवं सहयोगीगण (2011) ने भी कानपुर शहरी क्षेत्र में नगरीय उत्सर्जन, प्रदूषण और धूल कणों की वजह से 'एरोसोल लोडिंग' में 10-20 प्रतिशत तक के योगदान को दर्शाया है जो मध्य सिंधु-गंगा क्षेत्र में औद्योगिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण नगर है। हालाँकि सिंधु-गंगा के मैदानी क्षेत्र के अनेक शहरों में एरोसोल कणों और उनकी विशेषताओं पर कई अध्ययन हुए हैं लेकिन अपने स्रोत विशिष्ट गुणों के चलते उनके आकार, रासायनिक संरचना, उनके विकीर्णन प्रभाव और जलवायु को प्रभावित करने की क्षमता पर काफी अनिश्चितताएँ बनी हुई हैं। मुख्यतया दहन द्वारा उत्पन्न जैसे कि वाहनों, ऊर्जा संयंत्रों और बायोमास के जलने से निकलने वाले एरोसोल आकार में छोटे होते हैं वहीं हवा के साथ उड़कर आने वाले धूल कण, परागकण पौधों के टुकड़े और समुद्री नमक कण अपेक्षाकृत बड़े आकार के होते हैं जो सौर विकिरणों और बादलों के गुणों को अलग-अलग तरह से प्रभावित करते हैं। सिंधु-गंगा मैदानी क्षेत्र, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में बायोमास का घरेलू ईंधन के रूप में बड़े पैमाने पर प्रयोग होता है जो इस क्षेत्र में द्वितीयक एरोसोल के उत्सर्जन में महत्वपूर्ण योगदान देता है। साथ ही पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में फसलों की कटाई के बाद खेतों में आग लगाने की प्रक्रिया से शीत ऋतु में ऊपरी सिंधु-गंगा के मैदानी क्षेत्र में एरोसोल धुंध एक आम घटना है।

अपने अनूठे स्थलाकृतिक लक्षणों की वजह से सिंधु गंगा के मैदानी क्षेत्र वायु प्रदूषण खासकर एरोसोल के लिए संवेदनशील है। तिवारी एवं सिंह (2013) ने पाया कि पूर्वी भारत में तीव्र शहरीकरण और पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण नगर वाराणसी में एरोसोल के प्रकाशीय गुणों में मौसमी विविधता पायी गयी और मानसून पूर्व एवं शीत ऋतु में 'एरोसोल ऑप्टिकल डेप्थ में बढ़ोत्तरी', जबकि मानसून में इसमें गिरावट दर्ज की गयी अन्य पर्यवेक्षणों में भारत के अन्य हिस्सों जैसे बेंगलुरु और तटीय क्षेत्र भुवनेश्वर में भी समान प्रवृतियाँ प्राप्त की गयीं।

### वायुमंडलीय एरोसोल के प्रभाव

करीब 10-15 वर्ष पूर्व तक यह माना जाता रहा कि वायु प्रदूषण सिर्फ एक नगरीय अथवा स्थानीय समस्या है, किन्तु नये सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि वायु प्रदूषण का महाद्वीपों और महासागरों के बीच परिवहन होता है जो वायुमंडलीय 'ब्राउन क्लाउड्स' में परिवर्तित होते हैं और एरोसोल इनके महत्वपूर्ण घटक होते हैं जहाँ एक ओर ये कण विकिरणों के प्रकीर्णन में अपनी भूमिका अदा करते हैं और पृथ्वी के सतही तापमान को कम करते हैं। वहीं दूसरी ओर कुछ कण जैसे कि 'ब्लैक कार्बन एरोसोल' सौर विकिरणों को अवशोषित करके वायुमंडलीय तापमान को बढ़ाने में 'ग्रीन हाउस गैसों' के असर को परिवर्धित करते हैं। एरोसोल कणों के विकीर्णन एवं सूक्ष्म भौतिकीय प्रभावों का वैश्विक जल-चक्र पर भी काफी गहरा असर पड़ता है और ये हमारे एकमात्र जलयुक्त ग्रह पर सूखे का कारण बन सकते हैं। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय स्थित 'स्क्रिप्स इंस्टीट्यूसन ऑफ ओसिनोग्राफी' के प्रसिद्ध वैज्ञानिक वी. रामनाथन एरोसोल कणों के प्रभावों को सीधी तरह पृथ्वी पर मीठे पानी की उपलब्धता से जोड़ कर देखते हैं जो 21वीं सदी के प्रमुख पर्यावरणीय चिंताओं में से एक है। अनेक अन्य वैज्ञानिकों ने भी पूर्व में किये गए अपने अध्ययनों से एक निश्चित स्तर पर इसकी पुष्टि की है। पिछली शताब्दी में साहेल में आये सूखे के पीछे भी एरोसोल कणों का योगदान बताया जाता है। इसके अलावे नये सागर-वायुमंडलीय युग्मित मॉडल द्वारा किये गये अध्ययन यह संकेत करते हैं कि पिछले पचास वर्षों में कई भूमि क्षेत्रों में सूखे के लिए एरोसोल उत्तरदायी होते हैं। सत्तर के दशक में इस बात पर वैज्ञानिक सहमति थी कि क्षोभमंडल में एरोसोल कणों की बढ़त से पृथ्वी हिमयुग में जा सकती है। 1940 से 1970 के बीच की अवधि में उत्तरी गोलार्ध में गिरते तापमान की घटना ने इस अनुमान को बल दिया। तदुपरांत अवशोषण में सक्षम कुछ एरोसोल कणों के अध्ययन से यह खुलासा हुआ कि इन कणों का तापमान वृद्धि में भी योगदान है लेकिन अगर पूर्ण प्रभाव की बात की जाये तो एरोसोल कणों का शीतलन प्रभाव ही प्रबल है हालाँकि इस पर वैज्ञानिक निश्चितता की कमी है।

फसल की कटाई के बाद खेतों में लगाई गयी आग

वाहनों के उत्सर्जन से होने वाला प्रदूषण

वायु प्रदूषण खासकर एरोसोल कणों का कृषि उत्पादन पर भी संभावित असर देखने को मिला है। कई फसल-प्रतिक्रिया मॉडल प्रकाश विकिरण तथा धान और गेहूँ की पैदावार में समानुपातिक संबंध दर्शाते हैं। चीन में किये गये एक अध्ययन में पाया गया कि क्षेत्रीय धुंध फसलों की पैदावार में 5-30 प्रतिशत तक की गिरावट के लिए जिम्मेदार है। अतः एरोसोल की वजह से होने वाली क्षेत्रीय धुंध को कम करके कृषि उपज को बढ़ाया जा सकता है। बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न जरूरतों को पूरा करना इस सदी की सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है।

प्राकृतिक संसाधनों और प्रणाली के अलावा एरोसोल स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। एरोसोल के कणों में मौजूद विभिन्न भारी तत्व जैसे आर्सेनिक, निकेल, लेड इत्यादि शरीर के विभिन्न हिस्सों पर काफी खतरनाक असर डालते हैं। दिवाली के समय पटाखों के धुएँ के साथ निकलने वाले कैडमियम से कैंसर होने का खतरा होता है। तत्वों के अलावा एरोसोल में कई कार्बनिक अंशभूत भी होते हैं जिनमें कैंसरजनित गुण होते हैं जो मौजूदा समय में कैंसर जैसी बीमारियों की बढ़ती प्रवृति के लिए जिम्मेदार हैं। धुएँ में उपस्थित 'एरोमैटिक हाईड्रोकार्बन' एक कैंसरजन पदार्थ है और यह छोटे बच्चों पर ज्यादा प्रभावकारी असर डालते हैं।

सौर्य विकिरणों में कमी की वजह से हानिकारक जीवाणुओं और विषाणुओं की संख्या बढ़ सकती है जिनकी वृद्धि पराबैंगनी किरणों की वजह से नियंत्रण में रहती है। इसके अलावा वायु प्रदूषण की वजह से होने वाली बीमारियों जैसे दमा, स्वशनीशोथ और कई छोटी परेशानियाँ भी अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक और सामाजिक संतुलन को बिगाड़ सकती हैं। किसी भी देश अथवा राज्य की अर्थव्यवस्था में वहाँ के लोगों के मानसिक संतुलन और स्वास्थ्य का अहम योगदान होता है, और किसी भी तरह का प्रदूषण सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक संतुलन को परिवर्तित कर सकता है।

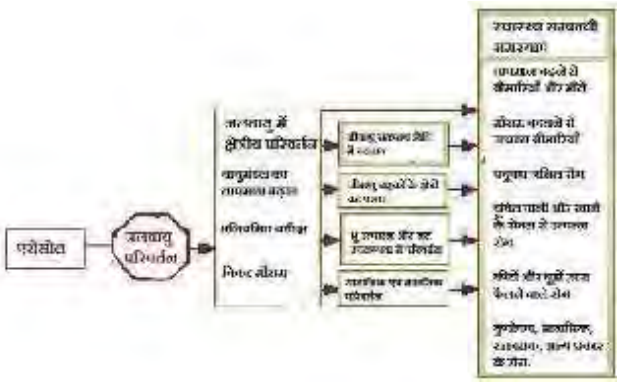


एरोसोल का स्वास्थ्य पर प्रभाव दर्शाता रेखाचित्र

## वायुमंडलीय एरोसोल : संपोष्य विकास के लिए चुनौती और निदान

बढ़ती जनसंख्या, कम होती जमीन, भूमिक्षरण, जंगलों की बेतहाशा कटाई, अनियंत्रित शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और उनसे होने वाले प्रदूषण इस सदी की सबसे महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। वर्तमान परिवेश में विकास के मायने में काफी बदलाव हुआ है, और सतत पोषणीय विकास की अवधारणा पर बल दिया जा रहा है। एरोसोल के उत्सर्जन पर भी संपोष्य विकास की संकल्पना लागू की जा सकती है। औद्योगिक ईकाइयों में प्रक्रिया संशोधन, सकारात्मक नीति निर्माण, क्षमता निर्माण, प्रभावी भूमि प्रबंधन और सामाजिक स्तर पर ऐसे कई बदलाव अपनाए जा सकते हैं जो वायुमंडलीय एरोसोल को अथवा उनके उत्सर्जन को कम करने में सहायक हो सकते हैं। समय के साथ वैज्ञानिक समुदाय और नीति निर्देशकों में भी इस बात पर सहमति बन रही है जिससे आने वाले समय में एक सकारात्मक परिणाम की कल्पना की जा सकती है।

वर्तमान समय में नगरीय क्षेत्रों में हरित पट्टी विकास की संकल्पना काफी तेजी से अपनाई जा रही है जो पूरी तरह से धारणीय है। एरोसोल के नियंत्रण के साथ इसके और भी कई फायदे हैं। कुछ पौधों की प्रजातियाँ हैं जो एरोसोल के रोकथाम में कारगर सिद्ध हुई हैं। इनमें पलाश, अमलतास, कदम्ब और मिन्जरी इत्यादि प्रजातियाँ है। हालाँकि कई नगरीय इलाकों में हरित पट्टी विकास को पूरी तरह से कार्यान्वित नहीं किया जा सकता है क्योंकि शहरी इलाकों में कई बार भूमि की उपलब्धता इसमें बाधक बनती है। एक अध्ययन के अनुसार विश्व के कई महानगरों में भूमि का एक बड़ा हिस्सा अभेद्य है जिस पर किसी भी प्रकार से वृक्षारोपण नहीं किया जा सकता है। न्यूयार्क और मिड मैन्हटनवेस्ट में क्रमशः 64 और 94 प्रतिशत भूमि अभेद्य है जहाँ हरित पट्टी विकास लगभग असंभव है ऐसी स्थिति में इमारतों की छतों पर छोटे पौधों को लगाने से अभिप्रायपूर्ण सफलता मिली है। एक अध्ययन में पाया गया कि टोरंटो में छतों के 109 हेक्टेयर क्षेत्र में लगाये गए पौधों की वजह से 7.87 मेट्रिक टन तक वायु प्रदूषकों को कम किया जा सकता है।

रिहायिशी इलाकों के आसापास विकसित हरित पट्टी

ठोस कचरे के खुले दहन से भी एरोसोल में वृद्धि होती है और साथ-साथ कई हानिकारक गैसों का उत्सर्जन भी होता है। इस समस्या से निबटने के लिए केरल सरकार ने भारतीय रेल के साथ मिल कर एक सकारात्मक पहल की है। सुचित्व मिशन के अंतर्गत तिरुअनंतपुरम शहर से निकलने वाले ठोस कचरे को रेलवे प्लेटफार्म के निर्माण में इस्तेमाल किया जा रहा है और इसमें अपेक्षित सफलताएँ भी मिली हैं। मुर्रुकुम्पुजा रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म संख्या 2 के निर्माण में करीब 600 टन ठोस कचरे का इस्तेमाल किया गया। विश्व के कई भागों में इस तरह के सफल उदाहरण हैं जो एरोसोल के उत्सर्जन का रोकने के लिए धारणीय प्रयासों की पुष्टि करते हैं।

कुशल भूमि प्रबंधन से भी इन प्रयासों को बल प्रदान किया जा सकता है। मृदा अपरदन प्रक्रिया वायुमंडल में एरोसोल कणों की उपलब्धता में एक बड़े पैमाने पर सहयोग देती है। वैज्ञानिक कृषि तकनीकों को अपनाकर इसे काफी हद तक कम किया जा सकता है। 'एग्री-सिल्वी कल्चर'। सीमा वृक्षारोपण एवं अवरोधी वृक्षारोपण प्रक्रिया को अपना कर एरोसोल कणों के साथ-साथ भूमि के क्षय को भी रोका जा सकता है। साथ ही जल प्रबंधन की उचित वैज्ञानिक एवं प्रशासनिक नीतियों का पालन करके भी इस दिशा में अभिप्रायपूर्ण नतीजे पाए जा सकते हैं।

अवरोधी वृक्षारोपण : एरोसोल नियंत्रण एवं मृदा अपरदन में प्रभावी

तकनीकी सुधार और नवीनता को कार्यान्वित करके भी वायु प्रदूषण में कमी लायी जा सकती है। पुराने और परंपरागत तकनीकों के नये और उन्नत तकनीक से प्रतिस्थापन के द्वारा कार्य की दक्षता भी बढ़ाई जा सकती है और साथ ही साथ वायु प्रदूषकों की मात्रा भी कम की जा सकती है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में सीएनजी के कार्यान्वयन से मिलता है जहाँ सीएनजी अनिवार्य होने के बाद 'ब्लैक कार्बन' एरोसोल की मात्रा में करीब 30 प्रतिशत तक की कमी आयी जो धारणीय विकास की दिशा में एक अच्छी पहल है। भारत के अलावा भी कई देशों में ऐसी पहल से ठोस नतीजे सामने आये हैं।

## वर्तमान एरोसोल विज्ञान की कमियाँ और भविष्य में शोध की आवश्यकता

हाल के वर्षों में वायुमंडलीय विज्ञान में अपेक्षाकृत विकास से प्रदूषण एवं उसके प्रभावों पर काफी वैज्ञानिक जानकारियाँ उपलब्ध हुई हैं लेकिन पृथ्वी के बढ़ते तापमान पर चिंतित वैज्ञानिक और राजनैतिक समुदाय में एक लंबे समय तक 'ग्रीन हाउस गैसें' ही मुख्य रूप से चर्चा का विषय रही हैं। इसकी वजह से 'ग्रीन हाउस गैसों' पर शोध और अध्ययन काफी बड़े पैमाने पर हुए और इनके बारे में हमारे पास एक ठोस वैज्ञानिक निश्चितता है जिसे हम परिमापित करके किसी यथार्थपूर्ण नतीजे पर पहुँच सकते हैं। आईपीसीसी ने भी इस बात की पुष्टि की है कि एरोसोल के विकीर्णन प्रभावों और उनके जलवायु पर असर के निकट भविष्य में और शोध की आवश्यकता है। हमें एरोसोल उत्सर्जन दर, उसकी मात्रा और उसके जीवनकाल के ऊपर एक विश्वसनीय वैश्विक वस्तुसूची की आवश्यकता है। एशिया और खासकर सिंधु-गंगा मैदानी क्षेत्र में 'ब्लैक कार्बन' के उत्सर्जन का यथार्थपूर्ण ज्ञान होना अति महत्वपूर्ण है। 'एरोसोल ऑप्टिकल डेप्थ' के भूमि के ऊपर विश्वसनीय परिमापन की जरूरत है क्योंकि उपग्रहों द्वारा उपलब्ध अवलोकन केवल महासागरों के ऊपर ही विश्वसनीय है। 'ब्लैक कार्बन' द्वारा बादलों के सूक्ष्म भौतिक प्रक्रिया को नियंत्रित करने की क्षमता का अध्ययन भी जरूरी है। यह जानना भी हमारे लिए अतिआवश्यक है कि वैश्विक जल चक्र किस तरह एरोसोल और उनके विकीर्णन प्रभावों के प्रति प्रतिक्रिया करता है। वायुमंडलीय विज्ञान में उपग्रह अवलोकन, क्षेत्र प्रयोग और प्रयोगशाला अध्ययन का विभिन्न मॉडलों के साथ समाकलन काफी जरूरी है ताकि एरोसोल के विभिन्न पहलुओं पर हमारे ज्ञान में वृद्धि हो सके।

वायुमंडल में उत्सर्जित हो रही गैसें

# ज्वालामुखी

प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह *

ज्वालामुखी का तात्पर्य उस छिद्र अथवा दरार से होता है जिसका सम्बन्ध पृथ्वी के आन्तरिक भाग से होता है एवं जिसके माध्यम से तप्त लावा, गैस तथा अन्य पदार्थ धरती के ऊपर आ जाते हैं। ज्वालामुखी क्रिया के अन्तर्गत मैग्मा के निकलने से लेकर धरातल या इसके अन्दर विभिन्न रूपों में इसके ठंढ़ा होने की प्रक्रिया होती है।

**ज्वालामुखी के प्रकार**

ज्वालामुखी का वर्गीकरण के अनेक आधार हैं :

**1. उद्‌गार की अवधि के आधार पर**

**( i ) जाग्रत ज्वालामुखी-** जिन ज्वालामुखियों से लावा, गैसें, विखण्डित और अन्य पदार्थ सदैव निकलते रहते हैं उन्हें जाग्रत या सक्रिय

**चित्र 1. इटली ( सिसली ) का जागृत ज्वालामुखी**

**चित्र 2. ओजन जागृत ज्वालामुखी-अर्जेन्टीना**

**चित्र 3. कोटोपेक्सी-इक्वेडोर का जागृत ज्वालामुखी**

ज्वालामुखी कहते हैं (चित्र-1,2,3)।

वर्तमान समय में पृथ्वी पर इस प्रकार के ज्वालामुखियों की संख्या लगभग 500 है। इसके प्रमुख उदाहरण हैं : इक्वेडोर का कोटोपैक्सी, लेपाटी द्वीप का स्ट्राम्बोली, अंटार्कटिका का मांउड इरेबस, हवाई द्वीप का मोनालोवा, अर्जेन्टीना-चिली का ओजस डेल, सीमा पर स्थित सालाडो, सिसली द्वीप का माउंट ऐटना, अन्डमान निकोबार का बैरन।

**( ii ) प्रसुप्त ज्वालामुखी-** ऐसे ज्वालामुखी जो एक बार उद्‌गार के बाद शान्त हो जाते हैं तथा कुछ समय की अवधि के बाद भयंकर या कुछ शान्त उद्‌गार के रूप में अपना उद्‌गार प्रारम्भ कर देते हैं। ये अनिश्चित और विनाशक माने जाते हैं। इसके प्रमुख उदाहरण हैं :

- इटली का विसुवियस (चित्र – 4)
- इन्डोनेशिया का क्राकातोआ
- जापान का फ्यूजीयामा
- अन्डमान-निकोबार का नारकोन्डम

**( iii ) शान्त ज्वालामुखी–** जब किसी ज्वालामुखी का उद्‌गार एक बार होने के बाद हमेशा के लिए शांत हो जाता है, तो उसे शान्त ज्वालामुखी कहते हैं, जैसे कि –

इरान का कोहन्सुल्तान एवं देवबन्द (चित्र – 5), म्यांमार का पोपा, तंजानिया का किली मांजारो, इक्वेडोर का चिम्बराजो, एंडीज पर का एकांकगुआ।

**2. उद्‌गार प्रवृत्ति के आधार पर**

**( i ) निचली मेंटल :** निचली मेंटल का औसत विस्तार 1700–2900 किमी. तक है। इसका घनत्व 4.75–5.0 तक है।

*आचार्य, भौमिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221 005.

चित्र 4. इटली का विसुवियस प्रसुप्त ज्वालामुखी

चित्र 5. ईरान का कोहेन्सुल्तान शान्त ज्वालामुखी

**( ii ) केन्द्रीय उद्‌गार :** ये ज्वालामुखी उद्‌भेदन किसी एक केन्द्रीय मुख से भारी धमाके के साथ होता है। ये विनाशात्मक प्लेटों के किनारे के सहारे होते हैं।

इनके प्रमुख प्रकार हैं –

♦ हवाई तुल्य, ♦ स्ट्राम्बोली तुल्य

♦ विसुवियस तुल्य, ♦ पीलियन तुल्य (सर्वाधिक विनाशकारी)।

**( iii ) दरारी उद्‌भेदन :** भूगर्भिक हलचलों से भूपर्पटी की शैलों में दरारें पड़ जाती हैं। इन दरारों से लावा धरातल पर प्रवाहित होने लगता है, इसे दरारी उद्‌भेदन कहते हैं। यह रचनात्मक प्लेट किनारों के सहारे होता है। इस प्रकार के उद्‌गार क्रीटैशियस युग में बड़े पैमाने पर हुए जिससे लावा पठारों का निर्माण हुआ था।

### ज्वालामुखी उद्‌गार के कारण

ज्वालामुखी उद्‌गार के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

(i) भूगर्भ में अत्यधिक तापमान के कारण चट्टानों का पिघलकर प्रसार। (ii) दबाव में कमी और लावा की उत्पत्ति। (iii) भूगर्भ में विभिन्न प्रकार के गैसों एवं जलवाष्प की मात्रा बढ़ने संबंधी प्रभाव। (iv) भूगर्भ से लावा और गैसों का धरातल की ओर प्रवाहित होना। (v) प्लेट विवर्तनिकी संबंधी प्रक्रिया (नवीनतम और सर्वमान्य सिद्धान्त)।

### ज्वालामुखी का विश्व वितरण

प्लेट विवर्तनिकी संबंधी अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि विश्व स्तर पर अधिकांश सक्रिय ज्वालामुखी प्लेट की सीमाओं के साथ संबंधित हैं। लगभग 15 प्रतिशत ज्वालामुखी रचनात्मक प्लेट के किनारों के सहारे तथा 80 प्रतिशत विनाशात्मक प्लेटों के सहारे पाये जाते हैं।

### ( i ) परिप्रशांत महासागरीय पेटी

विनाशात्मक प्लेट के किनारों के साथ विस्तृत इस पेटी में विश्व के दो तिहाई ज्वालामुखी पाये जाते हैं। इनका विस्तार अंटार्कटिका महाद्वीप माउंट इरेबस से लेकर प्रशांत के क्षेत्रों, किनारों व चारों ओर विस्तृत हैं। इसे 'प्रशान्त महासागर का अग्निवृत्त' (Fire ring of the pacific ocean) उपनाम से माना जाता है (चित्र – 6)।

चित्र 6. प्रशान्त महासागर का अग्निवृत्त

### प्रमुख ज्वालामुखी

इस पेटी में 22 प्रमुख ज्वालामुखी पर्वत समूह पाये जाते हैं। कोटापैक्सी, फ्यूजीयामा, माउंट ताल, मांउट मेशन, शस्ता, रेनिडियर, हुड, पिनाटोबू, चिम्बोरोजो आदि प्रमुख ज्वालामुखी इस मेखला में हैं।

### ( ii ) मध्य महाद्वीपीय पेटी

इस मेखला के अधिकांश ज्वालामुखी विनाशी प्लेट किनारों के सहारे पाये जाते हैं। इस पेटी का विस्तार आइसलैंड से प्रारंभ होकर भू-मध्यसागर, अफ्रिका, हिमालय, दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में फैली हुई है। ज्वालामुखी भू-मध्यसागर स्थित स्ट्रांम्बोली, विसुवियस, एटना, एजियन सागर के ज्वालामुखी, देवबंद एवं कोहेन्सुल्तान (ईरान, अलवुर्थ), अरेरात (अर्मोनिया), अफ्रिका के एटगना, मेरू, किलीमंजारो, रांगवी, विएंगा आदि।

### ( iii ) मध्य अटलांटिक पेटी

यह पेटी रचनात्मक प्लेट किनारों के सहारे विस्तृत है। आइसलैंड इस मेखला का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सक्रिय क्षेत्र है जहाँ लौकी हेकला एवं हेल्गाफेल ज्वालामुखी स्थित हैं। लेजर एण्टलीज, एओर द्वीप तथा सेंट हेलना आदि अन्य प्रमुख ज्वालामुखी क्षेत्र हैं।

**विश्व के प्रमुख ज्वालामुखी**

| नाम | देश ( स्थिति ) |
|---|---|
| माउंट ऐटना | सिसली (इटली) |
| माउंट इरेबस | रॉस (अंटार्कटिका) |
| फायूजियामा | जापान |
| कोटोपैक्सी | इक्वेडोर |
| पोपोकैपिटल | मैक्सिको |
| मोनालोआ | हवाई द्वीप (यू0एस0ए0) |
| लैसेन पीक | सं0रा0 अमेरिका |
| मेयात | फिलीपींस |
| माउंट पीनाटूवो | फिलीपींस |
| हेकला | आइसलैंड |
| विजुवियस | नेपाल्स की खाडी (इटली) |
| स्ट्राम्बोली | लिपारा द्वीप (भूमध्य सागर) |
| सेंट हेलेन्स | सं0रा0 अमेरिका |
| कोहेन्सुल्तान | ईरान |
| देवबंद | ईरान |
| एलबुर्ज | जार्जिया |
| माउंट अरारात | अर्मेनिया |
| किलिमंजारो | तंजानिया |
| माउंट सस्ती | सं0रा0 अमेरिका |
| कटमई | अलास्का (यू0एस0ए0) |
| गुआल्लाशीरी | चिली |
| लैसकर | चिली |
| संगेरु | इंडोनेशिया |
| माउंट डिन्जेव | जापान |
| क्राकाटोटा | इंडोनेशिया |
| माउंट कैमरुन | कैमरुन (अफ्रिका) |
| माउंट कीनिया | कीनिया |
| माउंट पोपा | म्यांमार |
| ओजोस डेल सलाडो | अर्जेन्टीना-चिली |
| चिम्बारेजो | इक्वेडोर |
| माउंट रेनियर | सं0रा0 अमेरिका |
| लौकी | आइसलैंड |
| माउंट रैंजल | कनाडा |
| बलकैती | लिपारी द्वीप |
| किलायू | हवाई द्वीप (यू0एसए0) |
| सैंगे | इक्वेडोर |
| प्यूरेस | कोलंबिया |
| टैम्बोरा | इंडोनेशिया |

**ज्वालामुखी द्वारा निर्मित भू-आकृतियाँ**

ज्वालामुखी द्वारा निर्मित स्थालाकृतियों को दो भागों में बाँटा जाता है :

**1. वाह्य स्थलाकृतियाँ**

**( क ) शंकु :** इसके प्रमुख प्रकार हैं–

**( i ) सिण्डर शंकु :** ज्वालामुखी द्वारा उद्‌गारित राख, धूल, विखंडित पदार्थों से बना शंकु। उदाहरण : मैक्सिको का ओरल्लो, फिलीपींस का केमिग्विन ज्वालामुखी का शंकु।

**( ii ) कम्पोजिट शंकु :** ये सर्वाजनिक ऊँचे और विस्तृत शंकु होते हैं। उदाहरण : सस्ता, रेनिडियर व हुड (यू0एस0ए0), फ्यूजीनामा (जापान)।

**( iii ) बेसिक लावा शंकु :** बेसाल्टिक लावा से निर्मित चौड़ा, कम ऊँचा, छिछला शंकु। उदाहरण : हवाई द्वीप के शंकु।

**( iv ) एसिड लावा शंकु :** सिलिका प्रधान लावा से निर्मित ऊँचा और तीव्र ढलान वाला शंकु। उदाहरण : स्ट्राम्बोली।

**( v ) लावा डाट :** उदाहरणः ब्लैक हिल एवं डेविल टावर।

**( vi ) लावा गुंबद :** लेसेन ज्वालामुखी (अमेरीका), पेली पर्वत (मार्टिनिक द्वीप)।

**( ख ) क्रेटर**

ज्वालामुखी छिद्र के ऊपर स्थित कीपाकार गर्त को क्रेटर कहते हैं। एक क्रेटर का औसत विस्तार 1000 फीट और गहराई 1000 फीट तक होती है। अलास्का का एनिया कचक ज्वालामुखी का क्रेटर 6 मील लंबा और 3000 फीट ऊँचा है (चित्र -7)।

चित्र 7. क्रेटर

**काल्डेरा**

काल्डेरा क्रेटर का ही आर्थिक विस्तृत रूप है। इसका औसत आकार कढ़ाईनुमा होता है। काल्डेरा के तली का व्यास 6 मील और ऊँचाई 4000 फीट तक होती हैं। कई बार विस्तृत काल्डेरा के अंदर पुनः ज्वालामुखी उद्‌गार होते हैं एवं अन्य छोटे काल्डेरा के निर्माण से

चित्र 8. घोसलेदार काल्डेरा

चित्र 9. अमेरिका का ओल्डफेथफुल - गेजर

घोसलेदार काल्डेरा बन जाता है (चित्र – 8)। क्रेटर और कालडेरा में जब जल भर जाता है तो झील के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। महाराष्ट्र की लोनार झील तथा राजस्थान की पुष्कर ऐसे ही झीलों के उदाहरण हैं।

**( ग ) दरारी उद्‌गार से निर्मित आकृति**

**( i ) लावा पठार और गुंबद :** दरारी उद्‌भेदन के बाद बेसाल्ट लावा विस्तृत मात्रा में क्षैतिज रूप से फैलकर एक के ऊपर दूसरी तहों के रूप में जमकर लावा पठार और लावा गुंबद का निर्माण करते हैं। ब्राजील का पठार, कोलंबिया का पठार इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

**( ii ) लावा मैदान :** जब लावा का प्रवाह एक चादर के रूप में और कम ऊँचाई में होता है, तो लावा मैदान बनता है।

**( iii ) मेसा एवं बुटी :** लावा प्रवाह वाले क्षेत्रों में अपरदनकारी शक्तियों द्वारा निर्मित मेजनुमा ऊपरी सतह वाली आकृति मेसा कहलाती है।

**2. अभ्यांतरित स्थलाकृतियाँ**

जब ज्वालामुखी उद्‌गार के समय लावा पृथ्वी के आन्तरिक भाग में हीं जम जाता है, तो इस प्रकार की आकृतियों का निर्माण होता है। ये आकृतियाँ हैं : (i) सिल और सिट (ii) डाइक (iii) बेथोलिक (iv) लैकोलिथ (v) लेपोलिथ (vi) फैकोलिथ आदि का निर्माण होता है।

**3. अन्य आकृतियाँ**

**( क ) गेसर**

गर्म जल के स्रोत जिनके मुख से निरन्तर रूप से समय-समय पर गर्म जल के फुहारे और वाष्प छूटती रहती है, गेसर कहलाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के यलोस्टोन पार्क स्थित ओल्डफेथफुल गेसर एवं एक्सेलियर गेसर प्रसिद्ध हैं (चित्र – 9)।

**( ख ) धुँआरे**

यह ज्वालामुखी आकृति से संबंधित छिद्र होता है जिससे निरन्तर गैस तथा वाष्प निकलता है। विश्व के प्रसिद्ध धुँआरों में अलास्का के कटमई ज्वालामुखी क्षेत्र की दस सहस्त्र धूम्र घाटी, ईरान का कोहन्सुलतान, धुँआरा तथा न्यूजीलैंड का ह्वाइट टापू का धुँआरा प्रसिद्ध है। धुँआरे ज्वालामुखी की सक्रियता के अंतिम लक्षण माने जाते हैं (चित्र – 10)।

**ज्वालामुखी – महत्वपूर्ण तथ्य**

आस्ट्रेलिया महाद्वीप में एक भी ज्वालामुखी नहीं है। ज्वालामुखी उद्‌गार के समय सर्वप्रथम गैसें और जलवाष्प क्रस्ट तोड़कर बाहर जाती हैं। इनमें जलवाष्प की मात्रा 70-90 होती है।

ज्वालामुखी उद्‌गार के समय निःसृत प्रमुख ठोस पदार्थ निम्नवत हैं :

**( i ) बैम्ब–** बड़े चट्टानी टुकड़े, **( ii ) टफ–** धूल के कणों और राख के घमी भवन से बने टुकड़े, **( iii ) प्यूमिस–** लावा झान के ठंडे होने पर बने छोटे-छोटे चट्टानी टुकड़े, **( iv ) ब्रेसिया–** कोण वाले अपेक्षाकृत बड़े आकार के टुकड़े, **( v ) लोपिली एवं स्कोरिया–** मटर के दाने से लेकर अखरोट के आकार वाले टुकड़े।

हल्के पीले, लाल अत्यन्त गाढ़े द्रव के रूप में अत्यधिक तापमान पर पिघलने वाला लावा अम्ल प्रधान या एसिड लावा के नाम से जाना जाता है। गहरे काले रंग वाला अधिक भार तथा पतले द्रव के रूप में स्थित लावा को बेसिक लावा कहते हैं। यह पतला होने के कारण धरातल पर शीघ्रता से फैलकर बैठता है। जब ज्वालामुखी से राख एवं लावा का निकलना बंद हो जाता है एवं इसके बाद भी निरंतर विभिन्न तरह की वाष्प एवं गैसें निकलती रहती हैं तो उसे 'सोल्फतारा' कहते हैं। वास्तव में यह गंधकीय धुँआरा है। स्ट्राम्बोली से सदैव प्रज्वलित गैसें निकलती रहती हैं, अतः इसे भूमध्य सागर का 'प्रकाश स्तम्भ' कहते हैं।

सबसे अधिक सक्रिय ज्वालामुखी अमेरिका एवं एशिया महाद्वीपों के तटीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं। विश्व में सर्वाधिक ऊँचाई पर स्थित सक्रिय ज्वालामुखी की 'ओजसडेलसलाडो' (6,885 मी0) एडीज पर्वतमाला में अर्जेंटीना एवं चिली की सीमा पर स्थित है। वर्तमान समय में विश्व में सबसे ऊँचा ज्वालामुखी पर्वत मांउट कोटोपैक्सी (19,617 फीट) है। यह इक्वेडोर में है। पश्चिम अफ्रिका का एकमात्र सक्रिय ज्वालामुखी मांउट कैमरून है।

विसुवियत ज्वालामुखी (इटली) के विस्फोट से पोम्पीआई, पाम्फर हरक्यूलेनियन एवं स्टेबी नगर पूर्णतः नष्ट हो गये थे। अंटार्कटिका महाद्वीप का एक मात्र सक्रिय ज्वालामुखी मांउट इरेबस है। परिप्रशांत

महासागरीय पेटी के अधिकांश ज्वालामुखी शृंखलाबद्ध रूप में पाये जाते हैं। विश्व के सर्वाधिक ऊँचाई पर स्थित मृत ज्वालामुखी एकांकगुआ है, जो एंडीज पर्वतमाला पर है। इसकी ऊँचाई 6,960 मी0 है। दक्षिणी अमेरीका एवं अफ्रिका महाद्वीप में (ओगोर्स के अलावा) गेसर नहीं पाये जाते हैं। ज्वालामुखियों का व्यापक विस्तार विनाशात्मक प्लेट के किनारों के सहारे पाया जाता है।

चित्र 10. अलास्का का कटमई ज्वालामुखी के धुँआरे

### ज्वालामुखी के लाभ

ज्वालामुखी विध्वंशक होने के साथ-साथ लाभकारी भी होते हैं। जैसे-

1. ज्वलामुखी के उद्‌गार के समय झीलों का निर्माण होता है। जो जलस्रोत संचय करती है। फलस्वरुप आर्थिक लाभ होता है।
2. ज्वालामुखी के चारों ओर काफी बड़े क्षेत्र में राख के जमा होने से मिट्टी काफी उपजाऊ हो जाती है। फलस्वरूप, फसलें काफी अच्छी होती हैं।
3. ज्वालामुखी से पठारों की शृंखला का निर्माण होता है जिसके पत्थर से मकान, पुल, सड़कें आदि का निर्माण होता है।
4. ज्वलामुखी से पर्वत समूहों का निर्माण होता है। फलस्वरूप, पेड़-पौधे अपने आप हरियाली बनाते हैं। वातावरण को साफ करते हैं। औषधीय एवं फर्नीचर आदि बनाने में उपयोगी होते हैं।
5. ज्वालामुखी द्वारा कुछ भू-आकृतियाँ इतनी अच्छी बनती हैं जिसे पिकनिक स्थल बनाकर काफी आर्थिक लाभ होता है।
6. ज्वालामुखी से सभी प्रकार के धातुओं का निर्माण होता है।
7. दक्षिणी अफ्रिका का किम्बरलाइट चट्टान जिसमें विश्व का अधिकतम हीरा पाया जाता है वह भी ज्वालामुखी से ही बना है।
8. ज्वालामुखी द्वारा उत्पन्न सैडल-रीफ में सोना अत्यधिक मात्रा में मिलता है।
9. ज्वालामुखी द्वारा उत्पन्न डाईक चट्टान द्वारा आज बड़े-बड़े लोगों के महल बन रहे हैं जो काफी महँगा होता है।
10. गेजर एवं धुँआरे द्वारा हमेशा गर्म जल से काफी देशों में बिजली निर्माण होती है। तरण-तारण का निर्माण होता है तथा मछली पालन होता है। धुँआरे से भी बिजली एवं कई देशों में भवन गर्म करने के काम आता है।

### ज्वालामुखी के कुप्रभाव

1. जन, धन आदि की अत्यधिक हानि होती है।
2. ज्वालामुखी द्वारा निकले धुएँ से चारों तरफ वातावरण प्रदूषित होता है। आवागमन के साधन अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। मकान, जंगल जलकर नष्ट हो जाते हैं।
3. भूकम्प की तरह ही ज्वालामुखी की भविष्यवाणी नहीं हो पाती है। पर ज्वालामुखी प्रायः रिंग आफ फायर में ही ज्यादा आते हैं एवं अपने पहले स्थान पर ही पुनः आते रहते हैं।

## तेज चमक के साथ दिखा सुपरमून

इस वर्ष का सबसे बड़ा और चमकदार चाँद 23 जून (रविवार) को दिखायी दिया। इसे सुपरमून कहा जाता है। इस दिन धरती के चारो ओर चक्कर काट रहा प्राकृतिक उपग्रह चाँद धरती के सबसे नजदीक आ गया था। सुपरमून ऐसी स्थिति होती है जब चाँद और धरती की दूरी सबसे कम हो जाती है। नासा के अनुसार पूर्णिमा पर जब यह घटना होती है तो चाँद बड़े आकार का और सबसे ज्यादा चमकदार दिखता है। 23 जून को चाँद धरती के कुछ ज्यादा नजदीक था। चूँकि चाँद धरती के चारो ओर अण्डाकार पथ पर परिक्रमण करता है, इसलिए चाँद और धरती की दूरी हमेसा घटती-बढ़ती रहती है। अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा के अनुसार अन्य वर्षों से अलग इस वर्ष सुपरमून 14 प्रतिशत बड़ा और 30 प्रतिशत अधिक चमकदार दिखा। इस दिन धरती से चाँद की दूरी 3,56,992 किमी. थी जबकि दोनों की बीच की अधिकतम दूरी 4,05,696 किमी. होती है। विशेषज्ञों के अनुसार अगला सुपरमून अगस्त 2014 में दिखने की उम्मीद है।

# प्लास्टिक बैग, पृथ्वी, पर्यावरण, पशुधन और हमारी तनिक सी सुविधा की कीमत

डॉ0 रमेश पाण्डेय एवं डॉ0 नीरज *

पृथ्वी की सजीव सृष्टि का मूलाधार पर्यावरण में सन्निहित है तथा पर्यावरण का अर्थ प्राकृतिक रूप से सुस्थापित अद्यतन पारिस्थितिकी में सामंजस्य स्थापना से संबद्ध है। पर्यावरण में होने वाला सूक्ष्मतर परिवर्तन भी भविष्य के बहुआयामी दूरगामी दुष्परिणामों का वाहक होता है तथा पर्यावरण में पाई जाने वाली अप्राकृतिक तथा असंतुलित असामान्यता ही प्रदूषण कहलाती है। वस्तुतः, मनुष्य प्रकृति के समस्त घटकों में से परमात्मा द्वारा सृजित सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपरि तथा सर्वोत्तम कृति है पर वह अपनी बौद्धिक उन्नतावस्था एवं श्रेष्ठता के दम्भ में अपनी छोटी-छोटी तथाकथित सुविधाओं की खोज व होड़ में विभिन्न भस्मासुरों को जन्म देता तथा पालता-पोसता रहता है।

**प्लास्टिक कैरी बैग**

आज मानव उपभोक्तावाद तथा बाजारवाद के बढ़ते वर्चस्व के कारण प्लास्टिक का विभिन्न रूपों में उपयोग कर रहा है जिसमें से एक अति सामान्य रूप पॉलीथीन बैग का है। 'प्लास्टिक' शब्द ग्रीक भाषा के 'प्लास्टिकोज' से बना है जिसका अर्थ होता है ढुलाई के लिए सर्वथा उपयुक्त प्लास्टिक एक बहुमुखी वस्तु है जो हल्की, लचीली, नमी प्रधिरोधी, टिकाऊ मजबूत तथा अपारदर्शी होती है। आज-कल बहुतायत से कैरीबैग के रूप में प्रयोग किया जाने वाला पॉलीथीन बैग एक प्लास्टिक उत्पाद है। पॉलीथीन उच्च आणविक भार सहित एथिलीन का एक बहुलक है। जब इसे गर्म किया जाता है तो यह मुलायम हो जाता है और ठंडा होने पर यह पुनः कड़ा हो जाता है। यही विशेषताएँ इसे अत्यधिक घातक भी बना देती हैं। प्लास्टिक में मुख्य रूप से जो रसायन होते हैं, उनमें पालीएथिलीन अर्थात् पॉलीथीन होती है जो एथिलीन गैस बनाती है। पालीथीन में पालीयूरोथेन नामक रसायन पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें पालीविनायल क्लोराइड (पी वी सी) भी पाया जाता है। प्लास्टिक अथवा पालीथीन में पाये जाने वाले इन रसायनों को किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं किया जा सकता है। प्लास्टिक अथवा पालीथीन को जमीन में दबाने, आग में जलाने और पानी में बहाने से रसायन का प्रभाव समाप्त नहीं होता है। प्लास्टिक को जलाने से रसायन के तत्व वायुमंडल में मिलकर उसे प्रदूषित करते हैं। प्लास्टिक अथवा पॉलीथीन को जमीन के अंदर दबाने से गर्मी पाकर विषाक्त रसायन जहरीली गैसें पैदा कर देते हैं। जमीन के अंदर गर्मी पाकर यह गैस विस्फोट भी कर सकती है। प्लास्टिक बैग अत्यधिक टिकाऊ होते हैं और इसकी यह विशेषता पर्यावरणविदों के माथे पर परेशानियों की लकीरें खींच दे रही हैं। दरअसल, बहुसंख्य प्लास्टिक बैग इतने अधिक टिकाऊ होते हैं कि उन्हें नष्ट होने में लगभग सवा लाख साल तक भी लग भी लग सकते हैं।

**जलते प्लास्टिक से निकलती जहरीली गैसें**

पॉलीस्टीरीन नामक प्लास्टिक को जलाने से क्लोरोफ्लोरोकार्बन बाहर आ जाते हैं जो जीवन रक्षक कवच ओजोन को नष्ट कर रहे हैं। ओजोन की जीवन रक्षक परत नष्ट होने से धरती पर प्रलयकारी स्थिति पैदा हो सकती है। इसीलिए संसार के अनेक देशों में प्लास्टिक कचरे को जलाने पर रोक लगा दी गयी है। पॉलीथीन नष्ट न होने की वजह से सफाई कार्य में काफी व्यवधान उत्पन्न होता है। सीवर चोक की जितनी घटनाएँ होती हैं उनमें 70 प्रतिशत पॉलीथीन बैग की वजह से होती हैं। मानव स्वास्थ्य के लिए भी इनका प्रयोग हानिकारक है। नगर के जिन क्षेत्रों में

*सुंदरेसन पशुपालन एवं दुग्धविज्ञान विद्यालय, सैम हिग्गिन्बाटम इन्स्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंड साइंसेज (पूर्ववर्ती इलाहाबाद कृषि संस्थान), मान्य विश्वविद्यालय, नैनी, इलाहाबाद – 211 007.


ISSN 2231-2455

कूड़ा-करकट डाला जाता है वहाँ का बहुत बड़ा भाग विषाक्त गैस के प्रभाव में रहता है। गर्मी के दिनों में प्लास्टिक पदार्थों की विषाक्तता बढ़ जाती है। इसीलिए ऐसे स्थानों से गुजरने वालों को दुर्गंध का सामना करना पड़ता है। ऐसे क्षेत्रों के पास किसी आबादी का रहना या कुछ घंटों तक लोगों का नियमित कार्यजन्य आवश्यकताओं के कारण रहना भी स्वास्थ्य हेतु घातक हो सकता है। यदि प्लास्टिक पदार्थों का उपयोग इसी प्रकार बढ़ता रहा और इसके निस्तारण की उचित व्यवस्था नहीं हुई तो इसकी रासायनिक प्रतिक्रिया मानवता हेतु अत्यंत घातक सिद्ध हो सकती है।

**तालाब में तैरता प्लास्टिक कचरा**

प्लास्टिक से निर्मित वस्तुएँ हमें यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलती हैं। बाजार की प्रत्येक दुकान में, शहर-गाँव के हर एक घर में, कूड़े घर के ढेर में, गटर में, यहाँ तक कि सीवर लाइन में भी प्लास्टिक की थैलियाँ अटी पड़ी हैं। यही कारण है कि बरसात के मौसम में गंदे पानी के अनियंत्रित बहाव तथा रिसाव की वजह से शहर की गलियाँ और घर तक भी भर जाते हैं तथा कीटाणुओं और जीवाणुओं के आशातीत रूप से बढ़ जाने की वजह से विभिन्न संक्रामक रोगों की बाढ़ सी आ जाती है।

प्लास्टिक के कचरे को पूर्णतया नष्ट नहीं किया जा सकता है। इसीलिए वैज्ञानिक कोशिश कर रहे हैं कि इसे कुछ तकनीकों से गला कर फिर से उपयोग में लाया जा सके। पुनः उपयोग की यह क्रिया पुनर्चक्रण कहलाती है। वस्तुतः यह क्रिया कठिन भी है और इसमें धन भी बहुत व्यय होता है। इसके अतिरिक्त इस क्रिया से भी प्रदूषण बढ़ता है। जर्मनी के पर्यावरण वैज्ञानिक के अनुसार यदि 50,000 पॉलीथीन बैग्स तैयार किये जाते हैं तो लगभग 17 किलो सल्फर डाईआक्साइड गैस वायुमंडल में घुल जाती है। इसके अतिरिक्त मोनोआक्साइड, नाइट्रोजन और हाइड्रोकार्बन्स का वायु में रिसाव होता है और पानी में कुछ जहरीले पदार्थ भी आकर मिलते हैं। इसी प्रकार जब प्लास्टिक फाइबर बनाये जाते हैं तो उसमें से न्यूनतम 13 किलो नाइट्रोजन आक्साइड और 12 किलो सल्फर डाइआक्साइड निकलकर वायुमंडल में मिलती है जो पेड़ पौधों एवं फसलों को नुकसान पहुँचाती हैं।

आज हमारे देश के विभिन्न भागों में प्लास्टिक कचरे के दुष्प्रभावों के प्रति नागरिक जागृत होकर इसके इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगाने हेतु आन्दोलनरत हैं। भारत में केन्द्रीय सरकार ने रिसाइकल्ड, प्लास्टिक मैन्यूफैक्चर एण्ड यूसेज रूल्स के अन्तर्गत 1999 में 20 माइक्रोन से कम मोटाई के रंगयुक्त प्लास्टिक बैग के प्रयोग तथा विनिर्माण पर प्रतिबंध लगाया गया है। इसके बावजूद विभिन्न राज्यों द्वारा छः माह की कड़ी सजा के प्रावधान किये जाने, उद्योगों की बिजली काट दिये जाने, और पालन न किये जाने की स्थिति में प्रतिष्ठान को बंद किये जाने जैसे प्रावधानों के होने के बावजूद, महीन प्लास्टिक बैग अभी भी परिचालन में हैं। नियमों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए कुछ बिंदुओं पर ध्यान दिए जाने तथा 'रिसाइकल्ड प्लास्टिक मैन्यूफैक्चर एण्ड यूजेज रूल्स' में संशोधन किया जाना आवश्यक है। इनके अतिरिक्त उद्योगों के लिए उचित पैकेजिंग नीति तथा पैकेजिंग दिशा-निर्देश जारी किये जाने की आवश्यकता है। सम्पूर्ण प्लास्टिक कचरा प्रबंधन ही इस समस्या का सर्वोत्तम विकल्प है। औसतन हमारे देश का प्रत्येक परिवार हर साल तीन से चार किलो प्लास्टिक की थैलियों का इस्तेमाल करता है। बाद में यही प्लास्टिक के थैले कूड़े के रूप में पर्यावरण के लिए मुसीबत बनते हैं। विगत वर्षों में देश में करीब 15 लाख टन तक वार्षिक कचरा सिर्फ प्लास्टिक का ही हो रहा था। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में हर साल 30-40 लाख टन प्लास्टिक उत्पादन किया जाता है। इसमें से करीब आधा यानी 20 लाख टन प्लास्टिक रिसाइक्लिंग के लिए मुहैया होता है, हालांकि हर साल करीब साढ़े सात लाख टन कूड़े की रिसाइक्लिंग की जाती है। कूड़े की रिसाइक्लिंग को उद्योगों का दर्जा हासिल है और यह सालाना करीब-करीब 25 अरब रुपये का कारोबार है। हमारे देश में प्लास्टिक की रिसाइक्लिंग करने वाली छोटी-बड़ी 20 हजार इकाइयाँ हैं तथा करीब 10 लाख लोग प्लास्टिक संग्रह के काम में लगे हैं, जिनमें महिलाएँ और बच्चे भी बड़ी तादाद में शामिल हैं। दरअसल, प्लास्टिक के थैलों के इस्तेमाल से होने वाली समस्याएँ ज्यादातर कचरा प्रबंधन प्रणालियों की खामियों की वजह से पैदा हुई हैं। प्लास्टिक का यह कचरा नालियों और सीवेज व्यवस्था को ठप कर देता है। नदियों में भी इनकी वजह से बहाव पर असर पड़ता है और पानी के दूषित होने में मछलियों की मौत तक हो जाती है। इतना ही नहीं, कूड़े के ढेर पर पड़ी प्लास्टिक की थैलियों को खाकर बहुसंख्य छुट्टा पशुओं की मृत्यु हो रही हैं। रिसाइकिल किए गए या रंगीन प्लास्टिक थैलों में ऐसे रसायन होते हैं जो जमीन में पहुँच जाते हैं और इससे मिट्टी एवं भू-जल विषैला बन सकता है। जिन उद्योगों में पर्यावरण की दृष्टि से बेहतर तकनीक वाली रिसाइक्लिंग ईकाइयाँ नहीं लगी होती उनमें रिसाइक्लिंग के दौरान पैदा होने वाले जहरीले धुएँ से वायु प्रदूषण फैलता है। प्लास्टिक एक ऐसा पदार्थ है जो सहज रूप से मिट्टी में घुल-मिल नहीं सकता। इसे अगर मिट्टी में छोड़ दिया जाए तो यह भूजल के स्रावण को रोक सकता है। इसके अलावा प्लास्टिक उत्पादों के गुणों के सुधार के लिए और उनको मिट्टी से घुलनशील बनाने के इरादे से जो रासायनिक पदार्थ और रंग आदि उनमें आमतौर पर मिलाए जाते हैं, वे भी स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। स्वास्थ्य विशेषज्ञों का कहना है कि प्लास्टिक मूल रूप से नुकसानदायक नहीं होता, लेकिन प्लास्टिक के थैले अनेक हानिकारक रंगों/रंजक और अन्य तमाम प्रकार के अकार्बनिक रसायनों को मिलाकर बनाए जाते हैं। रंग और रंजक एक प्रकार के औद्योगिक उत्पाद होते हैं जिनका इस्तेमाल प्लास्टिक थैलों को चमकीला रंग देने के लिए किया जाता है।

इनमें से कुछ रसायन कैंसर को जन्म दे सकते हैं और कुछ खाद्य पदार्थों को विषैला बनाने में सक्षम होते हैं। रंजक पदार्थों में कैडमियम जैसी धातुएँ स्वास्थ्य के लिए बेहद नुकसानदायक हैं। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में

मवेशियों द्वारा खाद्य पदार्थों के साथ पॉलीथिन बैग निगलना

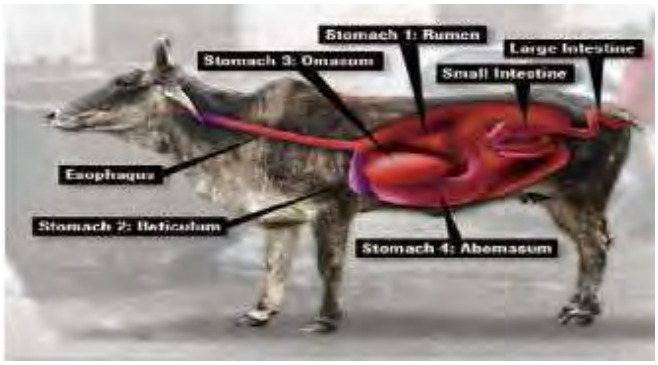


रोमंथी अथवा जुगाली करने वाले पशुओं का पाचन तंत्र

कैडमियम के इस्तेमाल से उल्टियाँ हो सकती हैं और दिल का आकार बढ़ सकता है। लम्बे समय तक जस्ता के इस्तेमाल से मस्तिष्क के ऊत्तकों का क्षरण होने लगता है।

### पॉलीथीन बैग निगलने से गाय-भैंस पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव

1. जुगाली करने वाले पशुओं के पाचन तंत्र में चार प्रमुख उपभाग क्रमशः रूमेन, रेटिकुलम, ओमेसम तथा एबोमेसम होते हैं। इन उपभागों में से रूमेन आकार में सबसे बड़ा (वयस्क गाय में लगभग 200 लीटर क्षमता का) होता है। वैसे तो रूमेन में सामान्य रूप में भी थोड़ी बहुत गैस बनती रहती है परन्तु जब पॉलीथीन की थैलियाँ पशु की ग्रासनलिका (इसोफेगस) में फँस जाती हैं तो पशु के ग्रास-नलिका का मार्ग अवरुद्ध हो जाने के कारण पशु की पाचन प्रणाली में गम्भीर रुकावट पैदा हो जाती है। इस दशा में रोमंथी पशुओं के पाचन तंत्र के अंदर का दबाव 6-7 गुणा तक बढ़ जाता है, डायफ्राम एवं फेफड़ों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है, श्वाँस गति तीव्र हो जाती है, फेफड़े संकुचित हो जाते हैं तथा शरीर के विभिन्न हिस्सों में ऑक्सीजन की आपूर्ति कम हो जाती है। अविलम्ब समुचित उपचार न मिलने की दशा में बहुतेरे पशु असमय मर जाते हैं।
2. जब छुट्टा पशु सड़कों, गलियों और मुहल्लों में यत्र-तत्र फेंका हुआ कचरा, फल, सब्जियाँ तथा उनके छिलके आदि खाते हैं तो वे इनके साथ पॉलीथीन की थैलियाँ भी निगल लेते हैं। इन थैलियों के पशु की जीभ के पिछले हिस्से तक पहुँच जाने की दशा में पशु इन्हें बाहर निकालने में असमर्थ हो जाता है। ऐसी स्थिति में पशु को 'ट्रामेटिक रेटिकुलाइटिस' हो जाता है तथा पशु बुखार, उत्पादन में कमी, पेट में दर्द, धनुष की तरह की दर्दयुक्त कमर, कब्ज तथा बार-बार हल्के अफारे का शिकार होने जैसी समस्याओं से प्रायः ग्रस्त होता रहता है।
3. मनुष्य के उपभोग के पश्चात पॉलीथीन थैले में शेष बचे खाद्य अवशेष समय बीतने के साथ सड़ते-गलते रहते हैं। जब इन सड़े-गले खाद्य पदार्थों को जानवर पॉलीथीन थैलियों के साथ जाने-अनजाने में निगल लेते हैं तो एक तो वे गम्भीर विषाक्तता तथा पाचन तंत्र की विभिन्न समस्याओं जैसेः दस्त, पेचिश, तथा कृमि संक्रमण से ग्रस्त हो जाते हैं। दूसरी ओर पॉलीथीन थैलियों का कचरा उनके रेटिकुलम में उत्तरोत्तर एकत्र हो कर गम्भीर अवरोध की स्थिति पैदा कर देता है। इस दशा में हमारे पशु में अति तीव्र अफरा रोग की स्थिति पैदा हो जाती है तथा सड़े-गले खाद्य पदार्थों के विघटन के कारण अधिक मात्रा में उत्पन्न हुई गैस के कारण पशु के फेफड़ों, डायफ्राम तथा हृदय पर अत्यधिक दबाव की स्थिति बन जाती है। फलस्वरूप, निरीह पशु अत्यधिक पीड़ा, रूमेन में दबाव की स्थिति श्वासावरोध तथा हृदयाघात के कारण असमय ही काल के गाल में समा जाता है।
4. पॉलीथीन में शेष बची हुई सड़ी-गली खाद्य सामग्री जुगाली करने वाले पशुओं के रुमेन में पहुँचने पर अत्यधिक मात्रा में विषैली गैसों तथा विषैले तत्वों यथाः कार्बन डाइआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, एमाइन्स तथा एमाइड्स के बनने में सहायक होती है। ये विषैली गैसें तथा विषैले तत्व अत्यधिक मात्रा में पशु के रक्त में पहुँच कर विषाक्तता पैदा करके भी पशु की मृत्यु का कारण बन जाते हैं।

हमारे देश में प्लास्टिक उद्योग की वृद्धि दर विश्व के अनेक देशों से बहुत अधिक है। भारत में पॉलीथीन तथा प्लास्टिक कचरे का पर्यावरणसम्मत निस्तारण, पुनर्चक्रण तथा प्रबंधन असंगठित एवं अत्यल्प प्रभावशाली होने के कारण हम अपने पर्यावरण, अपनी पृथ्वी, अपने भूजल व अन्य जल स्रोतों, शहरी तथा ग्रामीण जल निकास प्रणाली को, स्वयं अपने आप को, अपनी संततियों को तथा अपने पशुधन को निरंतर अपूरणीय दीर्घकालिक क्षति पहुँचाने के कुप्रयास में संलग्न हैं। इसके पीछे हमारे पास अपनी सुविधाभोगी तथा आलस्यवृत्ति में लगे रहने के अतिरिक्त कोई भी कारण नहीं है। हम सबने संभवतः यह शपथ खा रखी है कि हम अपने साथ बाजार से सामान क्रय करने के लिये कतई जूट, कपड़े या कागज का झोला लेकर कभी भी नहीं चलेंगे, चाहे हमारी अपनी ही आश्रयदाता धरती, हमारा पर्यावरण, जल संसाधन, पशुधन हम सब का तथा हमारी भविष्य की संतानों का चाहे जितना भी अहित क्यों न हो जाये। वस्तुतः, इस समस्या का निदान संयमित व प्रकृति हितकारी संरक्षण जीवन पद्धति को अपनाकर ही किया जा सकता है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्लास्टिक तथा पॉलीथीन के न्यूनतम उपयोग, संगठित पुनर्चक्रण तथा पुनर्उपयोग जैसे महत्वपूर्ण घटकों को अपनाने, सामूहिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर पर्यावरणीय जागरूकता को बढ़ावा देने, स्वयं के स्तर पर पॉलीथीन की थैलियों का कतई उपयोग न करने के संकल्प तथा शासकीय स्तर पर इस समस्या को हल करने के लिये कठोर विधायी प्राविधान व दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा ही इस समस्या का प्रभावी निस्तारण सम्भव है।

***॥ प्लास्टिक को कहें - नहीं॥***

# सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग का अनुकरणीय उदाहरणः ग्रामीण ज्ञान केन्द्र

डॉ0 राजेश सिंह *

बहुमाध्यम का प्रयोग कर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से जहाँ एक तरफ देश की सामाजिक संरचना में आमूल-चूल बदलाव आ रहा है, वहीं दूसरी ओर नित नवीन जानकारियाँ प्राप्त होने से देश की जनसंख्या का बड़ा हिस्सा जागरूक हो रहा है। फलस्वरूप, देश के बेरोजगार अब स्वरोजगार की तरफ अग्रसर हो रहे हैं, तथा ग्रामीण क्षेत्र से शहरों में पलायन की दर में कमी देखी जा रही है। आज सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी एवं जनमाध्यम की बदौलत सूचना विश्व एक वैश्विक ग्राम (ग्लोबल विलेज) बन गया है। बहुमाध्यमों ने लोगों तक पहुँच को इतना आसान बना दिया है कि विश्व स्तर पर प्रौद्योगिकी विकास तीव्र हो गया है।

संचार प्रौद्योगिकी से अवगत कराते शिक्षक

कम्प्यूटर संचालन का अभ्यास करता किसान

ग्रामीण क्षेत्रों का भी तकनीकी विकास तेजी से होने लगा है, ग्रामीण साक्षरता की स्थिति में इजाफा हो रहा है, विद्युत आपूर्ति की स्थिति चाहे जैसी हो लेकिन संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी की सुदृढ़ पहुँच ने जबरदस्त क्राँति ला दी है। इस प्रौद्योगिकी के उपयोग से देश में अनेक ग्रामीण केन्द्र संचालित हो रहे हैं जिनसे सामाजिक संरचना में उत्थान तो आ ही रहा है साथ ही आधुनिक तकनीकी के प्रति आयी जागरूकता ने समाज के ढाँचे को बदल दिया है यदि ग्रामीण ज्ञान केन्द्रों की कार्य प्रणाली को और चुस्त-दुरुस्त करके उसे और सुविधा एवं साधन सम्पन्न बना दिया जाय तो यह अत्यन्त सार्थक एवं अनुकरणीय पहल होगी। जीवन-यापन के लिए ग्रामीण ज्ञान केन्द्र परियोजना को मीडिया लैब एशिया, सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार के सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के कोर ग्रुप के समक्ष मार्च, 2006 को प्रस्तुत किया गया। परियोजना की प्रकृति शोध अभिकल्पन और विकास (आर डी एण्ड डी) का अनुप्रयोग कर उत्पादन क्षमता बढ़ाने हेतु थी। परियोजना के लिए रु. 94,05,000 की राशि मंजूर की गई।

इसका उद्देश्य सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के उपयोग के माध्यम से कृषि पद्धतियों, सामाजिक बुनियादी ढाँचे (शिक्षा, स्वास्थ्य आदि) और उभरते ज्ञान आधारित समाज के नए आयामों के लिए स्थानीय अधिकारियों के साथ सार्वजनिक बातचीत और एकीकृत ग्रामीण विकास के लिए रोजगार सृजन और आजीविका सुरक्षा प्रदान करना है। ग्रामीण ज्ञान केन्द्र के मुख्य उद्देश्य निम्नवत् हैं :

* संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके सामाजिक संरचना, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि में सुधार और स्थानीय अधिकारी एवं पंचायती अधिकारियों के सहयोग से नयी खोज की जानकारी का सही इस्तेमाल किस प्रकार से किया जाय जिससे आम आदमी के लिए रोजगार के अतिरिक्त अवसर सृजित कराये जा सकें।
* बहु-माध्यम (मल्टी मीडिया) साधनों का प्रयोग करके निम्नलिखित विषयों पर कार्यक्रम हेतु सीडी का निर्माण करना।
* कृषि, पशुपालन, कालीन उद्योग, स्थानीय कला एवं दस्तकारी (बाँस की टोकरी, लकड़ी के खिलौने इत्यादि) उद्यान-कृषि, चुनार की मूर्तिकला, सांस्कृतिक सम्पत्ति, बनारसी साड़ी, कढ़ाई, प्राथमिक उपचार, पत्थर पर मूर्तिकला, आयुर्वेदिक एवं पारंपरिक दवाएँ, लोक-साहित्य, संगीत एवं स्थानीय परम्परा, करघा एवं बुनाई।

*सहायक सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221 005.

बहु-माध्यम (मल्टी-मीडिया) सीडी में ज्यादा से ज्यादा चित्रों एवं चल-चित्रों का प्रयोग कर कच्चा माल, स्रोत, तकनीकी, जानकारी, संभावित बाजार और विभिन्न घटकों आदि की लागत के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

* निर्मित विभिन्न सीडी अनेक गाँवों में प्रदान की जाती हैं, जिनके उपयोग से स्थानीय कला का प्रचार एवं प्रसार किया जाता है और रोजगार के अतिरिक्त अवसर भी सृजित होते हैं। वेब पेज द्वारा इंटरनेट पर भी इनका प्रसार होता है। कृषि, पशुपालन, शिक्षा, स्वास्थ्य, लोक साहित्य एवं स्थानीय परम्परा जैसे विषयों पर केन्द्रित होता है।
* प्रशिक्षण कार्यक्रम, विचार-गोष्ठी, कार्यशालाएँ, ग्राम विकास क्लीनिक का आयोजन किया जाता है।
* विभिन्न ग्रामों में ग्रामीण ज्ञान केन्द्रों की स्थापना की गयी है जिससे स्थानीय लोगों को सूचना समय से प्रदान की जा सके। केन्द्रों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए व्यावसायिक ढाँचे का भी निर्माण हो रहा है।
* ग्रामीण कला, दस्तकारी, कृषि आधारित औषधि, हथकरघा उद्योग, सांस्कृतिक सम्पत्ति, पर्यावरण का परिरक्षण और प्रोत्साहन किया जा रहा है।

**किसान द्वारा स्वतंत्र उपयोग**

परियोजना समीक्षा और संचालन (पी आर एस जी) समूह समिति द्वारा वर्ष 2010 के बाद एकीकृत कृषि सेवा कार्यक्रम (आई ए एस पी) के ई-सागू के रूप में एक अन्य सेवा परियोजना के उपरोक्त उद्देश्यों में संलग्न किया गया है।

ई-सागू मंथन पुरस्कार 2007- भारत के विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ ''ई-सामग्री'' विजेता है, आईटी आधारित व्यक्तिगत कृषि सलाहकार प्रणाली के लिए आईआईटी, हैदराबाद द्वारा विकसित एक सॉफ्टवेयर है। इसका उद्देश्य उच्च गुणवत्ता व्यक्तिगत (खेत विशेष) कृषि विशेषज्ञ सलाह द्वारा प्रत्येक क्षेत्र का समय-समय पर कृषि उत्पादकता में सुधार करना है।

* ग्रामीण ज्ञान केन्द्र द्वारा विन्ध्य क्षेत्र में कार्यरत नौ केन्द्र :
    1. भारतीय लोक विकास एवं शोध संस्थान, बहुती, मिर्जापुर।

**ज्ञान साझा करता किसान**

    2. सुरभि शोध संस्थान, डगमगपुर, चुनार, मिर्जापुर।
    3. कृषि विज्ञान केन्द्र, दक्षिणी परिसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, मिर्जापुर।
    4. रामकृष्ण सेवाश्रम, रामपुर, कैलहट, मिर्जापुर।
    5. फोर्ड फाउन्डेशन, अन्नतपुर, मिर्जापुर।
    6. सेल्फ रिलायंस इनिसिएटिव्स सोसाइटी, धरमादेवा, मिर्जापुर।
    7. युवा ग्राम विकास समिति, बसनी, बाबतपुर, वाराणसी।
    8. काशी योग एवं मूल्य शिक्षा संस्थान, पसहीं कला, सोनभद्र।
    9. काशी योग एवं मूल्य शिक्षा संस्थान, रौप, सोनभद्र में स्थापित है।
* इन नौ केन्द्रों पर संचालन हेतु लैपटाप, कैमरा, प्रोजेक्टर, स्क्रीन, इन्टरनेट कनेक्शन (मॉडल) आदि उपकरण प्रदान किया गया है।
* इन केन्द्रों पर ग्रामीण ज्ञान केन्द्र द्वारा कृषि, पशुपालन, शिक्षा, स्वास्थ्य, लोक साहित्य एवं स्थानीय परम्परा जैसे विषयों पर तैयार सीडी के माध्यम से प्रतिदिन ग्रामीणों को उनकी आवश्यकता का कार्यक्रम दिखाया जाता है।
* मॉडम के माध्यम से विश्व में उपलब्ध अन्य सभी नई जानकारियाँ ग्रामीणों तक पहुचाँयी जाती हैं।
* ग्रामीण ज्ञान केन्द्र द्वारा समय-समय पर विश्वविद्यालय के अनुभवी अनुसंधानकर्ताओं द्वारा गाँवों में स्थापित केन्द्रों पर विचार-गोष्ठियों का आयोजन कराया जाता है।
* ग्रामीण केन्द्रों द्वारा कृषि, कढ़ाई-सिलाई, कम्प्यूटर आदि विषयों पर दस दिवसीय कार्यशालाओं का आयोजन ग्रामीणों के लिए कराया गया।
* कढ़ाई-सिलाई के नये सॉफ्टवेयर (चिप की) की जानकारी दी गयी है जिससे बहुत से ग्रामीणों की सोच साकारात्मक हुई, आगे बढ़ने एवं जीविकोपार्जन के अवसर प्राप्त हुए और उनके निराशा भरे जीवन में खुशियाँ भर गयीं।

* किसानों की खेती सम्बन्धित समस्याओं (फसल में रोग, अच्छी उपज न प्राप्त होना, लाभदायक फसल-चक्र आदि) का ऑनलाइन दो दिनों के अन्दर किसानों को (कृषि विशेषज्ञों तक पहुँचने के लिए बिना किसी आर्थिक व समय व्यर्थ किये हुए) विश्वविद्यालय के कृषि विशेषज्ञों द्वारा सर्वोत्तम सलाह प्रदान की जाती है।

खेत में संचार प्रौद्योगिकी

* ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को इस कार्यक्रम के तहत पंजीकृत किया जा रहा हैं आज तक लगभग 1400 किसानों को पंजीकृत किया गया है तथा 9500 समस्याओं का हल प्रदान किया गया है।
* उपरोक्त के अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में चयनित 9 ज्ञान केन्द्रों में पंजीकृत किसानों को मंडी और मौसम संबंधी जानकारी अद्यतन करना जोड़ा गया है।

वर्तमान में मौजूदा 9 केन्द्रों के माध्यम से ई-सागू कार्यक्रम को लागू करने में ग्रामीण ज्ञान केन्द्र लगे हुये हैं। ई-सागू सॉफ्टवेयर की स्थापना और अनुकूलन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में किया गया है और ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों को इस कार्यक्रम के तहत पंजीकृत किया जा रहा है। आज लगभग 1400 किसानों को पंजीकृत किया गया है जो ई-सागू सॉफ्टवेयर के तहत लाभान्वित हो रहे हैं। वर्तमान में इस परियोजना के अन्तर्गत विन्ध्य, सोनभद्र, मिर्जापुर, वाराणसी जिले शामिल हैं। वास्तव में ग्रामीण ज्ञान केन्द्र, द्विमार्गी संचार प्रणाली पर आधारित है।

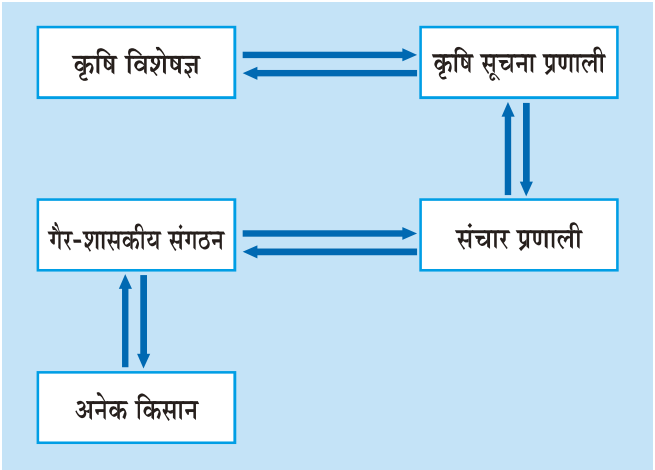


कृषि विशेषज्ञ एवं किसान अन्तर्सम्बन्ध का रेखाचित्र

ग्रामीण ज्ञान केन्द्रों की सकारात्मक पहल से आ रही जागरूकता से ग्रामीण क्षेत्रों के शिक्षित लोगों में इसे और साधन एवं सुविधा सम्पन्न बनाने पर जोर देना शुरु किया है। विशेषज्ञ भी मानते हैं कि यदि इस प्रकार के ग्रामीण ज्ञान केन्द्रों को उन्नत एवं आधुनिक सॉफ्टवेयरों से जोड़कर इसके प्रति लोगों को प्रशिक्षित किया जाय तो देश के सामाजिक विकास में सचमुच एक नवीन क्राँति का संचार हो सकेगा।

## समिति की विज्ञान लोकप्रियकरण गतिविधियाँ

**केन्द्रीय विद्यालयों के पुस्तकालयों के लिए विज्ञान-गंगा**

केन्द्रीय विद्यालय संगठन ने विज्ञान-गंगा की उपयोगिता को देखते हुए अपने समस्त केन्द्रीय विद्यालयों के पुस्तकालयों के लिए विज्ञान-गंगा को अनिवार्य कर दिया है और अपने सभी विद्यालयों को इसकी सदस्यता ग्रहण करने का निर्देश जारी किया है।

**बाल विज्ञान साहित्यकार मुहम्मद खलील का व्याख्यान**

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रकाशन समिति (भौतिकी प्रकोष्ठ) के तत्वावधान में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के पूर्व वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं आत्माराम पुरस्कार से सम्मानित प्रसिद्ध बाल विज्ञान साहित्यकार मुहम्मद खलील का लोकप्रिय विज्ञान व्याख्यान राष्ट्रभाषा हिन्दी में आयोजित किया गया। ये व्याख्यान छात्रों में वैज्ञानिक अभिरुचि पैदा करने के उद्देश्य से दिनांक 29 अगस्त, 2013 को सेन्ट्रल हिन्दू ब्वायज स्कूल, कमच्छा तथा 30 अगस्त, 2013 को सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल, गुरुबाग, वाराणसी में आयोजित किये गये।

**सनबीम इंग्लिश स्कूल भगवानपुर में वाद-विवाद प्रतियोगिता**

हिन्दी प्रकाशन समिति (भौ.प्र.) द्वारा सनबीम इंग्लिश स्कूल, भगवानपुर, वाराणसी में कक्षा 9 से 12 तक के छात्र-छात्राओं में वैज्ञानिक अभिरुचि पैदा करने एवं विज्ञान शिक्षा में हिन्दी को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से 'राष्ट्रभाषा हिन्दी में विज्ञान शिक्षा' विषयक वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन दिनांक 13 सितम्बर, 2013 को सनबीम इंग्लिश स्कूल के सभागार में किया गया। इसमें विजेता प्रतिभागियों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं सांत्वना पुरस्कार प्रदान किया गया।

**- डॉ. दया शंकर त्रिपाठी,** हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221 005.

# तंत्रिकातन्त्र के असाध्य पार्किन्सन रोग के निदान में कारगर : केवाँच

सत्येन्द्र कुमार यादव[1], जय प्रकाश[2], शिखा चौहान[3] एवं डॉ. सूर्य प्रताप सिंह[4] *

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण हमेशा ही संवेदनशील विषय रहा है। पारिस्थितिकीय संतुलन एवं पर्यावरण संरक्षण के उल्लेख महाभारत, रामायण, वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता एवं पुराणों जैसे प्राचीन ग्रन्थों में प्रचुरता से मिलते हैं। इन ग्रन्थों के अनुसार सार रूप से कहा जाय तो प्रकृति की रचना पाँच तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से हुई है। हमारी वसुन्धरा अनेक खनिज सम्पदाओं से भरी पड़ी है।

हमारी आधुनिक सभ्यता निरन्तर बढ़ते औद्योगीकरण, प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन तथा ऊर्जा के प्रचुर उपयोग पर आधारित है। किन्तु इन कारणों से पर्यावरण प्रदूषण इतना अधिक बढ़ गया है कि भविष्य में मानव अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है। इसलिए समस्या के सार में पर्यावरण प्रदूषण एक महत्वपूर्ण चिन्ता का विषय बन गया है।

भारत या विश्व की आबादी में लगातार वृद्धि हो रही है, परन्तु कृषि योग्य भूमि में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होती है जिसकी वजह से इस सीमित कृषि योग्य भूमि पर बढ़ती हुई आबादी के भरण पोषण का दायित्व रहता है। इसकी वजह से अधिकाधिक पैदावार प्राप्त करने के उद्देश्य से पौधों को रोगमुक्त करने के लिए अत्यधिक मात्रा में कीटनाशक, शाकनाशक एवं विभिन्न प्रकार के रसायनों का उपयोग किया जाता है जिससे काफी मात्रा में प्रदूषण वातावरण में फैल जाता है। इसकी चपेट में बहुत से किसान और गैर-किसान आ जाते हैं। इन कीटनाशकों एवं शाकनाशकों में मुख्यतः रोटिनोन, पैराक्वेट, मनेब, साइपरमेथ्रिन आदि का उपयोग किया जाता है। आधुनिक शोध से पता चला है कि इन रसायनों के अत्यधिक सेवन से काफी भयंकर रोगों का जन्म होता है। इन्हीं सबमें एक तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित रोग है जिसका नाम पार्किन्सन रोग है। तंत्रिका तन्त्र के इस लाइलाज बीमारी पार्किन्सन के उपचार में जंगलों अथवा खेतों के आस-पास पायी जाने वाली 'केवॉच' जिसे 'कपिकच्छू' कहते हैं, का उपयोग काफी कारगर साबित होता है।

**पार्किन्सन रोग-** पार्किन्सन रोग तंत्रिका तंत्र का रोग है और यह रोग औद्योगिक देश में पूरी आबादी का 30 प्रतिशत तक है। अधिकांशतः यह रोग 60 वर्ष की उम्र के बाद प्रारम्भ होता है। इस रोग में मस्तिष्क की वे कोशिकाएँ नष्ट होने लगती हैं जो 'डोपामिन' पैदा करती हैं। उन कोशिकाओं को डोपामिनार्जिक तंत्रिका कहते हैं। यह तंत्रिका मस्तिष्क के मध्य क्षेत्र में सबस्टेन्सीया नाइग्रा भाग में पायी जाती है। इस रोग में हाथ पैर में कम्पन होने लगता है, गतिशीलता कम हो जाती है। आंशिक लकवा हो जाता है और अत्यधिक कमजोरी आ जाती है। सबसे पहले इस बीमारी के बारे में एक अंग्रेज डाक्टर जेम्स पार्किन्सन ने सन् 1817 में विस्तार से वर्णन किया।

पार्किन्सन रोगग्रस्त व्यक्ति

अतः इन्हीं के नाम पर इस बीमारी का नाम 'पार्किन्सन रोग' पड़ा। पार्किन्सन रोग मुख्यतः डोपामिन मस्तिष्क के सबस्टेन्सीया नाइग्रा क्षेत्र में कमी के कारण होती है। डोपामिन का स्राव एक विशेष प्रकार की तंत्रिका तंतु करती है। उम्र के साथ एवं अत्यधिक प्रदूषण की वजह से यह तंत्रिका तंतु नष्ट होने लगती है जिसकी वजह से डोपामिन का स्तर काफी गिर जाता है और इस रोग का लक्षण प्रकट होने लगता है।

इस डोपामिनार्जिक तंत्रिका तंतु के नष्ट होने का मुख्य कारण स्वतंत्र मूलक (फ्री रेडिकल्स) होते हैं। यह इन प्रदूषकों पैराक्वेट, मनेब आदि प्रदूषकों की वजह से उत्पन्न होते हैं। श्वसन के दौरान अंतःश्वसन में आक्सीजन को अन्दर लेते हैं जिससे कोशिकाओं में आक्सीकरण होता है और ऊर्जा पैदा होती है। कोशिकाओं का क्षय होता है और नई परन्तु पहले से कमजोर कोशिकाएँ बनती रहती हैं। जितना ज्यादा स्वतंत्र मूलक बनेंगे उतना ही अधिक विकृति और विकार होंगे। 1- मिथाइल-4- फिनाइल 1,2,3,6- टेट्रा हाइड्रोपाइरिडिन (एम.पी.टी.पी.), पैराक्वेट, साइपरमेथ्रिन, आदि कीटनाशक के रूप में उपयोग में लाये जाते हैं।

यदि ये शरीर में अवशोषित होते हैं तो ब्लड ब्रेन बैरियर पार कर मस्तिष्क की मध्य क्षेत्र की कोशिकाओं तक पहुँच जाते हैं और वहाँ तक पहुँच कर माइट्रोकान्ड्रिया के इलेक्ट्रान ट्रान्सपोर्ट शृंखला में काम्पलेक्स प्रथम से जुड़कर इसके इलेक्ट्रान को स्वतंत्र कर देते हैं जो कि अधिकाधिक मात्रा में निकलकर आक्सीजन के अणु ($O_2$) का अपूर्ण ऑक्सीकरण से अतिक्रियाशील मूलकों की एक शृखंला का निर्माण होता है। इससे निर्मित स्वतंत्र मूलकों $O_2$, $H_2O_2$, $OH^{2-}$ के अलावा जैव

*[1,2]शोध छात्र, [3]शोध छात्रा, [4]उपाचार्य, जैवरसायन विभाग, विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी- 221 005.


ISSN 2231-2455

रासायनिक महत्व के कुछ अन्य स्वतंत्र मूलक भी पैदा होते हैं, जैसे सिगलेट आक्सीजन ($O_2$), हाइड्रोपराक्सीमूलक ($HOO^-$) अतिक्रियाशील होते हैं। प्रायः सभी प्रकार की जैव परमाणुओं जैसे प्रोटीन, लिपिड्स कार्बोहाइड्रेट, न्यूक्लिक अम्ल आदि को नष्ट कर देते हैं। इन स्वतंत्र मूलकों की क्रिया से भी नये स्वतंत्र मूलक बनते रहते हैं और यह स्वतंत्र मूलक डोपामिनार्जिक तंत्रिका तंत्र की कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं जिसकी वजह से डोपामिन का स्राव कम हो जाता है। वृद्धावस्था में अधिक ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस होता है, जिसकी वजह से स्वतंत्र मूलकों का जन्म होता है और पार्किन्सन रोग का कारण बनते हैं जिसकी वजह से यह रोग वृद्धावस्था में अक्सर पाया जाता है।

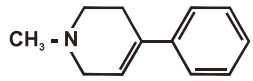


एम.पी.टी.पी.

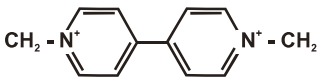


पैराक्वेट

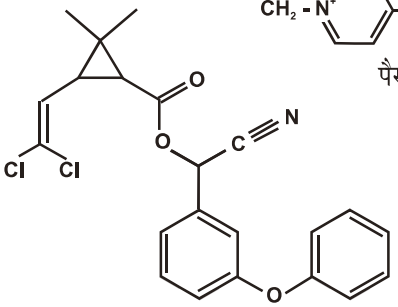


साइपरमेथ्रिन

**पार्किन्सन रोग का बचाव-** वर्तमान समय में आधुनिक दवा जो पार्किन्सन विरोधी के रूप में लायी जाती है। अधिकाधिक उपयोग और अधिक समय तक इन आधुनिक दवाओं के प्रयोग से दवा प्रेरित गतिशीलता में कमी बहुतायत मरीजों में पायी जाती है। उन्नत पार्किन्सन की अवस्था में डिस्किनेसिआर हो जाने पर इसका इलाज काफी खर्चीला एवं कठिन हो जाता है। इसलिए विभिन्न प्रकार की पद्धतियों का उपयोग भारत की चिकित्सा पद्धति में पायी जाती है। उनमें से भारत में एक सबसे प्रचलित चिकित्सीय पद्धति आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति है। इनमें विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधों को प्रयोग में लाया जाता है। इसमें सबसे विशेष महत्वपूर्ण बात यह होती है कि इसमें पार्श्व प्रभाव की कोई सम्भावना नहीं रहती है। अतः इस पद्धति का उपयोग करना बहुत ही सुरक्षित एवं काफी किफायती पड़ता है। नये शोधों से पता चलता है कि विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधे पार्किन्सन रोग में काफी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कपिकच्छु, अश्वगंधा, ब्राह्मी आदि अनेक प्रकार के औषधीय पौधे पाये जाते हैं। यह औषधीय पौधे काफी महत्वपूर्ण होते हैं क्योकि पार्किन्सन रोग मुख्यतः अधिकाधिक मात्रा में स्वतंत्र मूलकों के कारण होते हैं। इन स्वतंत्र मूलकों का प्रभाव कम करने के लिए मुख्यतः प्रति-आक्सीकारक (anti-oxidant) प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। ये

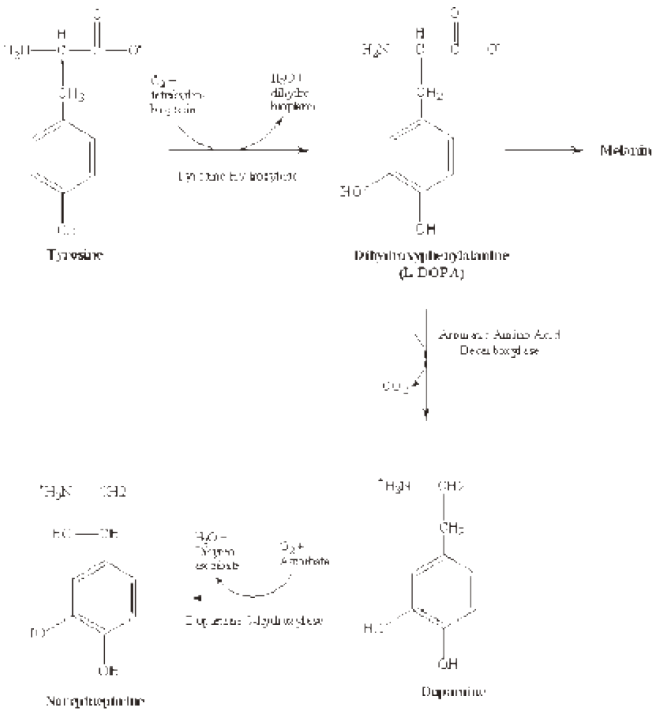


**डोपामीन का संश्लेषण**

स्वतंत्र मूलकों का प्रभाव कम कर देते हैं या पूरी तरह समाप्त कर देते हैं।

कपिकच्छू फैबेसी कुल का औषधीय पौधा है। आधुनिक शोधों से पता चला है की इसका बीज पार्किन्सन रोग ठीक करने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस पौधे के बीज में प्रचुर मात्रा में प्रति-आक्सीकारक पायी जाती है। नये शोधों से यह भी पता चला है इस बीज के अन्दर अत्यधिक मात्रा मे एल-डोपा पाया जाता है जो कि मस्तिष्क में पहुँचकर डोपामिन में बदल जाता है और पार्किन्सन रोग ठीक करता है। डोपामीन के संश्लेषण की प्रक्रिया को चित्र में दर्शाया गया है। केवल इसी पौधे में एल-डोपा की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है। एल-डोपा के साथ-साथ अन्य प्रकार के रसायन जैसे ट्राइटरपिंस तथा स्टीरोल (बीटा-सीटोस्टेराल, अर्सोलिक एसिड) इत्यादि पायी जाती हैं। इसके बीज में विभिन्न प्रकार के एमिनो एसिड, मिथियोनिन, टाइरोसिन, लाइसिन, ग्लाइसिन, एस्पार्टिक एसिड, ग्लूटोमिक एसिड, ल्यूसिन एवं सिरीन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के फैटी एसिड और कार्बोहाइड्रेट प्रमुखता से मिलते

**कपिकच्छु का बीज एवं फली**

हैं और स्वतंत्र मूलकों को कम करने में महत्वपूर्ण होते हैं। अनेक प्रकार के अन्य रसायन भी इस पौधे में पाये जाते हैं जिनके बारे में अभी भी अनुसंधान चल रहे हैं क्योंकि डोपामिन प्रदान करने के अलावा यह तंत्रिकातंत्र को नष्ट होने से बचाने में भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यह पौधा पार्किन्सन रोग ठीक करने में महत्वपूर्ण औषधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। चूँकि इसे अधिक दिन तक सेवन करने से मरीज को ब्रेडीकाइनेशिया भी नहीं होता है, अतः यह औषधि पूरी तरह सुरक्षित है और काफी कारगर दवा के रूप में इसका इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके इस गुण को देखते हुए इस पर आगे भी शोध करने की आवश्यकता है। कपिकच्छु से आगे और नई औषधियों को बनाने की प्रचुर संभावना है जिनके लम्बे समय तक सेवन करने से मरीजों को दवा प्रेरित ब्रेडीकाइनेशिया होने की बिल्कुल संभावना नहीं होगी।

अतः समाज के लिए खासतौर से पार्किन्सन पीड़ित मरीजों के लिए यह औषधीय पौधा एक प्रकार से वरदान साबित हो सकता है। हमारे वैज्ञानिक समाज को भी इसकी तरफ ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही हमारे देश की जनता को भी ध्यान देने की जरूरत है ताकि हमारे वृद्ध वर्ग के लोग अपने जीवन को खुशहाल तरीके से जी सकें।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि पार्किन्सन रोग भगवान का दिया हुआ अभिशाप नहीं है बल्कि विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों एवं आजकल के तनाव के कारण विभिन्न प्रकार का ऑक्सीडेटीव स्ट्रेस (Oxidative stress) हो जाता है। इसकी वजह से स्वतंत्र मूलकों का जन्म होता है, और ये स्वतंत्र मूलक मस्तिष्क में पहुँचकर हमारे तंत्रिका तंतु को नष्ट कर देते हैं और जिससे पार्किन्सन रोग होता है। कपिकच्छ्छू के बीज में प्रति-आक्सीकारक बहुतायत मात्रा में पायी जाती है। इसके बीज में पर्याप्त मात्रा में एल-डोपा भी पाया जाता है जिसकी वजह से इसका बीज पार्किन्सन रोग ठीक करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। अतः कपिकच्छु एक मूल्यवान औषधीय पौधा है जिससे आधुनिक दवा बनाकर समाज के कल्याण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

आज बहुत से संस्थानों में तंत्रिका तंत्र से संबंधित रोगों मुख्यतः पार्किंसन रोग के बारे में और इसके उपचार हेतु गहनता से शोध-कार्य जारी है। ये शोध संस्थान जैसे- राष्ट्रीय मस्तिष्क अनुसंधान संस्थान (एन.बी.आर.सी.), गुड़गाँव; भारतीय विष अनुसंधान संस्थान (इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टाक्सीकोलॉजिकल रिसर्च), लखनऊ और राष्ट्रीय मस्तिष्क अनुसंधान संस्थान (एन.बी.आर.आई.), मनेसर, इण्डिया आदि में शोध कार्य प्रगति पर है।

## प्रो. पंचानन माहेश्वरी स्मृति व्याख्यान एवं प्रो. जितेन्द्र पी. खुराना का सम्मान

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में गत 29 जनवरी 2013 को दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. जितेन्द्र पी. खुराना का वनस्पति विज्ञान के पितामह प्रो. पंचानन माहेश्वरी की स्मृति में व्याख्यान सम्पन्न हुआ। प्रो. खुराना ने प्रो. माहेश्वरी के योगदानों की चर्चा करते हुए कहा कि इस महान भारतीय वनस्पति वैज्ञानिक ने हिमालयी क्षेत्र की अज्ञात वनस्पतियों को खोज-खोजकर उनका वैज्ञानिक विवरण तैयार कर भारतीय वनस्पति विज्ञान को समृद्ध करने का काम किया।

**बायें से प्रो. जे.पी. खुराना, प्रो. एस.सी. लखोटिया एवं प्रो. एल.सी. राय**

प्रो. खुराना ने वर्तमान समय में जीनों के बदलाव और उन पर हो रहे अनुसंधानों पर चर्चा की और कहा कि जीनों के परिवर्तन एवं विभिन्न फसली वनस्पतियों पर इस दिशा में हो रहे अनुसंधान से वैज्ञानिकों ने अनेक वनस्पतियों की जीन कुण्डली का अध्ययन कर उनके गुण-धर्म को बदलने का रास्ता खोज लिया है। आज हम इस विधा के बल पर नई फसलों को विकसित करने और अन्य अनेक उपयोगी रोग निवारक और उपचारक गुणों से युक्त करने में सक्षम हो सके। भारत में धान की खेती में होने वाले जल व्यय पर उन्होंने बतलाया कि जल्द ही हम कम पानी में पैदा होने वाली धान की प्रजातियों के विकास में सक्षम हो जायेंगे।

इस अवसर पर जन्तु विज्ञान विभाग के इमेरिटस प्रोफेसर एस.सी. लखोटिया ने प्रो. खुराना को भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस का मानद सम्मान-पत्र प्रदान कर सम्मानित किया। आरम्भ में वनस्पति विज्ञान विभाग के प्रो. लाल चन्द्र राय ने प्रो. खुराना का स्वागत कर उनकी उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत किया।

प्रस्तुति : **जगनारायण** (हिन्दी विज्ञान संचारक)
श्रीविश्वनाथ मंदिर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221 005 (उ.प्र).

# जरूरी है मधुमेह में सतर्कता

मंजुलिका लक्ष्मी *

मनुष्य के शरीर में बह रहे रक्त में शर्करा का बढ़ा हुआ स्तर-यही है डाइबिटीज-मधुमेह अथवा 'शुगर' की बीमारी। एक ऐसा रोग जिसने आज दुनिया के हर कोने में लोगों को अपने क्रूर दुष्चक्र में फँसा रखा है। आज केवल भारत में 61 मिलियन से अधिक लोग मधुमेहग्रस्त हैं और मधुमेह की व्यापकता एक नई महामारी के रूप में देखी जा रही है। अनुमान है कि 2030 तक यह संख्या 100 मिलियन को पार कर जायेगी। न केवल प्रौढ़ और वृद्धावस्था को छूने वाले लोग वरन् बहुत कम वय वाले लोगों में भी मधुमेह रोग जड़ें जमा रहा है। इसका सर्वप्रमुख कारण तो आज के सामान्य लोगों की जीवनशैली में भारी परिवर्तन है। वर्तमान काल में भोजन, निद्रा और कार्यशैली तीनों में पूर्वकाल की अपेक्षा आमूलचूल परिवर्तन ही मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदयाघात और अनिद्रा जैसे रोगों को खुला आमंत्रण देते हैं। इन सब में मधुमेह की व्यापकता आज सर्वाधिक है।

**उन देशों की सूची जिनमें 2000 से 2030 के मध्य मधुमेहियों की संख्या सर्वाधिक अनुमानित है –**

| सन् 2000 | | सन् 2030 | |
|---|---|---|---|
| भारतवर्ष | 317 | भारतवर्ष | 794 |
| चीन | 208 | चीन | 423 |
| अमरीका | 177 | अमरीका | 303 |
| इण्डोनेशिया | 84 | इण्डोनेशिया | 213 |
| जापान | 68 | जापान | 139 |
| पाकिस्तान | 52 | पाकिस्तान | 173 |
| रूस | 46 | रूस | 111 |
| ब्राजील | 46 | ब्राजील | 89 |
| इटली | 43 | इटली | 78 |
| बाँगलादेश | 32 | बाँगलादेश | 67 |

**( मधुमेहियों की संख्या लाख में दी गई है )**
**( मधुमेहिका के अंक जनवरी-मार्च 2012 पर आधारित )**

**अग्न्याशय**

जनसामान्य जिस रोग को मधुमेह अथवा डाइबिटीज के रूप में जानता है उसे अंग्रेजी में डाइबिटीज मेलाइटस (Diabetes Mellitus) कहा जाता है। इसको चिकित्सकों ने दो प्रकारों में विभाजित किया है- 'टाइप वन' और 'टाइप टू'। 'टाइप वन' मधुमेह का वह प्रकार है जिसमें अग्न्याशय (पैन्क्रियाज) अपना इंसुलिन उत्पादन का कार्य नहीं कर पाता अर्थात् रोगी के शरीर में इंसुलिन बनता ही नहीं। ऐसी अवस्था में उसे कृत्रिम रूप से इंसुलिन देकर शरीर की कार्यप्रणाली को सुचारु रखने का प्रयास किया जाता है। रोग का यह प्रकार मुख से लेने वाली दवाओं से नियंत्रित नहीं किया जा सकता। इसी कारण इस 'टाइप वन' प्रकार को इंसुलिन निर्भर (Insulin dependent) नाम दिया गया है। यही प्रकार बाल्यावस्था का मधुमेह (Juvenile diabetes) भी कहलाता है क्योंकि अग्न्याशय की यह इंसुलिन उत्पादन की अक्षमता कभी-कभी जन्म से ही विद्यमान होती है।

इससे भिन्न 'टाइप टू' मधुमेह का वह प्रकार है जो पूर्णतया इंसुलिन निर्भर नहीं है, इसी कारण इसे 'अनिर्भर' (Non insulin dependent) प्रकार कहा गया है। इस प्रकार में अग्न्याशय इंसुलिन का उत्पादन तो करता है परन्तु पर्याप्त मात्रा में नहीं या जो इंसुलिन उत्पादित होता है वह भी ठीक से कार्य नहीं कर पाता। इसी कमी को संपूरित करने का कार्य औषधियाँ करती हैं। इन औषधियों की भूमिका होती है शरीर में अपर्याप्त मात्रा में पैदा होने वाली इंसुलिन के उत्पादन तथा उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाना। इस बीमारी में शर्करा, रक्त में ही संचरण करती रह जाती है और कोशिकाओं में प्रवेश नहीं कर पाती। यहाँ यह बताना उचित होगा कि इंसुलिन एक उत्प्रेरक की भाँति शर्करा को कोशिका में पहुँचाने की प्रक्रिया को सुगम बनाती है। इंसुलिन अणुओं की भी सहायता से शर्करा रक्त में प्रवेश कर पाती है।

*वाई 2 सी- 115/6, त्रिवेणीपुरम, झूँसी, इलाहाबाद- 211 019.

मधुमेह का एक अन्य भेद है जिसे डाइबिटीज इन्सिपिडस (Diabetes Insipidus) कहा गया है। रोग के इस प्रकार में शर्करा रक्त में पहुँचने के बदले मूत्र के साथ विसर्जित होती रहती है। इस मधुमेह की चिकित्सा सामान्य से भिन्न है।

गर्भवती स्त्रियों में भी यदा-कदा मधुमेह रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इसे गर्भावस्थाकालिक मधुमेह (Gestational diabetes) कहा गया है। यह गर्भावस्था के किसी भी चरण में प्रकट हो सकती है। सामान्यतः गर्भवती के खान-पान द्वारा ही उसके मधुमेह को नियंत्रित करने के प्रयत्न किए जाते हैं। यदि कभी यह नियंत्रण कठिन हो जाता है तब उस अवस्था में भी इंसुलिन का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है अन्यथा मधुमेह की स्थिति गर्भस्थ शिशु के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। शिशु के जन्मोपरांत मधुमेह के ये सामयिक लक्षण स्वयं लुप्त हो जाते हैं। ऐसी गर्भवती स्त्रियाँ अपने हर गर्भधारण काल में मधुमेह से ग्रस्त हो जाती हैं और प्रसूति के बाद सामान्य हो जाती हैं। अपवादस्वरूप कुछ स्त्रियों में शिशु के जन्म के बाद भी मधुमेह नहीं जाता और ऐसी स्त्रियों को एक सामान्य मधुमेह रोगी की भाँति पूरी आयु इसके साथ ही व्यतीत करनी पड़ती है।

मधुमेह के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण है यह जानना कि रोगग्रस्तता के उपरांत रोगी की जीवन शैली में क्या उपयुक्त परिवर्तन किए जायें कि वह एक सामान्य जीवन व्यतीत कर सके। अन्य सामयिक रोगों की भाँति मधुमेह का प्रकोप अल्पकालिक नहीं होता। एक बार जीवन में आगमन के बाद इसे नियंत्रित तो रखा जा सकता है पर इससे मुक्ति नहीं पाई जा सकती। अतः जीवन शैली में अपेक्षित सुधार (क्योंकि जीवन शैली में अस्वास्थ्यकर और अप्राकृतिक आदतें ही तो इस रोग को जन्म देती हैं) अत्यावश्यक है।

मधुमेह विशेषज्ञ रोगी को संतुलित जीवन बिताने के पाँच स्वर्णिम नियमों - व्यायाम, तनावमुक्ति, शरीर भार पर नियंत्रण, स्वास्थ्यकर भोजन और वार्षिक चिकित्सीय जाँच के पालन का परामर्श देते हैं। इन सूत्रों के नियमित पालन से कोई भी मधुमेहग्रस्त व्यक्ति एक सामान्य और क्रियाशील स्वस्थ जीवन बिता सकता है।

**व्यायाम :** जैसा कि वरीयता क्रम में सर्वप्रथम आने से ही स्पष्ट मधुमेही के जीवन में व्यायाम की उपयोगिता सबसे अधिक है। प्रतिदिन लगभग तीस मिनट का गहन शारीरिक श्रम/व्यायाम शरीर भार को नियंत्रित रखने और अतिरिक्त कैलोरी को जला कर शरीर को स्फूर्तिवान बनाये रखने की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है। यह शारीरिक व्यायाम तेजगति से टहलने, साइकिल चलाने, तैरने या अन्य आसनादि के रूप में किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सामान्य जीवन की दैनंदिन क्रियाओं में भी आराम वाली जीवनशैली न अपना कर अपनी शक्ति भर शारीरिक रूप से क्रियाशील बने रहना सदैव हितकर रहता है। उदाहरण के लिए, छोटे-मोटे कार्यों के लिए वाहन के स्थान पर पैदल चल कर जाना, लिफ्ट की जगह सीढ़ियों का उपयोग किसी और से न कह कर स्वयं उठ कर अपने कार्य कर लेना आदि।

**तनाव मुक्ति :** एक मधुमेही के लिए तनाव से यथासंभव दूर रहना परमावश्यक है। तनावग्रस्तता तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए हानिकर है परंतु मधुमेहग्रस्त, हृदयरोगी या रक्तचापग्रस्त रोगियों के लिए तो मानसिक तनाव अत्यधिक घातक है। इससे मुक्ति पाने के लिए ध्यान, मधुर संगीत, अपने निकटस्थ व्यक्तियों और परिवार के सदस्यों के साथ स्नेह और संवेदनाओं का आदान-प्रदान आदि ऐसे सरल अभ्यास हैं जिनसे व्यक्ति तनाव की स्थिति से मुक्ति पा सकता है। इसके अतिरिक्त निद्रा के समय का संतुलन बनाना भी अत्यावश्यक है। सामान्यतया आठ घंटों की निद्रा मधुमेही के लिए अत्यावश्यक मानी जाती है। जहाँ आठ घंटों से कम सोना उसके लिए हानिकारक है वहीं अधिकांश समय सोते रहना, निद्राश्वासरोध या छह घंटे से कम सोना भी मधुमेहग्रस्तता की आशंका को बढ़ा देता है।

**आदर्श भोजन :** मधुमेह से बचने का तीसरा स्वर्णिम नियम है अपने भोज्य पदार्थों को नियंत्रित रखना। जहाँ तक मधुमेह की उत्पत्ति के प्रमुख कारणों का प्रश्न है, भोजनशैली पर ही सर्वाधिक उत्तरदायित्व आता है। यदि आयु और शरीर भार का ध्यान रखकर स्वास्थ्यकर खाद्य वस्तुयें अपनाई जायें तो इस रोग के प्रकोप को आजीवन नियंत्रण में रखा जा सकता है। इसमें मुख्य है भोजन को तीन मुख्य आहारों और तीन अल्पाहारों में विभाजित करना। इनके मध्य लगभग ढाई तीन घंटे का अंतराल अपनी सुविधानुसार रखा जा सकता है। परंतु एक बार में अधिक खाना और लंबे समय तक निराहार रहना इसे रोग में बहुत हानिकर सिद्ध होता है। पहले घर के बड़े बूढ़े हमेशा कहते थे कि भूख से एक रोटी कम खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है। यह नियम एक मधुमेही पर ही नहीं सामान्य रूप से सभी पर सर्वदा लागू होता है। इस रोग में अधिक खाना ही नहीं अधिक पीने पर भी नियंत्रण अपेक्षित है। भोजन में परिष्कृत कार्बोहाइड्रेट और वसा का अंश कम से कम होना तथा रेशेदार पदार्थों और सम्मिश्र कार्बोहाइड्रेट को सम्मिलित करना नितान्त उपयोगी है। इसके अतिरिक्त चिकित्सक भोजन में हरी सब्जियों और फलों-विशेष रूप से सेव को सम्मिलित करने की सलाह अनिवार्य रूप से देते हैं। शर्करा और संतृप्त वसा के सेवन पर नियंत्रण रखना तो मधुमेह रोगी की दिनचर्या का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। चिकित्सकों के अनुसार रोगी के लिए 55% से 60% तक कैलोरी सम्मिश्र कार्बोहाइड्रेट से, 5% से 20% तक प्रोटीन से तथा 20% तक वसा से प्राप्त करना आदर्श स्थिति है। जो खाद्य पदार्थ धीरे-धीरे पचने वाले होते हैं वे रक्त में शर्करा स्तर को धीरे-धीरे बढ़ाते हैं। वसा के लिए धान की भूसी का तेल या मूँगफली का तेल अन्य तेलों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त है। ऐसी मिठाइयाँ जो 'शुगर फ्री' से निर्मित होती हैं वे भी यदि खोयायुक्त या घी की तली हुई हैं तो उनकी कैलोरी बहुत अधिक होती है। ऐसी स्थिति में किसी तली मिठाई के स्थान पर अनाज यथा-बेसन या आटे से बने लड्डू अपेक्षाकृत कम हानिकर होते हैं।

एक मधुमेहग्रस्त व्यक्ति का शरीर भार यदि आदर्श स्तर पर है तो उसे प्रतिदिन अपने भार के प्रति कि.ग्रा. के लिए 30 कैलोरी लेना विशेषज्ञों द्वारा उचित बताया जाता है। इसके विपरीत यदि शरीर भार अधिक है तो

आहार में कैलोरी की मात्रा कम करना और यदि भार कम है तो कैलोरी मात्रा बढ़ा देना उस व्यक्ति के लिए अधिक उपयुक्त होगा।

**आहार तालिका**

| 50 कि.ग्रा. शरीर भार – 1500 कैलोरी | | |
|---|---|---|
| | शाकाहारी | मांसाहारी |
| आनाज | 225 ग्रा. | 250 ग्रा. |
| दालें | 60 ग्रा. | 20 ग्रा. |
| पत्तेदार सब्जी | 200 ग्रा. | 200 ग्रा. |
| अन्य सब्जी | 200 ग्रा. | 200 ग्रा. |
| फल | 200 ग्रा. | 200 ग्रा. |
| दूध | 400 ग्रा. | 250 ग्रा. |
| तेल | 15 ग्रा. | 20 ग्रा. |
| मांस, मुर्गा | - | 100 ग्रा. |

| 65 कि.ग्रा. शरीर भार – 2000 कैलोरी | | |
|---|---|---|
| | शाकाहारी | मांसाहारी |
| आनाज | 300 ग्रा. | 350 ग्रा. |
| दालें | 90 ग्रा. | 30 ग्रा. |
| पत्तेदार सब्जी | 200 ग्रा. | 200 ग्रा. |
| अन्य सब्जी | 200 ग्रा. | 200 ग्रा. |
| फल-मौसमी | 200 ग्रा. | 200 ग्रा. |
| दूध (गाय का) | 500 ग्रा. | 225 ग्रा. |
| तेल | 20 ग्रा. | 25 ग्रा. |
| मांस, मुर्गा | - | 100 ग्रा. |

मधुमेहग्रस्त व्यक्ति के लिए धूम्रपान अथवा मद्यपान या कोला पेय आदि भी वर्जित है। मधुमेही में धूम्रपान का व्यसन हृदय और रक्तवाहिनियों की अस्वस्थता की आशंका को कई-कई गुना बढ़ा देता है। मधुमेहग्रस्त के भोजन की संतुलित आहारतालिका और उसका समुचित पालन एक धार्मिक कृत्य समझ कर उसी निष्ठाभाव से किया जाना आवश्यकता और विवशता दोनों ही है। इसमें अपने कार्य और आयु एवं शरीर भार के अनुरूप अपेक्षित कैलोरी/ऊर्जा का होना अत्यावश्यक है। मधुमेही के भोजन की चर्चा करते समय ही हाइपोग्लाइसीमिया के विषय में जान लेना भी आवश्यक है। रक्त में शर्करा की मात्रा का आवश्यकता से कम हो जाना, अर्थात् 70 मिलीग्राम प्रति डेसीलीटर के नीचे चला जाना हाइपोग्लाइसीमिया कहलाता है। कठिन परिश्रम और भागदौड़ से भरी आज के जीवन की कार्य शैली में अक्सर भोजन का समय से ले पाना कठिन होता है। 'टाइप वन' मधुमेह के रोगी जिनकी चिकित्सा सुबह शाम इंसुलिन के अंतर्ग्रहण पर ही निर्भर करती है उनमें हाइपोग्लाइसीमिया की आशंका सबसे अधिक होती है क्योंकि वे अपनी नियमित इंसुलिन की डोज के बाद कभी–कभी तुरंत भोजन नहीं कर पाते। इसमें 'टाइप टू' मधुमेह के वे रोगी भी चपेट में आ सकते हैं जिन्हें इंसुलिन स्राव को बढ़ाने वाली औषधियाँ दी जा रही होती हैं और उनके दवा लेने और भोजन के मध्य अन्तराल अधिक हो जाता है। ऐसी अवस्था से बचने के लिए शर्करा के स्तर की नियमित जाँच और समय पर हर हाल में भोजन कर लेना बहुत आवश्यक है। कठिन क्रियाकलापों वाले व्यायाम, चिकित्सक से परामर्श के बिना उपवास या अपने आप औषधियों की मात्रा और उनके लेने के समय को अपनी सुविधानुसार घटाना-बढ़ाना आदि सभी क्रियायें हाइपोग्लाइसीमिया की आशंका को बढ़ा देती हैं। हाइपोग्लाइसीमिया की स्थिति में बहुत पसीना आना, एकाएक चक्कर आना, भ्रम की स्थिति में होना, सामान्य से अलग कुछ विचित्र व्यवहार करने लगना आदि अनेक लक्षण पैदा हो सकते हैं। वृद्धों और शिशुओं को इससे अधिक हानि की आशंका होती है। हाइपोग्लाइसीमिया की स्थिति हाइपरग्लाइसीमिया (रक्त में शर्करा स्तर की अभिवृद्धि) से अधिक खतरनाक हो सकती है क्योंकि इसके दुष्परिणाम तुरंत दिखाई देते हैं और कभी-कभी जीवन घातक हो सकते हैं। इससे बचने के लिए चिकित्सक सदैव कुछ मीठी वस्तुएँ जैसे टॉफी, बिस्किट या फ्रूटजूस अपने साथ रखने का परामर्श देते हैं।

**संतुलित शरीर भार :** मधुमेहग्रस्त के लिए सामान्य जीवन जीने का चौथा स्वर्णिम सूत्र है अपने शरीर भार को अपनी आयु और लंबाई के अनुरूप संतुलित रखना। इसके लिए चिकित्सकों ने शरीर के भार और लंबाई के अनुपात की माप तय की है जिसे बॉडी मास इन्डेक्स कहते हैं। (बाडी मास इन्डेक्स वजन (किग्रा.)/लंबाई$^2$ (मी$^2$)। 18.5 और 25 के बीच का बी एम आई सामान्य माना जाता है। 25 और 30 के बीच का बी एम आई बढ़े हुए भार की सूचना है। इसके आगे जब बी एम आई 30 से बढ़ जाये तो वह मोटापे का स्पष्ट लक्षण है। मधुमेहग्रस्त को अपना भार अपने आदर्श शरीर भार से 10 प्रतिशत कम रखना अधिक उपयुक्त रहेगा। एक अन्य मुख्य बात है अपने कमर और पेट के मोटापे से बचना। कमर का मोटापा इंसुलिन के प्रति असंवेदनशीलता बढ़ाता है जिससे 'टाइप टू' मधुमेह की संभावना बढ़ जाती है। उचित व्यायाम, कैलोरी अंतर्ग्रहण और वसा आदि पर नियंत्रण से शरीर भार को संतुलित रखना संभव हो सकता है।

**नियमित परीक्षण :** अन्तिम महत्वपूर्ण सूत्र है मधुमेहग्रस्त व्यक्ति के स्वास्थ्य की नियमित जाँच। ऐसे व्यक्तियों को सदैव अपने शरीर भार, रक्त के शर्करा स्तर, कमर के मोटापे आदि के प्रति अतिरिक्त सचेत रहना और उसकी हर छह महीने पर नियमित जाँच करवाना अत्यावश्यक है। मधुमेही के लिए उच्च रक्त चाप अथवा अवसाद की स्थितियाँ भी बहुत चिंताजनक हो सकती हैं, क्योंकि यह मधुमेह के खतरों को और बढ़ा देती है। नियमित जाँच मधुमेह को 'पूर्वमधुमेहग्रस्तता' की स्थिति में ही पहचान कर उसे रोक सकती है। नियमित जाँच में रक्त शर्करा के साथ-साथ उच्च रक्तचाप की जाँच, दृष्टिपटल परीक्षण (रेटिना की जाँच-मधुमेह संबंधी अंधता के लिए), कोलेस्ट्रॉल की जाँच (ब्लड लिपिड कन्ट्रोल), गुर्दे की जाँच

**आदर्श शरीर भार तालिका**

| वयस्क पुरुषों (किग्रा. में) (सामान्य वस्त्रों में) | | वयस्क महिलाओं (किग्रा. में) (सामान्य वस्त्रों में) | |
|---|---|---|---|
| सेमी. | शरीर भार | सेमी. | शरीर भार |
| 152 | 52-57 | 142 | 43-48 |
| 155 | 53-58 | 145 | 44-50 |
| 157 | 55-60 | 147 | 46-51 |
| 160 | 56-62 | 150 | 47-53 |
| 165 | 59-65 | 155 | 50-55 |
| 170 | 63-69 | 160 | 53-59 |
| 175 | 66-73 | 165 | 56-63 |
| 180 | 70-77 | 170 | 60-67 |
| 185 | 73-82 | 175 | 63-70 |
| 190 | 78-86 | 178 | 65-72 |

(मधुमेह संबंधी गुर्दे के रोगों के लिए) और पैरों की जाँच (पैरों के घावों अथवा संवेदनहीनता के लिए) भी अत्यन्त आवश्यक हैं। यह सभी समस्याएँ मधुमेह के पार्श्वप्रभावों के कारण उत्पन्न होती हैं और इनका आगमन भी दबे पाँव चोर की तरह होता है। अतः नियमित जाँच के अतिरिक्त इनका पता लगाने का कोई अन्य विश्वसनीय तरीका नहीं है।

हर छह माह पर होने वाली इस जाँच का सर्वप्रथम चरण है ग्लाइकोसाइलेटेड हीमोग्लोबिन टेस्ट। यह परीक्षण यह स्पष्ट कर देता है कि इसके पूर्व के दो तीन महीनों में शर्करा नियंत्रण कैसा रहा है। इसमें भोजन के पूर्व शरीर में शर्करा स्तर (एफ पी जी-फास्टिंग प्लाज्मा ग्लूकोज-फास्टिंग ब्लड शुगर) और भोजनोपरान्त शरीर में शर्करा स्तर (पी पी जी-पोस्ट प्रैन्डियल ग्लूकोज-पोस्टमील ब्लड शुगर) की जाँच की जाती है। ध्यातव्य है कि इसमें क्रमशः प्रथम जाँच का सामान्य स्तर 110 मि.ग्रा.प्रति डेसी लीटर से नीचे और दूसरी जाँच का सामान्य स्तर 140 मि.ग्रा. प्रति डेसी लीटर से नीचे होना वांछित है।

मधुमेह के निदान के साथ ही मधुमेह रोगी के लिए यह जान लेना अत्यावश्यक है कि उसका रोग सतत् परीक्षण और नियन्त्रण की अपेक्षा रखता है। इसमें चिकित्सक की कुशल देखभाल के साथ-साथ रोगी के भी संपूर्ण सहयोग की आवश्यकता रहती है। चूँकि रक्तवाहिनियाँ और नाड़ी तंत्र दोनों ही इससे प्रभावित होते हैं अतः मधुमेही के शर्करा की निरंतर घटती-बढ़ती हुई मात्रा शरीर में आँखों, पैरों, मुँह, गुर्दा, जननांगों और हृदय तक सभी अंगों को प्रभावित करती है। यह सभी अकेले या मिलकर एक मधुमेह रोगी के जीवन की जटिलताओं को बढ़ा देते हैं तथा रोगी शारीरिक के अतिरिक्त मानसिक और आर्थिक कठिनाइयों से भी ग्रस्त हो जाता है। मधुमेह की अतिव्याप्ति की भयावहता से बचने के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय अब जनसामान्य के सामूहिक रक्त परीक्षण और मधुमेह की जाँच के प्रश्न पर विचार कर रहा है। यह जानना बहुत दुखद है कि केवल पिछले एक साल में लगभग एक लाख लोगों को केवल मधुमेह की जटिलताओं के कारण अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। सामूहिक जाँच से उन छिपे हुए रोगियों की संख्या भी सामने आयेगी जिन्हें अभी स्वयं नहीं पता कि वे इस रोग की चपेट में हैं। भारत में बाल्यकालीन मधुमेह से ग्रस्त अल्पवयस्कों की संख्या भी सर्वाधिक है।

मधुमेह के इस प्रकोप को देखते हुए यह भी बहुत आवश्यक है कि इसकी जाँच और इसकी औषधियों की आर्थिक संभाव्यता पर विशेष ध्यान दिया जाये। आज मधुमेह परीक्षण की बाजार में उपलब्ध परीक्षण पट्टियाँ (Test strips) सामान्य जनता के लिए बहुत मँहगी हैं क्योंकि इनके एक बार उपयोग का खर्च 25 रुपये होता है। इस संबंध में पिलानी स्थित बिट्स (Bits) की एक प्रोफेसर डॉ0 सुमन कपूर द्वारा एक ऐसी नई परीक्षण पट्टिका विकसित की गई है जिसका प्रति उपयोग व्यय केवल 2 रुपये ही आने की संभावना है। इस नये सेलफोन आकार के रक्त शर्करा परीक्षण यंत्र में वर्तमान परीक्षण यंत्रों से कुछ भिन्न तकनीक (कलट टु फ्रीक्वेंसी सेन्सर) का उपयोग किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें रक्त परीक्षण के लिए रक्त की बहुत अल्प मात्रा की आवश्यकता होती है (वर्तमान की अपेक्षा 1000 वाँ भाग)। आशा की जा रही है कि शीघ्र ही यह यन्त्र रोगियों के लिए बाजार में सुलभ हो जायेगा।

शर्करा परीक्षण संबंधी एक और महत्वपूर्ण कार्य भारतीय मूल के पर्ड्यू विश्वविद्यालय, यू.एस. में कार्यरत प्रो0 अनुराग कुमार द्वारा किया गया है। इस विधि में रोगी से रक्त न लेकर उसके अश्रुबिन्दु, लार अथवा मूत्र के द्वारा ही शर्करा स्तर का परीक्षण संभव हो सकेगा और रोगी को न तो अनावश्यक त्वचावेधन का कष्ट उठाना पड़ेगा और न इस त्वचावेधन से संभावित संक्रमणों की आशंका से जूझना पड़ेगा। इस विधि की विशेषता यही है कि इससे पूर्व संवेदक केवल रक्त में शर्करा स्तर जाँच पाते थे परन्तु इस विधि में रक्त, लार, अश्रु और मूत्र चारों प्रकार के स्राव शर्करा स्तर के परीक्षण के लिए उपयुक्त हैं।

मानव सभ्यता की प्रगति में जो कुछ अभिशाप उसे स्वाभाविक रूप से प्राप्त हुए हैं उनमें प्रमुख हैं विकृत जीवनशैली जनित रोग- और उनमें मधुमेह का स्थान सर्वोपरि है, तथापि मधुमेह की प्रकृति को भली-भाँति जान लेने के बाद उसके साहचर्य में जीवन बिताना उतना कठिन नहीं है जितना प्रतीत होता है। मधुमेह हमारे जीवन में कुछ समस्यायें अवश्य उत्पन्न करता है परंतु समस्याओं से जूझना भी मानव के स्वभाव में सहज भाव से अंतर्निहित है। थोड़ी अतिरिक्त सावधानी के साथ मधुमेह रोगी भी अन्य सामान्य लोगों की भाँति एक सार्थक और कार्यपूर्ण जीवन बिता सकता है।

विज्ञान मानव के उन सौन्दर्यबोधक एवं प्रतिभापूर्ण क्रियाकलापों का एक संश्लिष्ट रूप है जिसे वह प्रकृति की अभिव्यक्ति के लिए समर्पित करता है, अतः विज्ञान सर्जनात्मक कला का श्रेष्ठतम रूप है।

**- आचार्य चन्द्रशेखर बेंकट रमन**

# मलेरिया के खिलाफ वैज्ञानिकों की जंग

डॉ0 विनोद गुप्ता *

मलेरिया को इस समय दुनिया की महामारियों में से एक माना जाता है और इसमें हर साल करीब 10 लाख लोगों की मौत हो जाती है। अफ्रिकी महादेश इससे सर्वाधिक प्रभावित है। दुनियाभर के वैज्ञानिक इसके उन्मूलन में जुटे हुए हैं तथा अब वह दिन दूर नहीं जबकि मलेरिया का नामोनिशान नहीं होगा।

**मलेरिया का मूल वानर प्रजाति**

इन्सानी इतिहास में सबसे ज्यादा मौत का कारण बनने वाली बीमारी मलेरिया चिम्पांजी नहीं गोरिल्ला के जरिये दुनिया में फैली। एक ताजा वैज्ञानिक अध्ययन में यह बात सामने आई है। मध्य अफ्रीका के कांगो में 57 इलाकों में 3000 गोरिल्ला पर किए गए अध्ययन का निष्कर्ष यह रहा कि मलेरिया की तमाम किस्मों में सबसे घातक प्लाजमोडियम फेल्सिपेरम का स्रोत गोरिल्ला ही हैं। यह निष्कर्ष पूर्व की उस सोच से अलग है जिसमें चिम्पांजी को बीमारी का स्रोत माना जाता था। वैज्ञानिकों के मुताबिक मलेरिया के परजीवी ने तकरीबन 12 हजार साल पहले गोरिल्ला से इन्सान में प्रवेश किया। रिसर्च टीम का नेतृत्व करने वाले अमेरिका के बर्मिंघम की यूनिवर्सिटी ऑफ अलाबामा के बीट्रिस हान के अनुसार मलेरिया के स्रोत को जान लेने से इसे रोकना और इसका इलाज करना भी आसान होने की उम्मीद है। एड्स की ही तरह मलेरिया का मूल भी वानर प्रजाति ही है।

**मलेरिया परजीवी**

मलेरिया की विज्ञान की विधा के लिए जरिए पहचान वर्ष 1898 में तब हुई जब कलकत्ता के प्रेसीडेंसी जनरल अस्पताल में काम करने वाले सर रोनाल्ड रास ने यह सिद्ध कर दिया कि मलेरिया मच्छर के काटने से होता है। उन्हें इस काम के लिए वर्ष 1902 में चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार भी दिया गया।

मलेरिया एक परजीवी रोगाणु द्वारा होता है जिसे *प्लाजमोडियम* कहते हैं। मादा एनाफलीज मच्छर के पेट में ये रोगाणु पलते हैं। पेट का संबंध एलाफलीज के मुँह की लार ग्रंथियों से रहता है। अर्थात् *प्लाजमोडियम* रोगाणु एनाफलीज के मुँह में आते जाते रहते हैं। जब कभी मादा एनाफलीज किसी मनुष्य को काटती है, तो ये रोगाणु उसके खून में प्रवेश कर जाते हैं।

मलेरिया चार प्रकार के परजीवियों द्वारा होता है। ये परजीवी हैं- *प्लाजमोडियम वाइवेक्स, प्लाजमोडियम, फल्सिपैरम, प्लाजमोडियम ओवेल तथा प्लाजमोडियम मलेरिया।* विश्व में *प्लाजमोडियम वाइवेक्स* का ही प्रचलन अधिक है।

मलेरिया फैलाने वाला एनाफिलिस मच्छर

**मच्छरों का मनोविज्ञान**

देखने की शक्ति नहीं होने के बाद भी मच्छर मानव की उपस्थिति का पता कैसे लगा लेते हैं? यह प्रश्न कई दशकों से वैज्ञानिकों के लिए जिज्ञासा का कारण बना हुआ था। अब अमेरिका के वैज्ञानिकों ने मच्छरों के उन जीनों का पता लगा लिया है जो खून के प्यासे मच्छरों को मानव गंध के जरिए अपने शिकार तक पहुँचाते हैं।

नेशविल अमेरिका स्थित वेंडरविल्ड विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने मलेरिया फैलाने वाले एनाफिलिस मच्छरों के परिवार में पाए जाने वाले चार जीनों की पहचान कर ली है, जो इन मच्छरों को मानव का पता देते हैं। इन जीनों को एनाफिलिस गैबी आडरेंट रिसेप्टर (एजीओआर) नाम दिया गया है। दल के प्रमुख वैज्ञानिक लारिस जाबेल के अनुसार चारों एजी.ओ.आर. जीन गंध रसायनों से सक्रिय होते हैं और इसके प्रति संवेदनशीलता बढ़ा देते हैं। चूँकि मच्छरों में किसी तरह की चैतन्यता नहीं होती हैं, इसलिए वे वातावरण से मिलने वाले रासायनिक संकेतों के आधार पर ही आगे बढ़ते हैं। वैज्ञानिकों ने एनाफिलिस गैबी जिनोस प्रोजेक्ट डाटा का उपयोग कर यह पता लगाया है कि जब मच्छर के एंटीना के ऊपर से कोई गंध गुजरती है, तो उसका छिद्र युक्त अंग खुलकर गंध को अंदर प्रवेश कराता है। जब गंध के ये रसायन अंदर स्थित एक झिल्ली से मिलते हैं तो यहाँ स्थित जीन प्रोटीन इन रासायनिक संकेतों को विद्युत संकेतों में परिवर्तित कर देती है।

काफी रिसर्च और अध्ययन के बाद सामने आया कि शरीर के पसीने में पाए जाने वाले रसायनों के कारण ऐसा होता हैं। पसीने में कुछ इस प्रकार के रसायन पाए जाते हैं जिनकी गंध से मच्छर व्यक्ति के नजदीक जाता है

*43/2, सुदामा नगर, रामटेकरी, मन्दसौर – 458 001 (म.प्र.).

कुछ लोगों में बॉडी केमिकल्स या लैक्टिक एसिड जैसे केमिकल्स ज्यादा होते हैं, जिससे मच्छर उनकी तरफ ज्यादा आकर्षित होकर काटते हैं।

जबकि कुछ लोगों के शरीर के रसायन, उतने स्ट्रांग नहीं होते हैं जिसके कारण मच्छर उनकी पहचान नहीं कर पाते। ऐसे लोगों को मच्छर नहीं काटते हैं। मानव शरीर से लैक्टिक अम्ल स्रावित होता है जो मच्छरों को आकर्षित करता है। इसके अलावा त्वचा की खूशबू भी मच्छरों को हमारे नजदीक आने का निमंत्रण देती है। इसी प्रकार त्वचा का रंग भी मच्छरों के लिए काफी मायने रखता है। गौर वर्ण की तुलना में श्याम वर्ण के लोगों को मच्छर अधिक काटते हैं। यदि पसीना लवणयुक्त हो और उसमें जीवाणु उत्पन्न हो जाएँ, तो वह दूर से मच्छरों को लुभाता है इसके अलावा बदन पर छिड़का जाने वाला टेलकम पाउडर, बालों का तेल तथा क्रीम भी मच्छरों को आकर्षित करती है।

क्या आपको मच्छर बहुत अधिक काटते हैं? अगर ऐसा है, तो आप दुखी होने के बजाए यह जानकर खुश हो जाएँगे कि अन्य लोगों की अपेक्षा मच्छरों का दिल आप पर आया है। इसका मतलब है कि आपके रक्त में मच्छरों की पसंद का जायका मौजूद है। अमेरिका में हाल में किए गए अनुसंधान में पता चला है कि मच्छर ऐरे-गैरे और बदसूरत लोगों का खून चूसकर अपना जायका एवं हाजमा खराब नहीं करते। आमतौर पर वे उसी व्यक्ति का रक्त चूसना पसंद करते हैं, जिनका रक्त विटामिन और कोलेस्ट्राल से भरपूर हो। मच्छरों को जिंदा रहने के लिए इन दोनों पौष्टिक तत्वों की जरूरत होती है। अध्ययन के अनुसार मच्छरों को अपने मनपसंद और सुस्वादु भोजन का आभास कई किलोमीटर दूर से ही हो जाता है।

**दवाएँ होती बेअसर**

मलेरिया के मच्छर और वे जिन कीटाणुओं को फैलाते हैं, दोनों आज इस लायक हो गये हैं कि उनको खत्म करने के लिए तैयार की गयी किसी भी कीटनाशक दवा का उन पर कोई असर नहीं होता। मलेरिया फैलाने वाले एनाफिलिस मच्छरों की 60 प्रजातियों में से 51 प्रजातियों के मच्छरों में विभिन्न कीटनाशकों का प्रतिरोध करके शक्ति आ गई है। परिणामतः अब तक की कीटनाशक दवाएँ बेअसर हो गयी। डी.डी.टी. का उन पर कोई असर नहीं हो रहा, नयी रसायन की दवाएँ काफी महँगी हैं जिनका इस्तेमाल व्यापक पैमाने पर संभव नहीं है।

**बायो-एन्वायरमेंटल कंट्रोल**

मलेरिया अनुसंधान केन्द्र ने एक नवीन पद्धति का विकास किया है जिसे जैव पर्यावरण नियंत्रण पद्धति (बायो-एनवायरमेंटल कंट्रोल) कहते है।

इस पद्धति में विषैले कीटनाशियों के प्रयोग को कोई स्थान नहीं दिया गया है अपितु परिस्थितिकी (इकोलॉजी) और पर्यावरण (एनवायरमेंट) में ऐसे निर्दोष और समाज द्वारा स्वीकार्य परिवर्तन किए जाते हैं, जिससे मलेरिया की समस्या का स्थायी समाधान हो जाता है। यह मलेरिया के वाहक मच्छरों की वृद्धि रोकने की एक नयी पद्धति है।

आर्थिक दृष्टि से यह पद्धति सबसे सस्ते कीटनाशी (डी.डी.टी.) के छिड़काव पर होने वाले खर्च के समान है। मच्छरों के विनाश के लिए उनके प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग किया जाता है, विशेष प्रकार की मछलियों, कृमि, फफूँदी और बंग मच्छरों की संख्या में कमी लाते हैं। गप्पी और गम्बूजिया जाति की मछलियाँ बड़ी तीव्रता से मच्छरों के लार्वा का भक्षण करती हैं।

**मच्छर की आबादी रोकने के प्रयास**

ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने शोध करके पता लगाया है कि मलेरिया फैलाने वाला मच्छर एनोफिलीस अपने जीवनकाल में केवल एक बार ही यौन क्रिया करता है और अगर उस वक्त इसमें हस्तक्षेप किया जाए तो इस मच्छर की प्रजनन क्रिया पूरी नहीं हो पाएगी इसका परिणाम यह होगा कि मलेरिया खुद व खुद थम जाएगा। मतलब न रहेगा बॉस और न बजेगी बॉसुरी। इम्पीरियल कॉलेज लंदन के शोधकर्ताओं ने पता लगाया है कि एनोफिलीस नर मच्छर एक खास तरह के अंग जिसे मेटिंग प्लग कहते हैं के जरिए यह सुनिश्चित करता है कि मादा मच्छर तक उसके शुक्राणु सही तरह से पहुँच सकें ताकि मादा अंडों को जन्म को दे सके। वैज्ञानिकों के अनुसार इस मेटिंग प्लग के न होने पर शुक्राणु भंडारित नहीं हो सकेंगे और निषेचन की प्रक्रिया रुक जाएगी।

नर मच्छर के इस मेटिंग प्लग की खासियत यही है कि वह मादा मच्छर में शुक्राणु भंडारण को सही दिशा दिखाए। इस तरह से एनोफिलीस मच्छर के प्रजनन क्रिया में मेटिंग प्लग की अनिवार्य भूमिका होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार अगर यह प्लग किसी तरह हटा दिया जाए या उसमें कोई हस्तक्षेप किया जाए तो निषेचन संभव नहीं होगा और इस खतरनाक मच्छर की आजादी पर नियंत्रण पाया जा सकेगा। उन्होंने मेटिंग प्लग का विश्लेषण करके पाया कि जब एक विशेष प्रकार का एंजाइम ट्रासस्लूटमीनेस एक विशिष्ट प्रोटीन से क्रिया करता है तो एक क्लॉट बन जाता है जिससे यह प्लग बनता है। शोधकर्ताओं ने जब प्रयोगशाला में नर मच्छर से इस एंजाइम को हटा दिया तो पाया कि उसमें मेटिंग प्लग नहीं बना और वह प्रजनन क्रिया संपन्न नहीं कर सका। अगर ऐसा हो सका तो पिछले सैकड़ों सालों से मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए चुनौती बना मलेरिया का नामोनिशान मिट जाएगा।

जानलेवा बीमारी मलेरिया पर काबू पाने के लिए वैज्ञानिकों ने कहा है कि इस रोग की जिम्मेदार मच्छर की प्रजाति *एनोफिलीस गैम्बिया* की यौन क्रिया में बाधा उत्पन्न करके इसके प्रसार पर रोक लगाई जा सकती है।

**मलेरिया न फैलाने वाले मच्छर**

अमेरिका वैज्ञानिकों का कहना है कि उन्होंने मच्छर की एक ऐसी प्रजाति विकसित की जिसके काटने से मलेरिया नहीं होता। एरिजोना विश्वविद्यालय में शोधकर्ताओं ने अनुवांशिक रूप से सवंर्धित जो प्रजाति विकसित की है, उसमें इस बीमारी को फैलाने की क्षमता ही नहीं है। इस मच्छर को अभी वातावरण में छोड़ने में काफी देर है, लेकिन यह तय है कि इससे एक नई बहस शुरू हो जाएगी। वैज्ञानिकों का कहना है कि अनुवांशिक रूप से सवंर्धित मच्छर की प्रजाति मलेरिया से निपटने के लिए लंबी लड़ाई का एक छोटा हिस्सा है। इससे पहले भी इस तरह के प्रयास हुए, लेकिन वे सफल नहीं हो सके थे। शोधकर्ताओं का कहना है कि पहली बार उन्होंने मच्छर के भीतर मलेरिया के परजीवी पनपने से रोकने में सफलता पाई है।

वैज्ञानिकों का अंतिम लक्ष्य इस तरह के मच्छर को खुले वातावरण में छोड़ने का है। इससे पहले वैज्ञानिकों के सामने यह चुनौती है कि वे मच्छर की इस प्रजाति को बीमारी फैलाने वाले मच्छरों की तुलना में ज्यादा ताकतवर बनाएँ। इस बीच वैज्ञानिकों को यह आंकलन भी करना पड़ेगा कि अनुवांशिक रूप से सवंर्धित इन मच्छरों को वातावरण में छोड़ने का पर्यावरण पर कैसा असर पड़ेगा।

**मलेरिया रोकने वाले मच्छर**

अब आपको मच्छरों से डरने की जरूरत नहीं है। कम से कम इस जेनेटिकली मॉडिफाइड (जीएम) मच्छर से तो नहीं। इसके बारे में यह दावा किया जा रहा है कि उड़ने वाले इंजेक्शन के तौर पर काम करेगा और मलेरिया की वैक्सीन इंसानों में फैलाएगा। जापान की जिकी मेडिकल यूनिवर्सिटी में हुई रिसर्च में बताया गया है कि पिछले दशक में हुए अध्ययन के बदौलत इस तरह की उम्मीद बची है कि ऐसे जीएम मच्छर इंसानों को काटने के दौरान उनमें मलेरिया से लड़ने की क्षमता विकसित करेंगे। इससे पहले डॉ0 योशिदा की टीम ने ऐसा मच्छर तैयार किया था जिसकी लार में लेशमेनिया रोग की वैक्सीन बनती थी।

**मलेरिया का सस्ता इलाज**

ब्रिटिश वैज्ञानिकों की टीम ने जैविक अणुओं की मदद से मलेरिया की एक नई दवा तैयार की है। यह बाजार में बिक रही अन्य दवाओं की तुलना में काफी सस्ती है। आमतौर पर मलेरिया की दवा बनाने में आर्टेमाइसिनिन नाम का तत्व इस्तेमाल होता है। लेकिन शरीर में इसकी स्थिरता कम रहती है। नई दवा शरीर में स्थिर रहेगी, क्योंकि इसके अणु जैविक रूप से प्राप्त किए गए हैं। चीन की एक खास जड़ी से प्राप्त किए गए इसके अणुओं को शरीर आसानी से सोखेगा। मलेरिया फैलाने वाले परजीवियों के खिलाफ इसकी मारक क्षमता के चलते यह दवा कारगर हो सकती है। दवा के खोजकर्ता लिवरपूल यूनिवर्सिटी के प्रो0 पॉल ओ नील ने कहा कि सस्ती होने के कारण गरीब और विकासशील देशों में लोगों को इससे फायदा होगा।

मच्छर की भिनभिनाहट और उनके दंश की चिंता छोड़िए। ग्वालियर स्थित डीआरडीओ के वैज्ञानिकों ने एक रामबाण दवा खोजी है जो बाजार में भी आ गई है। इससे बने एक टिश्यू पेपर को शरीर पर फेरने के बाद मच्छर फटकेंगे भी नहीं। अच्छी बात यह है कि इसकी कीमत है मात्र तीन रुपए साथ ही 36 रुपये की जेल पैकिंग में भी आसानी से मिल जाएगी। इस रामबाण दवा का नाम है डेथल पेनिल एसिटामाइड (डीईपीए) विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी इसे मंजूरी दे दी है। मच्छरों से मुक्ति का यह उपाय रक्षा शोध एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) ने खोजा है। भारतीय सेना पिछले छह साल से इसका उपयोग कर रही है। यह जहरीला नहीं है और इसका उपयोग सौंदर्य प्रसाधन उत्पादों में भी किया जा सकता है।

**बस एक गोली और मलेरिया की छुट्टी**

वैज्ञानिकों का दावा है कि शीघ्र ही वे ऐसी दवा विकसित कर लेंगे जिसकी एक गोली के सेवन मात्र से ही मलेरिया की छुट्टी हो जाएगी। शोधकर्ताओं ने प्रयोग के तौर पर चूहों को इस दवा की एक खुराक दी और संक्रमित चूहों का रोग दूर हो गया।

वैज्ञानिकों के अंतरराष्ट्रीय दल ने दावा किया है कि एनआईटीडी 609 नाम की नई दवा मलेरिया के लिए जिम्मेदार प्लाजमोडियम फैल्सीपोरम और पी. विवक्स के खिलाफ काफी प्रभावी है। यह दवा प्रति रोधी कारकों के लिए भी जिम्मेदार हैं वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि एनआईटीडी 609 की एक खुराक अन्य मलेरियारोधी दवाओं के पैरासाइट्स और उष्णकटिबंधीय रोगों के मामलों में भी काफी प्रभावी है।

**मलेरिया का टीका**

फिलहाल मलेरिया के लिए कोई प्रभावशाली टीका दुनिया भर में कहीं मौजूद नहीं है। हाल में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा टीका विकसित किया है जो अब तक बने टीकों से एकदम अलग है। एड्रिएन हिल और उनके सहयोगियों द्वारा विकसित यह टीका शरीर की प्रतिरोधी प्रणाली के एक अलग हिस्से को सक्रिय बना रहा है। जिसमें एंटीबॉडी के बजाय बॉडीसेल्स शामिल होंगे। इस समय प्रतिरोध विज्ञान इतना उन्नत हो गया है कि अब वैज्ञानिकों द्वारा श्वेत रक्त कोशिकाओं का निर्माण संभव हो गया हैं मलेरिया को नियंत्रित करने में यह युक्ति नई होने के साथ-साथ कारगर भी साबित होगी। वैज्ञानिकों ने जाम्बिया, केन्या और ब्रिटेन में इस टीके का परीक्षण कर यह पता लगाने के लिए अभियान छेड़ दिया है। वैसे इसके आरंभिक परीक्षणों से वैज्ञानिक आशान्वित हैं क्योंकि इसने कुछ लोगों को मलेरिया के प्रति पूर्ण सुरक्षा प्रदान की है।

माइक्रोसॉफ्ट के संस्थापक बिल गेट्स मलेरिया के उन्मूलन के लिए कार्य करने वाले अग्रणी लोगों में से रहे हैं। बिल गेट्स फाउंडेशन ने स्थापना के बाद से मलेरिया से निबटने के लिए अरबों डॉलर खर्च किए हैं। वे मानते हैं कि स्मॉलपॉक्स यानी छोटी माता की तरह मलेरिया को भी खत्म किया जा सकता है।

बिल गेट्स के अनुसार हमने एक टीका विकसित कर लिया है, जिसका परीक्षण अंतिम दौर में है। जिसे हम तीसरा दौर कहते हैं। आंशिक रूप से प्रभावी टीका तीन साल के भीतर उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन, पूरी तरह से टीका बाजार में आने में दस वर्ष लग सकते हैं।

**नई दवा की खोज**

यह दवा उन क्षेत्रों में कारगर सिद्ध होगी, जहाँ पर परंपरागत दवाएँ बेअसर साबित हो रही हैं। चिकित्सा विज्ञान की पत्रिका 'द लांसेट' में प्रकाशित शोध के अनुसार जर्मनी के वैज्ञानिकों ने इस समस्या को सुलझा लिया है। मलेरिया रोधी इस दवा फोसमिडो माइसिन का सर्वप्रथम मानवीय परीक्षण अफ्रीका देश गैबोन में किया गया। दवा का प्रभाव ठीक रहा और दो सप्ताह के भीतर 60 से 89 प्रतिशत लोग ठीक हो गए। लोगों को ठीक होने में 3-4 और 5 दिन का समय लगा। इस दवा के प्रयोग से मलेरिया पैदा करने वाले परजीवी शीघ्रता से नष्ट होते हैं और बुखार उतर जाता है इस परीक्षण से साबित हुआ है कि मलेरिया के इलाज के लिए सुरक्षित और प्रभावी दवा है।

रोग के उपचार की बजाय रोग से बचाव अधिक बेहतर है। अतः मलेरिया की रोकथाम पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसकी रोकथाम तभी संभव है जबकि एनाफ्लीज मच्छरों का खात्मा किया जाय।

# भूमि संपोषकता के लिए आवश्यक है कृषि वानिकी

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव *

लगातार बढ़ती जनसंख्या का पेट भरने के लिए हम अधिक खाद्यान्न पैदा तो कर रहे हैं किन्तु फिर भी उस कमी को पूरा नहीं कर पा रहे हैं। जंगल कटते जा रहे हैं और नए भवनों का निर्माण जारी हैं। ऐसी स्थिति में खेती के लिए भूमि कहाँ है ? कुल मिलाकर भुखमरी और पर्यावरणीय समस्यायें बढ़ती ही जा रही हैं। फलस्वरूप, अब कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान कृषि वानिकी की ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षित हो रहा है। कृषि वानिकी में हमारी अनेक समस्याओं का समाधान निहित है।

कृषि वानिकी का नमूना

कृषि वानिकी एक समग्र अभिगम है जिसमें वृक्षों व झाड़ियों के साथ फसलों और पालतू पशुधन को जोड़कर, उनके परस्पर पड़ने वाले प्रभावों द्वारा उत्पन्न लाभों का इस्तेमाल करते हैं। कृषि वानिकी में कृषि और वानिकी की प्रौद्योगिकी का इस तरह प्रयोग किया जाता है कि हम उत्पादन के योग्य विविध प्रकार की लाभदायक फसलों को उगा सकें। इसी के साथ ही हम यह भी ध्यान रखें कि भूमि की संपोषक गुणवत्ता भी बनी रहे।

कृषि वानिकी एक विज्ञान है, जिसका सैद्धान्तिक आधार कृषि पारिस्थितिकी से होकर पारिस्थितिकी तक पहुँचता है। कृषि वानिकी का अर्थ है- 'खेतों में वृक्ष'। वास्तव में कृषि वानिकी में तीन विज्ञानों का सम्मिश्रित उपयोग होता है- पारिस्थितिकी, कृषि और वानिकी। कृषि वानिकी का गहरा संबंध 'बीच की फसल' उगाने से है। कृषि वानिकी में दो या दो से अधिक पादप प्रजातियाँ उगाई जाती हैं। यह भी ध्यान रखा जाता है कि आमतौर से ये पादप प्रजातियाँ भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण (नाइट्रोजन फिक्सिंग) वाली प्रजातियाँ हों। इससे जहाँ एक ओर अधिक फसलोत्पादन होता है वहीं दूसरी ओर लागत में भी कमी आती है और भूमि की या मृदा की गुणवत्ता भी बनी रहती है। कृषि वानिकी के इसके अतिरिक्त भी अनेक लाभ हैं।

### कृषि वानिकी के लाभ

फसलों को उगाने और वनीकरण की पारंपरिक विधियों की तुलना में कृषि वानिकी अधिक लाभप्रद है। इससे फसलोत्पादन में वृद्धि और आर्थिक लाभ के साथ ही साथ फसलों में भी विविधता प्राप्त होती है। खेती की पारंपरिक विधियों की तुलना में इस तरीके से जैव विविधता में भी वृद्धि होती है। दो या दो से अधिक पादप प्रजातियों को उगाने से एक सीमित भू-क्षेत्र में प्राकृतिक आवास अधिक जटिल हो जाता है। इसका सुखद परिणाम यह होता है कि वह क्षेत्र और पारिस्थितिकी को लाभ पहुँचाता है।

**कृषि वानिकी के लिए उचित तरीकों के उपयोग से प्राप्त होने वाले प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं-**

1- वृक्षों की लकड़ियों से मकान बनाने के अतिरिक्त लकड़ी बिक्री से क्षेत्र विशेष के निवासियों की निर्धनता में कमी आती है।

2- वृक्षों के अन्य उत्पाद यथा पत्तियों से दोने और पत्तल बनाकर भी बेचे जाते हैं जिससे आर्थिक स्थिति में सुधार आता है।

3- फलदार वृक्षों, सब्जियों और खाद्यान्नों को उगाकर भोजन सुरक्षा को आधार प्रदान करना।

4- वृक्षों की जड़ों से मिट्टी का कटाव रुकता है जिससे पोषक तत्व फसल को मिलते हैं और सिंचाई द्वारा पानी के बहाव से जो जल व्यर्थ चला जाता है उसमें भी कमी आती है।

5- वैश्विक तापन (ग्लोबल वार्मिंग) और भुखमरी के खतरों से निपटने के लिए फलों, सूखे मेवों और खाद्य तैलों के उत्पादन के लिए सूखारोधी वृक्षों का रोपण लाभकारी है।

6- निर्वनीकरण को कम करना और जलावन की लकड़ी वाले वृक्षों को खेतों में लगाना लाभदायक होता है।

7- शाकनाशियों और कीटनाशियों जैसे विषैले रसायनों के प्रयोग को कम करना अथवा बिल्कुल ही न करना लाभप्रद है।

8- ऐसे क्षेत्रों में जहाँ चिकित्सा-सुविधा उपलब्ध न हो वहाँ रोगों की चिकित्सा के लिए उपयोगी जड़ी बूटियों को उगाना भी कृषि वानिकी का लाभ है।

*पूर्व सम्पादक, 'विज्ञान', विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद – 211 002.

### कृषि वानिकी के पर्यावरणीय लाभ

1- कार्बन का स्वविियोजन (कार्बन सीक्वेस्ट्रेशन)।

2- दुर्गन्ध, धूलि और शोर प्रदूषण में कमी।

3- वन्य जीवन के प्राकृतिक आवासों का विस्तार।

4- हरियाली और मनोरम दृश्यावलियों का विस्तार।

### मौसम परिवर्तन का अनुकूलन

वर्तमान काल में ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि छोटे किसान मौसम परिवर्तन के अनुकूलन के लिए कृषि वानिकी की ओर उन्मुख हो रहे हैं। यहाँ पूर्वी अफ्रीका का उदाहरण देना समीचीन होगा।

आज से कुछ वर्ष पूर्व वहाँ के 700 घरों के कृषकों के सर्वेक्षण के परिणामों से प्राप्त आँकड़े ध्यान देने योग्य हैं। कृषकों से मौसम परिवर्तन, कृषि और भोजन की सुरक्षा के संबंध में प्रश्न पूछे जाने पर लगभग 50 प्रतिशत खेतिहरों ने बताया कि उन्होंने अपने खेतों में परिवर्तन के लिए

**कृषि वन**

वृक्षों को भी उगाना प्रारंभ कर दिया था। वृक्षों को उगाने से फसलोत्पादन के अतिरिक्त भूमि अपरदन और पानी और मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार हुआ। यही नहीं, फल, चाय, काफी, तेल, चारा, चिकित्सकीय पादपों आदि के माध्यम से मौसम परिवर्तन के कुप्रभावों यथा वैश्विक तापन को कम करने में भी सहायता प्राप्त हुई। इस प्रकार कृषि वानिकी का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव मौसम अनुकूलन का पड़ता है। वहीं फसलों की किस्मों में सुधार और बीच की फसलों को उगाने से फसलों में विविधता भी प्राप्त होती है।

### कृषि वानिकी के अनुप्रयोग

ऐसे तो कृषि वानिकी के लगभग 40 अनुप्रयोग हैं किन्तु सुविधा के लिए इन्हें कुछ मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा जा सकता है। इस वर्गीकरण का आधार है- विभिन्न समस्याएँ, यथा तेज हवा, भारी जल वर्षा, हानिकर कीट, आर्थिक समस्या, लागत और उत्पादन की जरूरतें आदि।

1- चारागाह कृष्यभूमि (पार्क लैण्ड), छायादार पद्धति (शेड सिस्टेम), फसल-वृक्ष पद्धति (क्रॉप-ओवर-ट्री सिस्टेम), संकीर्ण मार्ग/गलियारा पद्धति (एली क्रॉपिंग)।

2- निराकृत फसल पद्धति (स्ट्रिप क्रॉपिंग), जन्तु समूह आधारित पद्धति (फाना-बेस्ड सिस्टेम्स), परिसीमा पद्धति (बाउण्ड्री सिस्टेम्स)।

3- फिजिकल सपोर्ट सिस्टेम्स (भौगोलिक एग्रोफॉरेस्ट्स)/ (कृषिवन) पार्कलैण्ड विस्तृत कृषि योग्य अथवा चारागाह की भूमि है, जिसमें वृक्ष दूर-दूर तक बिखरे हुए से दिखते हैं। वृक्ष साधारणतया एक ही प्रजाति के होते हैं। इनसे प्राप्त लाभों में चरने वाले पशुओं के लिए छाया, फसल को हवा के तेज झोकों से सुरक्षा प्रदान करना, कीटों अथवा चूहे जैसे जानवरों के लिए भोजन उपलब्ध करना और जलावन की लकड़ियाँ उपलब्ध करना प्रमुख है। जाम्बिया में किए गए एक शोध के परिणामों से पता चला है कि मक्के के खेतों में *फेडहर्बिया एल्बिडा* (*Faidherbia albida*) के वृक्षों की उपस्थिति से मक्के की उपज 4.1 टन प्राप्त हुई जबकि वृक्षरहित मक्के के खेतों से प्रति हेक्टेयर उपज मात्र 1.3 टन प्राप्त हो सकी। यहाँ इस तथ्य को समझ लेना आवश्यक है कि फेडहर्बिया के वृक्षों की पत्तियाँ नाइट्रोजन से भरपूर होती हैं और जब वे टूट कर नीचे गिरती हैं तो वर्षा ऋतु में उगाई जाने वाली फसलों को पोषण और जल सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि फसल को जल, पोषण और प्रकाश के लिए वृक्षों से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ती। वृक्षों की जड़ें भूमि में गहरी पैठी होती हैं। ग्रीष्म ऋतु में वृक्षों में पुनः पत्तियाँ विकसित हो जाती हैं और वृक्ष पुनः जानवरों को छाया प्रदान करने लायक हो जाते हैं।

छाया पद्धति में छायादार वृक्षों के नीचे ऐसी फसलें उगाई जाती हैं जो छायारोधी अर्थात् छाया में उगने वाली होती हैं। एक और बात। वृक्षों की छतरियाँ (क्राउन) काफी ऊपर होती हैं जिससे फसलों को प्रकाश भी मिलता रहता है जिसका उदाहरण है छाया में की जाने वाली काफी की खेती। इससे दोहरा लाभ प्राप्त होता है। एक तो खरपतवार की सफाई

**काफी की खेती**

करने में आने वाली लागत में कमी आती है और दूसरे काफी के स्वाद और गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

गलियारा खेती में फसल की कतारों के बीच में वृक्षों अथवा झाड़ियों की कतारे उगाते हैं। आमतौर से फसलों की रोपाई के पूर्व वृक्षों की शाखाओं को काटकर छोटा कर देते हैं। कटी टहनियों और पत्तियों को भूमि में फैला देते हैं। इससे उगाई जाने वाली फसल को पोषण प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त झाड़ियाँ हवा के तेज झोकों को रोककर मृदा को अपरदन से बचाती हैं। गलियारा खेती या संकीर्ण मार्ग खेती अफ्रीका में लाभकारी सिद्ध हुई है विशेष रूप से उप-सहारा क्षेत्र में मक्के की खेती में। अफ्रीका में *सेस्बानिया सेस्बन (Sesbania sesban), टेफ्रोसिया वोगेली (Tephrosia vogelli), ग्लिरिसिडिया सीपिअम (Gliricidia sepium) और फेडहर्बिया एल्बिडा (Faidherbia albida)* जैसे वृक्षों को प्रयोग में लाया गया है जो नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। मालावी में 10 वर्षों तक किए गए प्रयोग के परिणामों से ज्ञात हुआ है कि खाद प्रदान करने वाले टेफ्रोसिया वोगेली और ग्लिरिसिडिया सीपिअम जैसे वृक्षों की पत्तियों के प्रयोग से मक्के की प्रति हेक्टेयर उपज 3.7 टन प्राप्त हुई जबकि इन वृक्षों के अभाव में मक्के की खेती से मक्के की उपज प्रति हेक्टेयर मात्र एक टन ही प्राप्त हो सकी।

स्ट्रिप कृषि में कतारें संकीर्ण मार्गों की खेती जैसी ही होती हैं। इसमें फसल की कतारों के बीच में वृक्षों की कतारें लगाते हैं किन्तु फसलों और वृक्षों की कतारे काफी चौड़ी-चौड़ी होती हैं। यहाँ उद्देश्य वृक्षों और झाड़ियों से पोषण और हवा के झोकों से सुरक्षा प्राप्त करना होता है ताकि

**स्ट्रिप कृषि**

फलों और सूखे मेवों आदि के वृक्षों और खेती की फसलों से भरपूर उपज प्राप्त की जा सके। साथ ही हवा के झोकों से फसल को बचाया जा सके और मिट्टी के अपरदन को भी रोका जा सके।

वृक्ष कुंज चारागाह (सिलवोपास्चर) से फसलों की अच्छी उपज के साथ जीव-जन्तुओं को भी आश्रय प्राप्त होता है। वृक्षकुंज चारागाह में पालतू पशुओं (गाय, भैंस, भेड़, बकरियों) को वृक्ष के नीचे की बढ़िया घासें चरने को मिल जाती हैं। तप्त मौसम में जानवर वृक्षों की छाया में चरते हैं और आराम भी करते हैं। चारे के लिए जानवरों को वृक्षों और झाड़ियों की पोषक पत्तियाँ भी प्राप्त हो जाती हैं।

उपरोक्त जानवरों के अतिरिक्त हिरण और सूअर जैसे जानवरों को भी आश्रय के लिए वन-पारितंत्र उपलब्ध हो जाता है। इससे भिन्न एक और

**वृक्ष कुंज चारागाह**

पारितंत्र है- जल-वानिकी (एक्वाफॉरेस्ट्री)। इसमें वृक्ष मछलियों के तालाबों के ऊपर छाया करते हैं जिससे मछलियाँ भी वृक्षों की टूटी पोषक पत्तियों और टूटे फलों को खाती रहती हैं।

बाउण्ड्री सिस्टेम (सीमा पद्धति) में तटवर्ती अवरोधक (रिपैरियन बफर) और वायुरोधक (विंड ब्रेक्स) होते हैं। इन्हें जीवित बाड़ा (लिविंग फेन्स) कहते हैं। जीवित बाड़ा वृक्षों का होता है। इसमें वृक्षों को कटीले तारों से बाँधा जाता है ताकि मनुष्यों और जानवरों के अवांछित प्रवेश को रोका जा सके। वृक्ष कीटों और पक्षियों को आवास और भोजन प्रदान करने के साथ ही साथ मृदा अपरदन को रोक कर तटों की कटाव से रक्षा करते हैं। तटवर्ती प्रतिरोधक आस-पास की हरियाली को दूषित जल से बचाते भी हैं क्योंकि इनके कारण दूषित जल सतही जल से मिल नहीं पाता है। वायु अवरोधक वायु की तेज गति को मंद कर देते हैं और फसल को सूखने से बचाने के साथ ही पैदावार को भी बढ़ाते हैं।

कृषि वानिकी अपेक्षाकृत खेती की नवीन विधि है। इससे जहाँ एक ओर छोटे पैमाने पर फसलें उगाई जा सकती हैं वहीं भूमि की उर्वर क्षमता को भी सुरक्षित रखा जा सकता है। इसके प्रयोग से आँधियों और भारी वर्षा से मृदा अपरदन को भी बचाया जा सकता है। कृषि वानिकी के कारण जैव विविधता में भी वृद्धि होती है और वनीकरण को गति मिलती है। इनके अतिरिक्त पर्यावरण को संतुलित रखने और बढ़ती जनसंख्या का पेट भरने में भी कृषि वानिकी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। कृषि वानिकी समय की मांग है और इसे सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रोत्साहन की नितांत आवश्यकता है।

### कृषि वानिकी से मृदा संपोषकता

कृषि वानिकी जहाँ एक ओर मिट्टी की उर्वराशक्ति में वृद्धि करती है अथवा मृदा की संपोषकता को बनाये रखती है, वहीं वृक्षों के घने ऊपरी भाग नीचे की मिट्टी को वर्षा की बूँदों से बचाते हैं। केवल यही नहीं ये वृक्ष ही जैविक कार्बन में वृद्धि करते हैं और पोषक तत्वों को उपलब्ध कराते हैं। 14 वर्षीय खेजड़ी *(प्रोसोपिस सिनेरैरिया)* के रोपण से फॉस्फोरस एवं अन्य सूक्ष्ममात्रिक पोषकों की मात्रा में वृद्धि पाई गई है। एक ओर जहाँ वृक्षों की पत्तियाँ नीचे गिरकर खाद का कार्य करती हैं वहीं ये वृक्ष ही भूमि में प्राकृतिक नाइट्रोजन को भी समावेशित करते हैं।

कृषि वानिकी के अंतर्गत फल वृक्ष, शाक भाजी, मसाले, औषधीय पादप, सगंध पादप, कंदीय फसलें, पुष्पों वाली फसलें आदि के साथ वृक्षों को भी खेतों में लगाया जाता है।

इलाहाबाद स्थित 'उत्थान' और 'विज्ञान परिषद् प्रयाग-दोनों संस्थाओं के सभापति डॉ0 डी.एन. तिवारी सच ही कहते हैं- ''देश में एक

कृषि वानिकी

तिहाई क्षेत्रफल में हरियाली लाने का लक्ष्य केवल कृषि वानिकी द्वारा संभव है।''

**कृषि वानिकी हेतु उपयोगी कुछ महत्वपूर्ण वृक्ष**

1. **बबूल** ***( एकेशिया ऑरिक्यूलिफॉर्मिस )*** **–** यह ऊसर या बंजर भूमि के लिए जलावन की लकड़ी देता है। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 4950 किलो कैलोरी ऊर्जा मिलती है। प्राकृतिक नाइट्रोजन को भूमि में समावेशित करता है। पत्तियाँ ऊँट और बकरियों का चारा है।
2. **सूबबूल** ***( ल्यूसीना लैटिसिकुआ )*** **-** सूखे या रेगिस्तानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त, जलावन की लकड़ी देता है। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 4200 – 4600 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। प्राकृतिक नाइट्रोजन को भूमि में समावेशित करता है। जानवरों के लिए सूबबूल की पत्तियाँ उत्तम चारा है।
3. **ढैंचा** ***( सेस्बानिया ग्रैंडीफ्लोर )*** **-** इससे जलावन की लकड़ी मिलती है, कागज बनाया जाता है और यह प्राकृतिक नाइट्रोजन को भूमि में समावेशित करता है।
4. **गम्भार** ***( मैलाइना आरबेरिया )*** **-** इसकी लकड़ी का उपयोग फर्नीचर बनाने में किया जाता है। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 4800 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।
5. **झाऊ** ***( कैजूराइना इक्विसेटिफालिया )*** **-** दक्षिण भारत में रेतीले और तटीय क्षेत्रों में उगता है। कागज बनाया जाता है और जलावन की लकड़ी प्राप्त होती है। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 4950 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। यह प्राकृतिक नाइट्रोजन को भूमि में समावेशित करता है।
6. **सफेदा** ***( यूकेलिप्टस ग्रैंडिस, यूकेलिप्टस सिट्रिओडोरा )*** **-** (यूकेलिप्टस की 170 प्रजातियाँ पाई जाती हैं) – लकड़ी से फर्नीचर बनाए जाते हैं। इसकी लकड़ी के कोयले का उपयोग स्टील बनाने में किया जाता है। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 4800 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। इससे तेल भी तैयार किया जाता है जो औषधीय महत्व का है।
7. **खेजड़ी** ***( प्रोसोपिस सिनेरैरिया, प्रसोपिस ज्यूलिफ्लोरा )*** **-** राजस्थान, गुजरात में इसकी पत्तियाँ ऊँट और बकरियों को खिलायी जाती हैं। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 5200 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।
8. **सिरिस** ***( एल्बिजिया लेबेक )*** **-** इससे जलावन की लकड़ी प्राप्त होती है। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 5200 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। इसकी पत्तियाँ जानवरों का चारा हैं।
9. **किक्कर** ***( एकेशिया निलोटिका )*** **-** प्रति किलोग्राम लकड़ी से 4800 किलो कैलोरी ऊर्जा मिलती है। पत्तियाँ ऊँटों का चारा हैं। राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और मध्य प्रदेश में इसे उगाया जाता है।
10. **घाव या एक्सल उड** ***( एनोगीसस लैटिफोलिया )*** **-** इसे बंजर और पथरीली भूमि में उगाया जाता है। इसके पत्ते पतझड़ के पूर्व लाल हो जाते हैं। इसकी जलावन की लकड़ी बहुत अच्छी होती है। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 4900 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।
11. **नीम** ***( एजैडिरैक्टा इण्डिका )*** **-** पत्तियाँ कड़वी होती हैं परन्तु इनमें प्रतिजैविक गुण होते हैं, बीजों से तेल और खली प्राप्त होती है। यह दीमक और कीड़ों से सुरक्षा प्रदान करता है।
12. **जामुन** ***( साइजीजियम क्यूमिनी / युजीनिया जम्बोलाना )*** **-** इसका फल खाया जाता है। इसका बीज मधुमेह में उपयोगी है। प्रति किलोग्राम लकड़ी से 4800 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। जामुन के फलों से सिरका भी बनाया जाता है।
13. **अरहर** ***( कैजनस इण्डिकस )*** **-** यह दलहनी फसल है। कृषि वानिकी में अत्यन्त उपयोगी है तथा फसल पकने के बाद जड़ें भूमि में नाइट्रोजन समावेशित करती हैं। इससे जलावन की लकड़ी भी प्राप्त होती है।
14. **बेर** ***( जिजिफस मारिशियाना )*** **–** इसके फल खाये जाते हैं। जलावन की लकड़ी भी मिलती है।
15. **शीशम** ***( डलबर्जिया लैटिफोलिया, डलबर्जिया सिसो )*** **–** इसकी लकड़ी मजबूत और टिकाऊ होती है तथा फर्नीचर बनाने के काम आती है। पत्तियाँ जानवरों का चारा है।
16. **आँवला** ***( एम्बिलका ऑफिसिनैलिस )*** **–** यह एक महत्वपूर्ण औषधीय वृक्ष है। इसके फल अत्यंत उपयोगी है तथा इससे चटनी, अचार, मुरब्बा आदि बनाये जाते हैं। 'त्रिफला' नामक आयुर्वेदिक औषधि का यह मुख्य घटक है।
17. **शरीफा** ***( एनोना स्कुएमोस )*** **–** इसके फल खाये जाते हैं। पत्ती औषधीय है तथा मधुमेह (डायबेटीज) में उपयोगी है।
18. **अमरूद** ***( साइडियम गुआवा )*** **-** फल स्वादिष्ट होता है औषधीय है तथा छाया प्रदान करता है और पक्षियों को आश्रय मिलता है।

19. **बाँस** ***( बम्बूसा अरुण्डिनेसिया )*** - कागज, फर्नीचर, डलिया, भवन आदि बनाने में काम आता है।

20. **लाख** ***( फ्लैमिंगिया स्पीशीज )*** – यह औषधीय है तथा लाख के आभूषण बनाये जाते हैं।

21. **चंदन** ***( सैंटेलम एल्बम )*** – यह पवित्र वृक्ष है। चंदन की लकड़ी, चंदन का पाउडर अगरबत्ती बनाने में तथा सुगंध के लिए और साबुन बनाने में काम आता है।

22. **करंज** ***( पोंगामिया पिन्नेटा )*** – यह नदी-नालों के किनारे लगाया जाता है। इससे जलावन की लकड़ी मिलती है। बीजों से तेल का निष्कर्षण करते हैं जो औषधीय है तथा गठिया और चर्म रोगों में उपयोगी है।

23. **कचनार** ***( बाहीनिया वेरीगाटा )*** – यह शोभाकर वृक्ष है तथा इसके पुष्प सफेद अथवा बैंगनी होते हैं।

24. **शहतूत** ***( मोरस एल्बा )*** – इसके फल रसीले एवं स्वादिष्ट होते हैं तथा यह छायादार वृक्ष है।

25. **इमली** ***( टैमैरिंडस इंडिका )*** – इसकी लकड़ी मजबूत, वृक्ष विशाल, छायादार होता है। इमली की पत्तियाँ और फल तरह-तरह के पकवानों में खट्टापन और स्वादिष्ट बनाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

26. **कटहल** ***( आर्टोकार्पस हेटेरोफिला )*** – इसके कच्चे फल की सब्जी तथा अचार बनऐ जाते हैं। इसके पके फल के कोये खाये जाते हैं। बीज भूनकर या सब्जी के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। वृक्ष छाया प्रदान करते हैं।

27. **महुआ** ***( मधुका इण्डिका )*** – इसके वृक्ष छायादार होते हैं तथा लकड़ी बहुत अच्छी होती है। किन्तु अन्य उपयोगों के कारण लकड़ी का प्रयोग कम होता है। फलों को कच्चा अथवा पकाकर खाया जाता है। गोंड़ जनजातियाँ तो इसका प्रयोग भोजन के रूप में करती थीं।

## स्वास्थ्य से संबन्धित जानकारियाँ

- एक चम्मच हल्दी सुबह शाम दूध के साथ सेवन करने से एलर्जी व सांस की बीमारी नहीं होती।
- सिर दर्द दूर करने के लिए अंकुरित दाल, गाजर, शलजम, पालक, लौकी, खीरे का सूप पियें। तुलसीयुक्त ग्रीन टी ले।
- हल्दी, तुलसी, मेथी का रस मिलाकर लेने से कमर दर्द, घुटने में दर्द नहीं होता।
- कब्ज को दूर करने के लिए चोकर युक्त आटे की रोटी खाएँ। रात में एक गिलास दूध में मुनक्का डालकर प्रयोग करें।
- अधिक कब्ज रहने पर त्रिफला (हरड़, आँवला) चूर्ण का सेवन रात में 1 चम्मच गर्म पानी के साथ करें।
- आंवला, रीठा व शिकाकाई बराबर मात्रा में मिलाकर रातभर पानी में भिगो दें। अगले दिन इससे बालों को धोएँ। असमय सफेद होते बालों निजात मिलेगा।
- नियमित गुलाब जल को दो बूँद आँखों में डालें। इससे आँखों की रोशनी बढ़ेगी। लाल रंग के फलों व सब्जियों का सेवन करें। इसमें विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में होता है।
- माहवारी की सभी समस्याओं के निवारण के लिए अशोक की छाल का काढ़ा 25 एमएल सुबह-शाम लें।
- कपालभाति, गति योग (एक स्थान पर खड़े होकर दौड़ना) करें।
- एक भाग गुलाब जल और एक भाग नींबू का रस मिलाकर चेहरे को रोज धोएँ। इससे चेहरे पर चमक बनी रहती है।
- मुल्तानी मिट्टी व गुलाब जल को मिलाकर चेहरे पर लगाने से चेहरा हमेशा कांतियुक्त बना रहेगा।
- चीनी व नींबू का शरबत बनाकर पीने से मानसिक तनाव दूर होता है और नींद भी अच्छी आती है।
- मधुमेह से बचने के लिए फाइबर युक्त भोजन तिल, काजू, अखरोट, लौकी और अंकुरित अनाज का भरपूर मात्रा में सेवन करें।
- उच्च रक्तचाप से बचने के लिए भोजन में मशरूम, केला, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, शकरकंद, संतरा व खजूर का प्रयोग करें।
- मुहाँसे से बचने के लिए 3 चम्मच शहद व 1 चम्मच दालचीनी पाउडर का पेस्ट चेहरे पर सप्ताह में एक बार लगाएँ।
- सोने से पहले चेहरे पर ग्लिसरीन, नींबू का रस और गुलाब जल बराबर मात्रा में लेकर लगाने से चेहरे पर दाग धब्बे और झाइयाँ मिट जाती हैं।

# नई सोच, अनुसंधान और आविष्कार का विज्ञान : जैवप्रौद्योगिकी

डॉ0 पीयूष गोयल *

पिछले कुछ दशकों में बायोटेक्नालॉजी (जैवप्रौद्योगिकी) अनुसंधान के द्वारा भारत ने कृषि, उद्योग, पर्यावरण, औषधि निर्माण और चिकित्सा आदि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है। इन क्षेत्रों में उपलब्धता और परिष्कृत तकनीकियों के द्वारा ही आज भारत में शिक्षा और शोध कार्यों के द्वारा महत्वपूर्ण उत्पादों, मानव संसाधन विकास एवं आर्थिक निर्माण के योगदान में जैवप्रौद्योगिकी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान में जीव विज्ञान क्षेत्र में जैवप्रौद्योगिकी विभाग लगभग दो- तिहाई अनुसंधान एवं विकास सहायता प्रदान कर रहा है। देश में अर्थव्यवस्था में सुचारु बदलाव के साथ-साथ विश्व के अनेकों देशों में भारत विज्ञान के क्षेत्र में कम लागत और उन्नत तकनीकी के साथ अनुसंधान व अन्य क्रियाकलापों में सुधार एवं आर्थिक रूप से मजबूती एवं लाभ सुलभ कर रहा है। अतः जैवप्रौद्योगिकी को आज विज्ञान के एक नये आयाम, नई सोच के रूप में देखा जा रहा है। जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान के लिए आण्विक विज्ञान और अनुवांशिक विज्ञान के अध्ययन के द्वारा गहन और सूक्ष्मतम जैविक प्रणालियों एवं क्रियाकलापों को उपलब्ध तकनीकियों के साथ आसानी से समझा जा सकता है तथा जैविक उत्पादों के निर्माण एवं क्रियाकलापों के द्वारा महत्वपूर्ण शोध कार्यों से प्राकृतिक संसाधनों के सुचारु रूप से इस्तेमाल और अन्य कारणों से होने वाली हानियों को रोका जा सकता है।

आज के इस युग में कोई न कोई सृजन ही हमें मजबूत बनाये रख सकता है, चाहे वह नया विचार, नया प्रयोग या फिर बदलाव की प्रक्रिया हो। चार्ल्स डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत का मूलमंत्र आज भी जिन्दा है कौन नहीं जानता कि विज्ञान के जिस सोपान पर आज हम हैं वह नई-नई खोजों, सृजन प्रक्रिया और प्रजातियों के निर्माण में इस हद तक सहायक हो गये हैं कि आज जैवप्रौद्योगिकी विज्ञान के माध्यम से जैविक गुणों की पहचान, गुणसूत्रों का अध्ययन और अनुसंधान न केवल चर्मोत्कर्ष पर पहुँच गया है, बल्कि आज के इस जटिल युग में विकास (इवोल्यूशन) और विलुप्तिकरण (एक्सटिंक्शन) के पहलुओं को भी गम्भीरता से समझा जा सकता है। कृषि जैवप्रौद्योगिकी को पर्यावरणविदों का सामना जरूर करना पड़ा, पर परिणाम यह बताते हैं, कि जैवप्रौद्योगिकी उद्योगों की एक बड़ी जरूरत है, तथा इसके उत्पादन के तरीकों में कम ऊर्जा तथा कम क्षरण भी है।

**वाटसन और क्रिक डी.एन.ए. की संरचना के साथ**

1953 में वाट्सन और क्रिक के द्वारा डी.एन.ए. की संरचना के अविष्कार के बाद पिछले दशकों में आण्विक जीव विज्ञान में प्रमुख प्रगति हुई है। जीव और जीवन की प्रक्रियाओं के संबंध में बेहतर जानकारी प्राप्त हुई है तथा विभिन्न जीवों में अनुवांशिक सामग्री अर्थात डी.एन.ए. को समझा गया है। पशुओं व पेड़ों में जीनों का हस्तांतरण करना संभव हो सका है। 1953 के बाद, विश्व के वैज्ञानिकों ने अनुवांशिक कोड का सहारा लेकर विशेष जीनों का पता लगाया है, तथा कई रोगों के अनुवांशिक आधार को खोजा है। इस अवधि के दौरान ऐसे मूलभूत अनुसंधान के परिणाम स्वरूप ही कई उद्योग विशेषतौर पर औषधीय निर्माण के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है।

भारत के विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनने के बाद आम समझौते और उरुग्वे दौर की बातचीत के परिणाम स्वरूप प्रतिस्पर्धा की स्थिति से और अधिक समय तक नहीं बचा जा सकता था। अतः रीकम्बिनेन्ट

*वैज्ञानिक–सी, जैवप्रौद्योगिकी विभाग, ब्लाक–2, सी.जी.ओ. काम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली – 110 003.

डी.एन.ए. तकनीक और उत्तक संम्वर्धन तकनीक में हाल में हुए अध्ययनों के द्वारा सम्पूर्ण पौधों का कायिक जनन के द्वारा ही विश्व में आने वाली सदी की खाद्य समस्या व बढ़ती जनसंख्या से निपटा जा सकता है। खेती के लिए घटती जमीन और बढ़ता शहरीकरण सम्पूर्ण विश्व के लिए एक चिन्ता का विषय है। वायुमंडलीय ताप प्रभावित हो रहा है, तथा वर्षा एवं खाद्य उत्पादन कम हो रहा है। अतः जैवप्रौद्योगिकी के माध्यम से इन समस्याओं के निदान की भी काफी सम्भावनाएँ हैं। सम्पूर्ण विश्व में अब यह पूर्णतया मान लिया गया है, कि जैवप्रौद्योगिकी पर आधारित औद्योगिक विकास होना चाहिये। अतः यह आवश्यक हो गया है, कि चिकित्सा, जीवविज्ञान, यांत्रिकी (इंन्जिनियरी) तथा अन्य क्षेत्रों में जैवप्रौद्योगिकी के वृहद दृष्टिकोण को समझा जाय। स्टेम सेल अनुसंधान, नैनोटेक्नॉलाजी, जैवसूचना प्रणाली (बायोइन्फार्मेटिक्स), जैवकीटनाशी, जैविक खाद्य, न्यूट्रास्यूटिकल, प्रोबायोटिक, बायोफ्यूल आदि अनेक विषयों को गम्भीरता से समझा जाय, जिसमें किसी न किसी रूप में सूक्ष्म जीवाणुओं और जैविक प्रणालियों का योगदान है। विभिन्न जैवप्रौद्योगिकी उद्योगों में नई प्रौद्योगिकी और उच्च तकनीक परियोजनाओं के व्यावसायीकरण को भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए और जैवप्रौद्योगिकी की पूरी क्षमता का एहसास कराने के लिए तेजी से विकास कार्य किए जा रहे हैं जिससे भारतीय उद्योग वैश्विक बाजार पर कब्जा करने और धन उत्पन्न करने के लिए एक राष्ट्र के रूप में प्रतिस्पर्धा और लाभ सुनिश्चित कर सके। जैवप्रौद्योगिकी उद्योगों में एक और तकनीकी क्रांति लाने के लिए जैवप्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा उन्नत कार्य किए जा रहे हैं। निश्चित रूप से नई सहस्राब्दी को जैवप्रौद्योगिकी क्षेत्र में शिक्षा, उद्योग और अनुसंधान के रूप में साबित करने के लिए सम्पूर्ण विश्व में कई तरह से प्रयास जारी हैं।

आज जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान के द्वारा कृषि के क्षेत्रों, मानव और पशुओं के स्वास्थ्य, पर्यावरण, निदान, और एंटीबायोटिक दवाओं, औद्योगिकी एंजाइमों, विटामिन आदि के वैश्विक जैवप्रौद्योगिकी परिप्रेक्ष्य आदि जैसे प्राथमिकताओं वाले क्षेत्रों में देश एक गतिशील एवं परिवर्तन के दौर से गुजर रहा हैं जैवप्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली ने पिछले कुछ दशकों में इन क्षेत्रों में मूलभूत अनुसंधान तथा औद्योगीकीकरण के लिए एक सुदृढ़ आधार तैयार किया है, जिससे विज्ञान के कई नये क्षेत्रों में अनुसंधानों एवं उपलब्धियों को विकास की दर में शामिल किया जा सके, जिससे भविष्य में विभिन्न औद्योगिक उत्पादों के व्यावसायीकरण के लिए विशाल क्षमता पैदा की जा सके। इस प्रयास के तहत प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास परियोजनाओं को शुरू किया गया है। इसी तरह उद्योगों में नई तकनीकियों और अनुसंधान के विकास के लिए कई-नई योजनाओं के तहत जैसेः जैवप्रौद्योगिकी उद्योग भागीदारिता कार्यक्रम (बीआईपीपी), लघु व्यवसाय नवीन अनुसंधान पहल (एसबीआईआरआई) और जैवप्रौद्योगिकी उद्योग अनुसंधान सहायता परिषद (बीआईपीपी) जैसे कार्यक्रमों का शुभारंभ किया गया है। यह नई योजनाएँ जैवप्रौद्योगिकी उद्योग अनुसंधान एवं विकास और सार्वजनिक निजी भागीदारी कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के लिए सर्वाधिक सक्षम तंत्र है। इन महत्वपूर्ण योजनाओं के अंतर्गत केवल भविष्योन्मुखी क्षेत्रों, रूपान्तरकारी प्रौद्योगिकी और लोकहित हेतु उत्पाद विकास के लिए

**जैव प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली के वैज्ञानिक अधिकारी पुरस्कार ग्रहण करते हुए**

सहायता प्रदान की जाएगी। विभाग के योगदान को देखते हुए ही पिछले वर्ष 2011-12 में मंत्रिमंडल सचिवालय द्वारा सरकार की निष्पादन समीक्षा में जैवप्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली को सर्वप्रथम तीन मंत्रालयों/विभागों में से एक चिन्हित किया गया है। इसके अलावा सबसे ज्यादा अन्वेषक व्यापारिक उद्यम (Most innovative commercial enterprise) के लिए 2012 का थामसन रयूटर्स इंडिया इन्नोवेशन अवार्ड (Thomson Reuters India Innovation Awards 2012) से भी जैवप्रौद्योगिकी विभाग नई दिल्ली को सम्मानित किया गया है।

अनुसंधान की दृष्टि से कृषि जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान के शुरुआती चरणों में कुछ विभिन्न तकनीकों जैसेः फसलों को कीटों से बचाने के लिए कीटनाशी प्रोटीन जैसे प्रोटीनेज इन्हीबिटर, लैक्टिन और एल्फा अमाइलेज इन्हीबिटर आदि पर ध्यान देना शुरू हुआ। मृत कवक *(माइरोथिसियम वेरूकेरिया)* से प्राप्त एंजाइम और एंटोमोपैथोजेनिक कवक *(मोटाराइजियम एनीसोप्ली, बीयूवेरिया बेसियाना तथा वर्टीसिलियम लेकानी)* की कोनिडियल को अंगूर में मियली कीटों (बग) को नियंत्रित करने में प्रभावकारी पाया गया है। फेरोमोन अव्यवों के संश्लेषण प्राप्त किए गये, जिससे सी सेराटास व्यस्कों को सफलतापूर्वक पकड़ा (ट्रैप) जा सके। कीटों की बीमारीरोधी पराजीनी चना (चिकपी) लाइनों को उगाने के लिए कानामाइसिन प्रतिरोध हेतु एग्रोबैक्टीरियम मीडिऐटेड ट्रांसफार्मेट का चयन किया गया तथा पोषक तत्व समृद्ध मकई के विकास, मूंगफली और अरहर की फसल के जैव समृद्धिकरण संबंधी कई नई परियोजनाओं पर कार्य किए जा रहे हैं। कपास, मक्का, सरसों और सोरघम जैसे चार कृषि उत्पादों को आ.सी.जी.एम. के अंतर्गत खेत परीक्षण के लिए अनुमोदन दिया गया है तथा कृषि दृष्टि से महत्वपूर्ण सूक्ष्मजीवों (एआइएम) से संबंधित परियोजनाओं को क्रियान्वित किया गया है। इसी तरह कई अन्य पौधों और फसलों पर कार्य लिए जा रहें हैं जिसमें जीन हस्तातंरण के द्वारा आलू एवं टमाटर आदि की उन्नत किस्में तथा रख-रखाव के कार्य शामिल हैं। गोभी, पत्ता गोभी और मिर्च के बीजजनित रोगाणुओं के खिलाफ छानबीन की जा रही है। इन क्षेत्रों में अनुसंधान की शृंखला काफी लम्बी है।

इसी प्रकार फसलों में चावल के मुख्य रोगों के लिए जिम्मेदार टैगिंग जीनों हेतु आण्विक मार्कर प्रौद्योगिकियों की खोज की गई। लवण और

सूखा सहिष्णु (सलाइन एवं ड्राई टालरैन्ट) मार्कर फ्री चावल के विकास की दिशा में विकास को लक्ष्य बनाते हुए लवण और सूखा सहिष्णु पराजीनी चावल के विकास पर ध्यान दिया गया, जिससे यह संकेत मिला है, कि उच्च सहिष्णुता के एकत्रण से पराजीनी चावल पादपों में सूखा प्रतिबल सहिष्णुता प्राप्त होती है। इसी संबंध में अतर्राष्ट्रीय आनुवांशिकी एवं इंजीनियरिंग जैवप्रौद्योगिकी केन्द्र (आई.सी.जी.ई.बी) नई दिल्ली में प्रतिबल-उत्प्रेरित हेलीकेस की आणविक क्लोनिंग और लक्षण-वर्णन तथा इसके कार्यात्मक मान्यकरण संबंधित कार्य किए जा रहे हैं । गेंहू (ह्वीट क्रोमोसोम 2 ए) की सैंपल फिजिकल अनुक्रमण (सिक्वेंसिंग) संबंधित कार्य जारी रखा गया है। कपास में गुणक (मल्टीपल्स) के उत्पादन हेतु एक तरह का मानकीकरण किया गया, तथा उच्चस्तरीय एक्सप्रेशन के लिए कोडान यूसेज के साथ इन्डोटाक्सीन जीन क्राई 1 ए.सी. का रसायनिक संशलेषण बनाया गया है। इसी प्रकार सोमेटिक एम्ब्योजेनेसिस के माध्यम से आम की किस्मों के ऊतक संवर्धन एवं प्रवर्धन हेतु प्रोटोकाल विकसित किया गया है। रेशमकीट लार्वा के पालन के लिए कृत्रिम खाद्य मिश्रण तैयार किये गए हैं जिनका प्रयोगशाला स्तर पर परिक्षण किया गया है। इसी प्रकार कृषि जैवप्रौद्योगिकी में अनेकों अन्य अनुसंधान प्रगति में है, जिससे आने वाली सदी में कई समस्याओं से निपटा जा सकता है।

पशु जैवप्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रजनक क्षमता (इन विट्रो नेचुरेशन), कृत्रिम गर्भाधान (इन विट्रोफर्टिलाइजेशन) प्रौद्योगिकियों के परिणाम उत्साह वर्धक रहे हैं भैंस के दूध में चिकित्सीय गुण वाले मानव प्रोटीनों को निष्पीड़ित करने संबंधी प्रयास जारी हैं। भैंस सदृश्य याक और मिथुन परियोजनाओं में भी प्रजनन क्षमता, रख-रखाव तथा चारे आदि संबंधी कई कार्यों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है, तथा उद्योग की जरूरत को समझते हुए उनसे प्राप्त औद्योगिक उत्पादों को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। पशुओं में बोविन रिनोट्रैकेटिस (आई.बी.आर.), और मुर्गीपालन में रानीखेत, बर्ड फ्लू आदि बीमारी के लिए विकसित वैक्सीनों का निर्माण और व्यापारीकरण पर ध्यान दिया गया है। मोटापा और मेटाबोल्जिम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले डब्लू डी आर 13 जीन को समाप्त करते हुए एक 'नॉकआउट चूहा' मॉडल विकसित किया गया है। हार्मोन जारी करने वाले गोनेडोट्रापिन के दो सिंथेटिक एनालॉग का जब क्षेत्र परिक्षण किया गया, तो मछली पालन में अच्छे परिणाम मिले। जलकृषि चारा, चिकित्सीय चारे का विकास, श्रिंप में उत्प्रेरित परिपक्वन, रोग प्रतिरोध के लिए आण्विक मार्करों का विकास आदि पर कार्य किया जा रहा है। वाणिज्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्वच्छ जल मछलियों लेबियो रोहिता और क्लेरियस बैट्रिकस के संम्पूर्ण जीनोम अनुक्रमण संबंधी एक बहुकेन्द्रिक कार्यक्रम संरूपित करने की पहल की गई है। इसी प्रकार पशुओं में जीन सिक्वेन्स को जानने के लिए कई परियोजनाओं को शुरू किया गया है। मनुष्य के साथ-साथ पशुओं तथा मछलियों की प्रजातियों की प्रजातियों में भी भ्रूणीय स्टेम सेल पर भी अनुसंधान प्रस्ताव प्राप्त किए गए हैं। चिकित्सा का क्षेत्र जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें जीवाणु (बैक्टीरिया), विषाणु (वायरस), पैरासाइट्स, कवक (फंजाई) आदि पैथोजोनिक एजेंटों पर काम किया जा रहा है। इन महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में ट्यूबरक्युलोसिस, कॉलरा, एच.आई.वी/एड्स, हिपैटाइटिस, इन्फ्लूएंजा, डेंगू, चिकनगुनिया, मलेरिया, लेश्मैनियासिस, बर्ड फ्लू, स्वाइन फ्लू इत्यादि संक्रमित रोगों के लिए सहायक उपचार (प्रिवेन्टिव थिरेप्युटिक) और नैदानिक टूल्स (डाइग्नोस्टिक टूल्स) विकसित करने के लिए सहायता की गई। ओरल कॉलरा वैक्सीन हेतु एक गैर टॉक्सोजेनिक विब्रियो कॉलरा कैन्डीडेट विकसित किया गया है। बच्चों में किसी भी प्रकार के डायरिया को रोकने के लिये किए गये प्रयास सराहनीय है। भारत में ओरल रोटा वाइरस वैक्सीन 116 ई. फेस 3, विकास के लिए परीक्षण कार्य चरणबद्ध रूप से किया जा रहा है। रेबीज वायरस के विरुद्ध म्यूराइन एकक्लोनीय प्रतिरक्षियों का विकास किया गया है। *माइकोबैक्टेरियम ट्युबरक्युलोसिस* के तत्पर परीक्षण किट को विकसित कर उसका व्यापारीकरण किया गया है। हिपेटाइटिस वैक्सीन और यकृत सम्बन्धित बीमारियों पर अत्याधुनिक खोज के लिए विभिन्न परियोजनाओं को आमंत्रित किया जा रहा है, तथा डेंगू संक्रमण के लिए नैदानिक टूल्स के रूप में एक रैपिड आईजीएम इएलआईएसए का विकास और वैधिकरण किया गया। एच.आई.वी./एड्स के इम्यूनोपैथोजेनेसिस पर मूलभूत और ट्रांसलेशनल अनुसंधान और उपचार रणनीति विकसित की जा रही है।

कैंसर के क्षेत्र में नई तकनीकियों के इस्तेमाल से होने वाले अनुसंधानों को और प्रोत्साहन दिया जा रहा है। कैंसर में करक्यूमिन क्लीनिकल ट्रायल महत्वपूर्ण स्तर तक पहुँच गया है तथा एनालिसिस का पहला चरण प्राप्त कर लिया गया है। कुछ प्रमुख बीमारियों के डाटाबेस तैयार किए जा रहे हैं जिससे कि उनको और अच्छी तरह से समझा जा सके। कई अन्य बीमारियों और जीन चिकित्सा अनुसंधान तथा जैवनीति के लिए मार्गदर्शन तैयार किए गये हैं। चिकित्सा के इस व्यापक क्षेत्र में स्टेम सेल और नैनोटेक्नालॉजी पर व्यापक अनुसंधान के रास्ते खुले हैं। 45 से अधिक संस्थानों, अस्पतालों और देश में स्टेम सेल अनुसंधान में कार्यरत उद्योगों में व्यस्क (एड्ल्ट) स्टेम सेल का प्रयोग करके मूलभूत और क्लीनिकल अनुसंधान के लिए कार्यक्रम क्रियान्वित किए गए। बंगलौर में स्टेम सेल बायलॉजी और रीजनरेटिव मेडिसिन के लिए एक संस्थान स्थापित किया गया है, जिसकी ट्रांसलेशन यूनिट क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज, वेल्लौर में है। नैनो बायोटेक्नालॉजी का उपयोग औषधि वितरण प्रणाली (ड्रग डिलीवरी सिस्टम), नई उपचार पद्धति (न्यू थिरेप्यूटिक्स), इमेजिंग तथा बायोमेडिकल डिवाइस इत्यादि सहित विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है। जैवप्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली ने इन क्षेत्रों में अनुसंधान गतिविधियों को बढ़ावा दिया है। विभिन्न नैनो सामग्री (नैनोमैटिरीयल) की विषाक्तता (ओक्सिसिटी) आदि को समझने के लिए नैनोटेक्नालॉजी पर व्यापक अनुसंधान किए जा रहे हैं।

जैवसूचना प्रणाली (बायोइन्फार्मेटिक्स) के अध्ययन के द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र में दवाओं (ड्रग) का डी नोवो डिजाइन, आण्विक संरचना, तथा रिसेप्टर प्रोटीन आदि का अध्ययन शामिल है। डी.एन.ए. प्रौद्योगिकी की सूचना तथा प्रोटीन की त्रिस्तरीय संरचना और अन्योन्यक्रिया की गति ने हमारे ज्ञान को बहुत ज्यादा बढ़ा दिया है। जैवरसायनिक संरचना (बायोकेमिकल स्ट्रक्चर) की अभिव्यक्तिकरण, विलगन तथा मानकीकरण, जैवभौतिकी (बायोफिजिक्स) तथा सूक्ष्म आण्विक मॉडलिंग (मॉलिक्यूलर माडलिंग) अनुप्रयोग के संयोग से नई प्रोटीनों के स्वेदेशी डिजाइन और उपयोग मालीक्यूल (सूक्ष्माणु) प्राप्त

किए जा सके हैं। एक्सरे क्रिस्टेलोग्राफिक्स, डायनामिक्स, डाटाबेसों के उपयोग, प्रोटीन अनुक्रमण (फोल्डिंग) आदि की जानकारियों से नए वैज्ञानिक युग का सूत्रपात हुआ है।

जैवप्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के तहत कई नई योजनाओं और गतिविधियों को कार्यरूप दिया, जिससे स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, पशुपालन, पर्यावरण आदि विषयों में जैविक सिद्धांतों के अनुप्रयोग से क्रांति लाने के लिए अनुसंधान कार्यों को बढ़ावा दिया जा रहा है। पिछले दशक के दौरान चिन्हित लक्ष्यों की पहचान करते हुए कई प्रयासों के तहत प्रोटीन यांत्रिकी (प्रोटीन इन्जीनियरी), जीनोमिक्स, प्रोटियोमिक्स, स्टेम कोशिका अनुसंधान, बायोफ्यूल, संरचनात्मक जीवविज्ञान, जैवसूचना प्राणाली (बायोइन्फार्मेटिक्स) केन्द्रों की स्थापना, औषधीय एवं सुगंधित पादप अनुसंधान कार्य तथा विभिन्न क्षेत्रों में नई अनुसंधान एवं विकास परियोजनाओं के साथ-साथ औद्योगिक जैवप्रौद्योगिकी, पर्यावरण जैवप्रौद्योगिकी और विज्ञान के लगभग सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व कार्य किये गये हैं। सामाजिक एवं व्यापारिक प्रासंगिकता, प्रक्रियाओं और प्रौद्योगिकियों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए कई नये कार्यक्रमों की शुरुआत की गई है।

ग्रामीण विकास के लिए गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री, जैवनियन्त्रक अभिकर्मक (बायोकन्ट्रोल ऐजेन्ट) जिनमें पोड बोरर (हेलिकोवर्पा आर्मीगेरा), लीम से बने उत्पादों से स्प्रे, एचएएनपीवी के स्प्रे, वर्मीकम्पोस्टिंग, जैविक मिर्च की खेती, लाख की खेती, रेशम कीट पालन, बकरी पालन, बटेर पालन आदि के लिए परियोजनाएं सुविधाएं, प्रबन्धन और प्रशिक्षण आदि प्रदान किए गए। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में नई स्वास्थ्य देख-रेख प्रणालियों, जैव ईंधन तथा अन्य जैविक उत्पादों तथा परीक्षण आदि के लिए कार्य किए गये।

अनुसंधान के साथ-साथ उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए जैवप्रौद्योगिकी पार्क, इन्क्युबेटरों की स्थापना की गई जिसमें सार्वजनिक निजी भागीदारी के माध्यम से प्रायोगिक परियोजनाओं के जरिये जैवप्रौद्यागिकी गतिविधियों को बढ़ावा दिया जा सके। इस प्रयोग ने जैवप्रौद्योगिकी में उद्यमशीलता के लिए स्थानीय वैज्ञानिकों और उद्यमियों को प्रेरित किया है। कुछ अन्य प्रमुख उप्लब्धियों में मिशनमोड़ परियोजनाएँ, जिनोमिक्स का अध्ययन, जैव संसाधनों, जैविक ईंधन, टीकाकरण, खाद्य एवं पौष्टिक सुरक्षा में वृद्धि करने के लिए जैवप्रौद्योगिकी

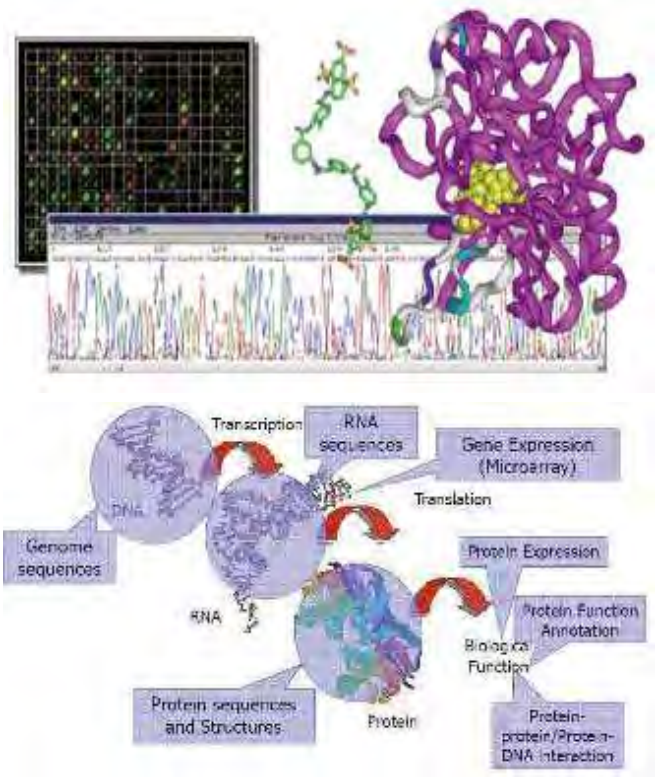


**जैव सूचना प्रणाली ( बायोइन्फार्मेटिक्स ) के द्वारा जीन और प्रोटीन के सीक्वेंस का अध्ययन**

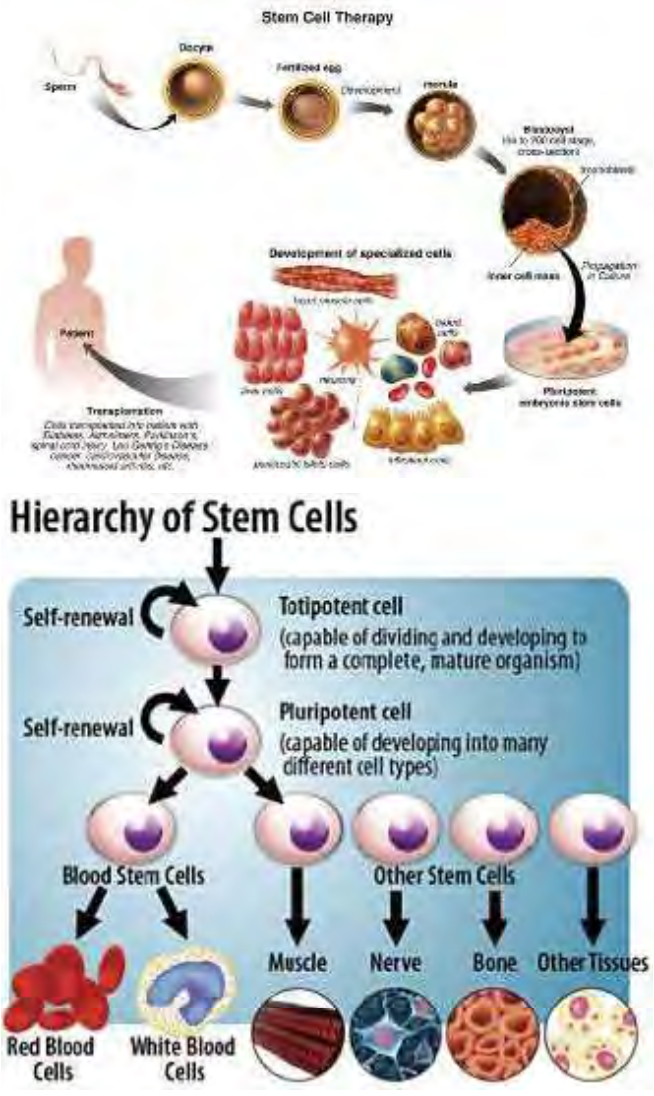


**स्टेम कोशिका उत्पादन एवं उपचार प्रक्रिया**

विभाग, नई दिल्ली के द्वारा किये गए प्रयास काफी महत्वपूर्ण हैं। अतः अनुसंधान और उद्यमता के लिए कई और द्वारा खुलेंगे। उच्च तकनीकी क्षेत्रों में जैवप्रौद्योगिकी शिक्षा की उप्लब्धता कराने की दिशा में भारत की स्थिति की अनुकूलता को देखते हुए मानव संसाधन विकास के लिए कई नई छात्रवत्तियों (फेलोशिप) कार्यक्रमों की शुरुआत की गई है, जिससे ज्यादा से ज्यादा उच्चशिक्षित वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित किया जा सके और रोजगार के अधिक अवसर पैदा किये जा सकें।

जैवप्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली ने पिछले वर्ष ही जैवप्रौद्योगिकी उद्योग अनुसंधान सहायता परिषद (BIRAC) की स्थापना की, जो 1956 अधिनियम के तहत भारतीय कंपनियों के अंतर्गत पंजीकृत है। उभरते जैवप्रौद्योगिकी उद्योगों के लिए जैवप्रौद्योगिकी उद्योग अनुसंधान सहायता परिषद, अनुदान एवं दिशानिर्देश प्रदान करेगा, जिसमें वरिष्ठ पेशेवरों, शिक्षाविदों, नीति निर्माताओं और उद्योगपतियों को शामिल कर अनुसंधान, उद्योग के माध्यम से सस्ते उत्पादों, शिक्षा साझेदारी आदि के क्षेत्रों में मापदण्ड स्थापित कर कार्य करेगा। जैवप्रौद्योगिकी विभाग का यह प्रयास भारत सरकार के एक उद्यम के रूप में यह अपने कामकाज में पारदर्शिता और दक्षता लाने के साथ-साथ उभरती भारतीय जैव-अर्थव्यवस्था के परिवर्तन को उत्प्रेरित करने के लिए भी प्रयास करेगा। लघु व्यवसाय नवीन अनुसंधान पहल (SBIRI) कार्यक्रम के तहत लघु एवं मध्यम उद्योगों के प्रोत्साहन की दिशा में अनुदान सहायता प्रदान की गई जिसमें सन् 2012 तक 900 प्रस्ताव प्राप्त हुए, जिसमें 105 परियोजनाओं को स्वीकृत किया गया। इसके परिणामस्वरूप उद्योगों में भी वैज्ञानिक खोजों, रोजगार और उत्पादों को बढ़ावा मिलेगा। इस तरह जैवप्रौद्योगिकी विभाग ने कई नये कार्यक्रमों एवं संस्थानों की स्थापना के साथ-साथ इस क्षेत्र में औद्योगिक विकास को अन्य विकास परियोजनाओं के साथ काफी बढावा दिया है, जिससे कई नए लाभदायक उत्पादों के निर्माण की दिशा में कार्य किये जा सकें।

तकनीकी क्षेत्रों में आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी की स्थापना तथा उत्पादों को चरणबद्ध तरीके से विकसित करने और विकसित तकनीकियों के ज्ञान को बेहतर समझने के लिए अब तक कई नए ऐसे संस्थानों को विकसित किया गया है, जिसमें नए अनुसंधान, और आने वाली चुनौतियों का सामना किया जा सके। वर्तमान में अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर जैवप्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली के 14 स्वायत्तशासी संस्थान कार्यरत हैं, जिसके नाम हैं-

1. **राष्ट्रीय प्रतिरक्षा विज्ञान संस्थान ( NII ), नई दिल्लीः** यह संस्थान प्रतिरक्षा, संक्रमण, आण्विक डिजाइन, पुनः उत्पादन, विकास और जीन नियमतता सहित अनुसंधान के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में कार्यरत है।
2. **राष्ट्रीय कोशिका विज्ञान केन्द्र ( NCCS ), पुणेः** यह संस्थान पशु कोशिका एवं उत्तक संवर्धन हेतु राष्ट्रीय कोशिका आधान और एक प्रक्षिशण केन्द्र के रूप में कार्यरत है। राष्ट्रीय कोशिका आधान (National Cell Repository) के तहत विभिन्न कोशिका लाईन्स को यहाँ संभाल कर रखा गया है।
3. **डी एन ए फिंगर प्रिटिंग और निदान केन्द्र ( CDFD ), हैदराबादः** यह डी एन ए फिंगर प्रिटिंग और नैदानिकी हेतु सेवाएं प्रदान करने के साथ ही संबंधित क्षेत्रों में अपने मूलभूत अनुसंधान को जारी रखे हुए है।
4. **राष्ट्रीय मस्तिष्क अनुसंधान केन्द्र ( NBRC ), मानेसर, हरियाणा :** वैज्ञानिक मानसिक असंतुलनों, संक्रमण, बीमारियों आदि अनेक क्षेत्रों में कार्य हो रहा है।
5. **राष्ट्रीय पादप जीनोम अनुसंधान संस्थान ( NIPGR ), नई दिल्लीः** पादप जीनोम अनुसंधान की दिशा में कार्यरत है। जिसमें ट्रांसजिनोमिक, पोषण (न्यूट्रीशिनल) जीनोमिकी पादप विकास एवं संरचना आदि महत्वपूर्ण विषयों पर कार्य किया जा रहा है।
6. **जीव विज्ञान संस्थान ( ILS ), भुवनेश्वरः** इस संस्थान ने संक्रमण रोग जीवविज्ञान, जीन के कार्य तथा नियमन और ट्रांसलेशन अनुसंधान एवं क्रियाकलापों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा है।
7. **जैवसंसाधन और स्थाई विकास संस्थान ( IBSD ), इम्फाल, मनीपुरः** आईबीएसडी ने पूर्वोत्तर क्षेत्र के आर्थिक विकास की दिशा में औषधीय, सुंगधित एवं उद्यान कृषि पादपों, सुक्ष्माणु जलीय और कीट जैवसंसाधनों की स्थाई उपयोगिता पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा है।
8. **राजीव गाँधी जैवप्रौद्यागिकी केन्द्र ( RGCB ), तिरूवंतपुरम, केरलः** इस केन्द्र का मुख्य ध्यान रोग जीवविज्ञान और आण्विक औषधि के अनुसंधान कार्यक्रमों पर है।
9. **स्टेम कोशिका विज्ञान और पुर्नप्रजनक औषधि ( INSTEM ), बैंगलौरः** स्टेम कोशिका जीवविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अनुसंधान और शिक्षण क्रियाकलापों के लिए एक नींव के रूप में रखा गया है जिसमें एपिथेलियल स्टेम सेल एवं विकास, ट्यूमर निर्माण, ऊतक निर्माण आदि विषयों पर कार्य किया जायेगा।
10. **ट्रांसलेशन स्वास्थ्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान ( THSTI ), फरीदाबादः** तकनीकी क्षेत्रों में आधुनिक जैवप्रौद्योगिकी की स्थापना तथा उत्पादों को चरणबद्ध तरीके से विकसित करने और विकसित तकनीकियों के ज्ञान को बेहतर समझने के लिए इस संस्थान को विकसित किया गया जिसमें नए अनुसंधान और आने वाली चुनौतियों का सामना किया जा सके।
11. **राष्ट्रीय जैवचिकित्सा जीनोमिकी संस्थान ( NIBMG ), कलयाणी, पश्चिम बंगालः** रोगों से बचाव, चिकित्सा और जनस्वास्थ्य समस्या में कमी की समझ को सुलभ बनाकर हस्तांतरित करने हेतु इसकी स्थापना की गई।
12. **क्षेत्रीय जैवप्रौद्योगिकी केन्द्र ( RCB ), गुडगाँवः** जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान तथा उससे संम्बधित मामलों को प्रदान करने के लिए यूनेस्को के तत्वावधान के अनंर्गत श्रेणीक्रम-II संस्थान के रूप में प्रशिक्षण और शिक्षण हेतु स्थापित किया गया।
13. **राष्ट्रीय कृषि-खाद्य जैवप्रौद्योगिकी संस्थान ( NABI ), मोहाली, पंजाबः** इसमें खाद्य एवं पोषण जैवप्रौद्योगिकी में व्यापक रूप से कार्य किया जायेगा।
14. **राष्ट्रीय पशु जैवप्रौद्योगिकी संस्थान ( NIAB ), हैदराबादः** इसको हैदराबाद विश्वविद्यालय के परिसर में स्थापित किया जा रहा है जो पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादकता में बढ़ोत्तरी के लिए अत्याधुनिक क्षेत्रों में कार्य करेगा।

पिछले कुछ दशक अनुसंधान संकेतों, प्रौद्योगिकीकरण, और उद्योग के क्षेत्र में जैवप्रौद्योगिकी अनुसंधान एवं उत्पादों को बढ़ावा देने तथा अर्न्तराष्ट्रीय सहयोग सम्बन्धित विकास को बढ़ावा देने के साक्षी रहे हैं। अतः जैवप्रौद्योगिकी विज्ञान में अनुसंधान को अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग के लिए भारत में कई कार्यक्रमों को कार्यरूप दिया गया। विज्ञान, अनुसंधान एवं उत्पादों की प्रक्रिया के लिये वृहद नीतियों का निर्माण तथा नई टीकाकरण तथा वैक्सीन का अध्ययन, स्वास्थ्य सुधार में बदलाव आदि के लिये कई महत्वपूर्ण परियोजनाओं को अनुदान दिया गया। मानव जीनोम अनुक्रमण (हयूमन जीनोम सीक्वेंसिग) परियोजना से जीन उपचार पद्धति की खोज में महत्वपूर्ण कार्य किये जाने हैं। आर्थिक महत्व वाले बहुत से जीन अभी उपलब्ध नहीं हैं तथा इनकी खोज अभी जारी है। प्रत्येक दृष्टि से जैवप्रौद्योगिकी विज्ञान एक अनूठी उपलब्धि है जिसके द्वारा जीन के विकास तथा उनके आपसी संबंधों को भली-भांति समझा जा सकता है तथा जीन सुधार के द्वारा रोगरोधिता, कीटरोधकता आदि में महत्वपूर्ण योगदान संभव है। अतः इसे नये प्रयोग, नये विचार और बदलाव का विज्ञान भी कहना अतिश्योक्ति न होगा।

## भारतीय विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विषयक तृतीय राष्ट्रीय सम्मेलन

स्वेदेशी सांइस मूवमेंट ऑफ इंडिया (विज्ञान भारती-दिल्ली), सी एस आई आर- राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला व भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, दिल्ली के संयुक्त तत्वाधान से राजधानी में 25-27 फरवरी, 2013 तक ''भारतीय विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी'' में अन्वेषण विषयक तृतीय राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। संस्था के संरक्षक प्रो0 के.आई.वासु द्वारा विज्ञान भारती के बारे में राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में विस्तार से प्रकाश डाला गया। संगोष्टी के राष्ट्रीय संयोजक डॉ0 देवेन्द्र प्रकाश भट्ट के अनुसार सम्मेलन में विज्ञान के अनेक क्षेत्रों और पक्षों के इतिहास एवं दर्शन तथा पारंपरिक भारतीय विज्ञान की प्रायोगिक सम्पुष्टि व वर्तमान आवश्यकताओं के तहत आधुनिकतम समग्र बोध के साथ आधुनिक प्रौद्योगिकी/प्रविधियों का समावेश रहा।

डॉ0 भट्ट ने कहा कि जब हम विज्ञान, प्रौद्योगिकी और आर्थिक विकास की बात करते हैं, हम यह भूल जाते हैं कि विज्ञान, अभियांत्रिकी और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हमारा सबसे लम्बा इतिहास है और इसलिए हमारा पहला लक्ष्य स्वेदेशी व विदेशी ज्ञान से संबद्ध भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करना और स्वास्थ्य प्रणालियों सहित प्राकृतिक और समाज विज्ञान दोनों में प्राचीन भारत की महान उपलब्धियों को प्रकट करते हुए विज्ञान, अभियांत्रिकी और प्रौद्योगिकी में राष्ट्रीयता का वतावरण तैयार करना है।

इस सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से स्थापित शोध व वैज्ञानिक संस्थाओं (यथा, सी एस आई आर, आई सी ए आर, डी आर डी ओ, आई आई टी, एन आई टी, डी एस टी, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों) तथा अप्रत्यक्ष अनौपचारिक क्षेत्रों (जिसमें स्कूली छात्रों के अन्वेषण भी शामिल हैं) व गैर सरकारी प्रतिष्ठानों के प्रतिभागियों की सहभागिता रही।

मुख्य अतिथि भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली के अध्यक्ष प्रो0 कृष्ण लाल ने उद्घाटन भाषण में स्वेदेशी विज्ञान की महत्ता का वर्तमान आधुनिक परिपेक्ष्य में विवरण प्रस्तुत किया व भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सौवें अधिवेशन के संदर्भ में भारत के प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह द्वारा विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं अन्वेषण नीति की घोषणा का विशेष जिक्र किया। डॉ0 हरि शंकर गुप्त, निदेशक एवं कुलपति, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, दिल्ली ने समारोह की अध्यक्षता करते हुए कहा कि कृषि विज्ञान के परिपेक्ष्य में सतत् विकास पर विशेष बल दिये जाने का आह्वान किया। इस अवसर पर द्विभाषीय हिन्दी व अंग्रेजी पुस्तक का विमोचन प्रो0 कृष्ण लाल और जर्नल ऑफ इन्वायरन्मेंटल एंड नैनोटेक्नॉलाजी का विमोचन डॉ0 हरि शंकर गुप्ता द्वारा किया गया।

समापन समारोह में प्रो0 दीपक पेंटल, पूर्व कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय व सदस्य एस.ए.सी-सी, भारत सरकार द्वारा चयनित उत्कृष्ट व्यक्तियों को उनकी उपलब्धियों हेतु पुरस्कृत किया गया। धन्यवाद ज्ञापन डॉ0 एस के धवन ने किया।

प्रस्तुतिः **डॉ0 देवेन्द्र प्रकाश भट्ट**, राष्ट्रीय संयोजक,
स्वदेशी साइंस मूवमेंट आफ इंडिया, नई दिल्ली।

# जैव ऊर्जा और जलवायु परिवर्तन

**महेश कुमार सिंह[1] एवं प्रो0 नन्दिता घोषाल[2]**

जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण हरित गृह गैसों की सान्द्रता का वायुमण्डल में बढ़ जाना है। इन हरित गृह गैसों में मुख्य भूमिका कार्बन डाईआक्साइड की है जो 65 प्रतिशत तक भागीदारी करता है। जब हम ऊर्जा आपूर्ति के लिए जीवाश्म ईंधन जलाते हैं तो करोड़ों वर्षों से अवरुद्ध कार्बन डाइआक्साइड वायुमण्डल में प्रवेश कर जाती है और जलवायु परिवर्तन का कारण बन जाती है। इस समस्या से बचने के लिए ऊर्जा फसलों से ऊर्जा उत्पादन और उपयोग करना, हरित गृह गैस उत्सर्जन को कम करने का एक संभव विकल्प है। जैव ऊर्जा जैविक उत्पत्ति के अक्षय स्त्रोत से प्राप्त ऊर्जा है जो कि जैविक कार्बन के स्थिरीकरण से उत्पन्न होती है।

**जैव ऊर्जा और जलवायु परिवर्तन :** ऊर्जा फसलें कार्बन उदासीन होती हैं। पौधे अपने वृद्धिकाल में प्रकाशसंश्लेषण के द्वारा वायुमण्डल से कार्बन डाइआक्साइड लेकर अपने ऊत्तकों में कार्बन का संचयन करते हैं। जब इन पौधों को ऊर्जा आपूर्ति के लिए काटकर जलाया जाता है तो कार्बन डाइआक्साइड पुनः वायुमण्डल में विसर्जित हो जाती है। अब सवाल यह उठता है कि यदि कार्बन डाइआक्साइड पुनः वायुमण्डल में जाता है तो ये वायुमण्डल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा कम करने में कैसे सहायक है ? उत्सर्जित कार्बन डाइआक्साइड केवल ऊर्जा फसल के 3-5 वर्ष के विकास काल के समय संचित की जाती हैं, जबकि जीवाश्म ईंधन में करोड़ों वर्षों पूर्व संचित कार्बन डाइआक्साइड होती है अर्थात् हम केवल कार्बन का पुनर्चक्रण करते हैं और ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इसीलिए इन्हें ''कार्बन उदासीन'' कहा जाता है। कार्बन उदासीन जैव ऊर्जा से प्रति इकाई उत्पन्न ऊर्जा बिना जीवाश्म कार्बन का उत्सर्जन किये एक इकाई ऊर्जा के समतुल्य होती है, इस प्रक्रिया को जीवाश्म ईंधन प्रतिस्थापन कहा जाता है।

बहुत से विकासशील देशों में जैव ऊर्जा अधिकांश प्रयुक्त ऊर्जा का अंश होती है परन्तु अधिकतर विकसित देशों में जीवाश्म ऊर्जा शेष ऊर्जा स्त्रोतों पर प्रभावी हो गयी है। यद्यपि भविष्य में आधुनिक जैव ऊर्जा अधिक महत्वपूर्ण हो जायेगी। यूरोप और संयुक्त गणराज्य में जैव ईंधन के रूप में प्रयोग किये जाने वाली प्रमुख फसलें मिस्कैन्थस, रीड केनरी घास, पापलर, विलो और तिलहन बीज वाली फसलें मुख्यतः रेप सीड आदि हैं।

**जैव ऊर्जा स्त्रोत का वर्गीकरण**

जैव ऊर्जा मुख्य रूप से पौधों के जलने से, तिलहन पौधों से प्राप्त तरल ईंधन के उत्कर्षण से या खाद अथवा कचड़ों से उत्पन्न किया जा सकता है। जैव ऊर्जा उत्पादन के लिए उगाये जाने वाले पादपों को निम्नांकित समूहों में विभाजित किया जा सकता है।

**तिलहनी पौधे :** इस समूह में अलसी, सरसों, सन, सूर्यमुखी, अरण्ड, जट्रोफा, जैतून, ताड़, नारियल,पोंगामिया और मूंगफली जैसे तिलहनी पौधों को शामिल किया गया है वनस्पति तेल प्रत्यक्ष ईंधन की तरह प्रयोग किया जा सकता है या इनका रासायनिक परिवर्तित रूप जैव ईंधन जैसे जैव डीजल की तरह प्रयुक्त किया जा सकता है।

रेप सीड *( ब्रेसिका नेपस )*

सूर्यमुखी *( हेलिएस एनस )*

**मण्डयुक्त पौधे :** इसमें जौ, गेहूँ, जई, मक्का तथा आलू आदि मण्ड बाहुल्य पौधों को शामिल किया गया है। इनसे ईथाइल एल्कोहाल प्राप्त किया जाता है तथा इनके भूसे को भी ईंधन के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

मक्का *( जिया मेज )*

जौ *( होर्डियम वुल्गेयर )*

**शर्करा युक्त फसलें :** उदाहरण के तौर पर चुकन्दर, गन्ना आदि पौधों को लिया जा सकता है। इनके मण्ड से ईथाइल एल्कोहाल एवं किण्वन से ग्लूकोज प्राप्त किया जाता है। ब्राजील और स्वीडन में जैव ईथाइल एल्कोहाल सीधे ईंधन की तरह प्रयोग किये जाते हैं। अमेरिका में गैसोलिन के साथ सम्मिश्रण उपयोग किया जाता है।

चुकन्दर *( बीटा बुल्गेरिस )*

गन्ना *( सैकेरम आफिसिनेरम )*

*[1]शोध छात्र, [2]आचार्या, वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

**ठोस ऊर्जा उत्पादक फसलें:** इस समूह में कार्टून, ज्वार, बाजरा, केनाफए, कैक्टस, रीड केनरी घास, मिस्कैन्थस की प्रजातियां, विलो, पॉपलर और यूकेलिप्टस आदि पौधों को शामिल किया गया है। इन पौधों को जलाकर ऊष्मा और विद्युत उत्पन्न करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रयुक्त किये जा सकते हैं अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मिथाइल और ईथाइल एल्कोहाल उत्पन्न करके जैव ईंधन की तरह उपयोग किये जा सकते हैं।

**मिस्कैन्थस**
*( मिस्कैन्थस जाइजैन्टियस )*

**पॉपलर**
*( पापुलस ट्रिमुल )*

**शैवाल :** शैवाल जनित जैव ईंधन भी जीवाश्म ईंधन का एक विकल्प है जिसमें शैवाल द्वारा संचित ऊर्जा प्राकृतिक स्रोत की तरह

*कप्पाफेकस एल्वारेजी*

*लैमिनेरिया डिजिटेटा*

उपयोग किया जाता है। शैवालीय जैव ईंधन अपने कुछ विशिष्ट गुणों के कारण उत्तम माने जाते हैं।

*माइक्रोसिस्टिस, पाइरीफेरा, सारगासम, लेमिनेरिया, कप्पाफेकस, अल्वा* कुछ मुख्य शैवाल हैं जो जैव ईंधन के लिए उगाये जाते हैं। सारगासम से बायोगैस प्राप्त किया जाता है।

**जैव भार का ऊर्जा में परिवर्तन :** जैव रासायनिक और ऊष्मा रासायनिक परिवर्तन विधियों से जैव भार को कार्बन युक्त जैव ईंधन में बदला जा सकता है और जैव डीजल व अन्य द्रव ईंधन के साथ-साथ हाइड्रोजन भी प्राप्त किया जा सकता है।

ईथाइल एल्कोहाल के उत्पादन में प्राथमिक स्रोत कृषि संबंधी फसलों से उत्पन्न शर्करा एवं मण्ड हैं और इनका प्राथमिक उपयोग गैसोलिन के साथ सम्मिश्रण है, जो कि सामान्यतः 5-22 प्रतिशत तक होता है। अधिकांश देशों में किण्वन तकनीक व्यावसायिकतौर पर उपयोग में लायी जाती है।

कनाडा और स्वीडन ने लिग्नोसेलूलोजिक स्रोत से ईथाइल एल्कोहाल के उत्पादन की नई तकनीक विकसित की है।

ठोस जैवभार में जीवाश्म ईंधन की तुलना में कम ऊर्जा घनत्व होता है जिसके कारण स्थानान्तरण, संचयन और रख-रखाव प्रति इकाई ऊर्जा के अनुसार अधिक खर्चीला होता है। यदि जैवभार उसके उद्गम स्थल के निकट ही सान्द्रित व परिवर्तित किया जाय तो यह खर्च कम किया जा सकता है।

विभिन्न प्रकार के जैवभार उत्पाद विभिन्न प्रकार की परिस्थिति और उद्देश्यों के लिए अनुकूलित होते हैं, जैसे द्रव रूप स्थानान्तरण और ठोस रूप ऊर्जा संयंत्र में प्रत्यक्ष ज्वलन के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। ज्वलन तथा गैसीकरण इनमें मुख्य तकनीक हैं।

**जैव ईंधन**

कार्बन डाइआक्साइड निष्काषित
⇃↾
कार्बन डाइआक्साइड समेकित
(वातावरणीय $CO_2$ बराबर बना रहता है इसलिए कार्बन उदासीन होते हैं)

**जीवाश्म ईंधन**

निष्कासित कार्बन डाइआक्साइड अधिक होता है।
(वातावरणीय कार्बन डाइआक्साइड बढ़ जाता है)

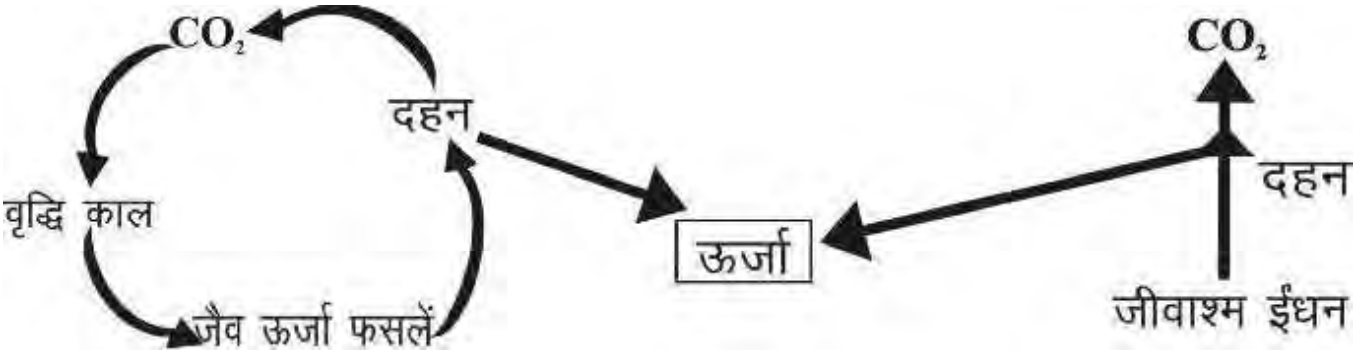


**कार्बन का पुनर्चक्रण एवं जैव ईंधन और जीवाश्म ईंधन दहन का तुलनात्मक रेखाचित्र**


ISSN 2231-2455

1- **ज्वलन-** जैव ऊर्जा मुख्य रूप से जैवभार के ज्वलन से उत्पादित होता है। जैवभार को जलाकर ऊर्जा उत्पन्न करना एक प्राचीन एवं सुगम तरीका है। ठोस जैवभार को कोयला के साथ सह ज्वलन करके जैवभार को जीवाश्म ईंधन के साथ योजित किया जा सकता है। डीजल का बायोडीजल के साथ सम्मिश्रण, गैसोलिन का जैव ईथाइल एल्कोहाल के साथ सम्मिश्रण इसके अन्य उदाहरण हैं।

2- **गैसीकरण :** शुष्क जैवभार का गैसीकरण कोयले के गैसीकरण से आसान होता है। गैसीकरण की कार्यक्षमता ज्वलन से लगभग 40-50 प्रतिशत अधिक होती है। यह गैस टर्बाइन से विद्युत उत्पन्न कर सकता है या वैकल्पिकतौर पर उत्पन्न गैस द्रवित जैव ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

**जैव ऊर्जा और परिवहन :** जैव ऊर्जा का उपयोग मुख्यरूप से परिवहन में किया जाता है। जैव ईंधन को वाहनों में ईंधन के रूप में जलाने की तकनीक ओट्टो चक्र (चार स्ट्रोक वाली इंजन) पर आधारित है। सरल जैव ईंधन उपयोग करने वाला सबसे सक्रिय उदाहरण ब्राजील है। 1980 में ब्राजील की सभी निजी कार समूहों को गन्ने के किण्वन से प्राप्त ईथाइल एल्कोहाल तथा गैसोलिन से प्रतिस्थापित किया गया है, परन्तु अभी भी इसका गैसोलिन के साथ 20-25 प्रतिशत सम्मिश्रण किया जाता है। शीशारहित गैसोलिन के लिए निर्मित अत्याधुनिक इंजन बिना किसी परिवर्तन के 10 प्रतिशत गैसोलिन में ईथाइल एल्कोहाल प्रयोग कर सकता है। भारत में 10 प्रतिशत सम्मिश्रण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए गन्ने के उत्पादन को दुगुने से अधिक करना पड़ेगा।

अधिकांशतः वाहन निर्माताओं ने इंजन प्रबंधन साफ्टवेयर विकसित किया है जो सेंसर की सहायता से, बाहर निकलने वाले गैस का गुणधर्म जाँच कर ईथाइल एल्कोहाल और गैसोलिन का अनुपात जाँच लेता है और उसी के अनुसार इंजन प्रबंधन के कारकों को निर्धारित करता है। इंजन परिवर्तन की कीमत कम है (230 यू0एस0 डालर)। इसके द्वारा इंजन को एक निश्चित ईंधन की उपस्थिति में चलने की बाध्यता समाप्त हो जाती है।

जैसे-जैसे लिग्नोसेलूलोज से शर्करा और ग्लिसराइड उत्पादन बढ़ रहा है वैसे-वैसे जैविक ईथाइल एल्कोहाल का भी बाजार बढ़ता जा रहा है। इस तरह जैव ऊर्जा युक्त उत्पादों को इथाईल एल्कोहाल, डीजल, हाइड्रोजन और रासायनिक मध्यस्थों में बदलकर पेट्रो-रासायनिक उत्पादों को विस्थापित किया जा सकता है।

आधुनिक डीजल इंजनों में जैव ईंधन सीधे प्रयोग किया जा सकता है जो कार्यक्षमता तो बराबर देता है परन्तु इससे उत्पन्न कार्बन डाइआक्साइड डीजल से उत्पन्न कार्बन डाइआक्साइड की तुलना में कम होती है। रेलवे परिवहन से उत्पन्न गैसों के उत्सर्जन को भी जैव ईंधन की सहायता से नियंत्रित किया जा सकता है।

**जट्रोफा व जैव ईंधन :** अक्षय ऊर्जा स्रोतों में बढ़ती रुचि के बजाय वनस्पति तेलों से जैव ऊर्जा उत्पादन हरित गृह उत्सर्जन को कम करने का एक संभव विकल्प है। इस पृष्ठभूमि में जट्रोफा *(जट्रोफा कर्कस)* से जैव

*जट्रोफा कर्कस*

*जट्रोफा* के बीज

*जट्रोफा* का फलगुच्छ

डीजल उत्पादन एक ज्वलंत शोध का विषय हो गया है। *जट्रोफा यूफोर्बिएसी* कुल का एक बहुउद्देशीय एवं बहुवर्षीय झाड़ी है। यह पौधा अल्प जल आपूर्ति में भी उग जाता है क्योंकि इसमें सूखा प्रतिरोधक क्षमता होती है। अतिविस्तृत जड़ होने के कारण यह मृदा अपरदन रोकने में सहायक होता है। जट्रोफा एक औषधीय पौधा भी है। इसका तेल जुलाब की तरह उपयोग किया जाता है जो कब्ज में लाभदायक होता है। इसके तेल में जट्रोफिन नामक उपक्षार होता है जो कैंसरविरोधी स्वाभाव का होता है। कर्सिन नामक एकल शृंखला प्रोटीन भी जट्रोफा के बीज में पाया जाता है जो कोशिका में पाये जाने वाले राइबोसोम को निष्क्रिय करके कैंसर से बचाने में सहयोग करता है लेकिन इसको जनहित में क्रियान्वित करने के लिए अभी इस पर वृहद् शोध की आवश्यकता है। भारत व अन्य देशों में इसका तेल साबुन बनाने के लिए भी प्रयुक्त होता है। जट्रोफा की पत्तियाँ पोषक तत्वों से परिपूर्ण होती हैं और जब भूमि पर गिरती हैं तो वहाँ केंचुए की सक्रियता बढ़ जाती है तथा मृदा की संगठनात्मक संरचना में सुधार होता है जिससे मृदा की उर्वरता बढ़ जाती है। यह पौधा मृदा में कार्बन अवशोषण की क्षमता को भी बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। इस तरह जट्रोफा को उगाने से भूमि सुधार एवं वायुमंडल में बढ़ती कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा को कम करने का दोहरा लाभ है।

इस पौधे से प्राप्त किया गया तेल आसानी से तरल जैव ईंधन (जैव डीजल) में बदला जा सकता है जो यूरोपीय एवं अमेरिकी मानक के समतुल्य होता है। जैव डीजल मूलतः छोटी शृंखला वाले एल्कोहाल के साथ वनस्पति तेल के ट्रांस-एस्टरीफिकेशन के फलस्वरूप बना हुआ वसीय अम्लों के एकल एल्काइल एस्टर होते हैं। जट्रोफा के बीज में लगभग 35-41 प्रतिशत तक तेल होता है जो आसानी से जैव डीजल में

बदला जा सकता है। जट्रोफा का तेल असंतृप्त वसीय अम्लों (लगभग 79 प्रतिशत) से परिपूर्ण होते हैं और 90-97 प्रतिशत तक इन वसीय अम्लों को मिथाइल एस्टर में बदला जा सकता है। इससे उत्पन्न खली को उर्वरक की तरह उपयोग किया जा सकता है तथा कार्बनिक अवशेष को विघटित करके बायोगैस प्राप्त किया जा सकता है। इन्हीं सब रोचक विशेषताओं को ध्यान में रखकर अधिकांश निवेशक, नीति निर्माता तथा स्वच्छ विकास तंत्र परियोजनाओं के निर्माता ऊर्जा आपूर्ति की समस्या से निपटने के लिए तथा हरित गृह गैस उत्सर्जन को कम करने के मद में *जट्रोफा कर्कस* से आशान्वित हैं।

**जैव ऊर्जा की ग्रहणशीलता :** अधिक ऊर्जा संचयन की क्षमता और महत्वपूर्ण लाभ के बावजूद जैव ऊर्जा योजनाओं को क्रियान्वित करने में कठिनाईयाँ आ रही हैं। जनता की दृष्टि में असहज तकनीक, अधिक जैवभार की आवश्यकता, जीवाश्म ईंधन की तुलना में कम ऊर्जा घनत्व, कुछ ऊर्जा फसलों के द्वारा अधिक जल एवं पोषक पदार्थों की आवश्यकता कुछ ऐसे कारण हैं जो जैव ऊर्जा को ग्रहण करने में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। जब फसलों के जैवभार को जैव ऊर्जा में बदला जाता है तो आशा के अनुरूप अर्थव्यवस्था प्राप्त करना भी मुश्किल साबित होती है। वित्तपोषण तथा संसाधन और योजना पर सहमति प्राप्त न करना भी इसके ऋणात्मक बिन्दुओं के अंश हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या तथा आधुनिक सुख-सुविधा और नगरीकरण भी एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी वजह से जैव ऊर्जा फसलों के लिए भूमि की उपलब्धता तथा उपयुक्तता पर खतरा उत्पन्न हो गया है।

## ऊर्जा फसलें और संभावनाएँ

विश्व प्रसिद्ध पर्यावरण वैज्ञानिक स्मिथ व उनके सहयोगियों द्वारा 2006 में एक मूल्यांकन में आंकलित किया गया कि अगले 20 वर्षों में क्षेत्रीय व वैश्विक स्तर पर सम्पूर्ण ऊर्जा फसलों द्वारा आच्छादित क्षेत्र 58-141 मिलियन हेक्टेयर होने की संभावना है तथा उत्पादन न्यूनतम और अधिकतम 230-700 और 560-1700 मिलियन टन जैवभार (शुष्क) प्रति वर्ष है। मानक रूपान्तरण कारक, जिससे जैवभार और ऊर्जा घनत्व का आंकलन किया जाता है, के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि ऊर्जा फसलों से जीवाश्म ईंधन की तुलना में उत्सर्जित होने वाले लगभग 360-2730 मिलियन टन कार्बन डाइआक्साइड प्रति वर्ष कम हो सकती है। इस कमी को हासिल करने में कुछ कार्बन डाइआक्साइडरहित हरित गृह गैस की मात्रा बढ़ सकती है जो 270-660 मिलियन टन प्रति वर्ष हो सकती है। इस तरह लगभग 100-2070 मिलियन टन कार्बन डाइआक्साइड की कमी का शुद्ध लाभ प्रति वर्ष हो सकता है।

इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो मानवीय क्रियाओं से वैश्विक स्तर पर 20,000 मिलियन टन कार्बन डाइआक्साइड प्रति वर्ष उत्सर्जित होती है तथा इसको कम करने में ऊर्जा फसलों का सर्वाधित योगदान है जो लगभग 2000 मिलियन टन कार्बन डाइआक्साइड प्रतिवर्ष (10 प्रतिशत) का है। क्योटो प्रोटोकाल का 2012 में 1990 के सापेक्ष रखा गया 8 प्रतिशत का उत्सर्जन ह्रास का लक्ष्य जैव ऊर्जा अकेले हासिल करने में सक्षम है। इस तरह ऊर्जा फसलें जलवायु परिवर्तन से जूझने और भविष्य में ऊर्जा आपूर्ति के लिए महत्वपूर्ण युक्ति हैं।

**विभिन्न प्रकार के जैव ऊर्जा उत्पादक पौधों के प्रति इकाई भार से उत्पन्न उर्जा का विवरण**

| **जैव ऊर्जा उत्पादक फसलों के नाम उनके वानस्पतिक नाम के साथ** | **प्रति इकाई ताजा भार से उत्पन्न ऊर्जा ( मेगा जूल/किग्रा. ताजा भार )** |
|---|---|
| **तिलहनी पौधे** | |
| सोयाबीन *(ग्लाइसिन मैक्स)* | 6.4 |
| जट्रोफा *(जट्रोफा कर्कस)* | 12.8 |
| रेपसीड *(ब्रेसिका नेपस)* | 11.7 |
| **मण्डयुक्त पौधे** | |
| आलू *(सोलेनम ट्यूबरोसम)* | 3.1 |
| मक्का *(जिया मेज)* | 10.0 |
| जौ *(होर्डियम वुल्गेयर)* | 10.2 |
| **शर्करा युक्त फसलें** | |
| गन्ना *(सैकेरम आफिसिनेरम)* | 2.3 |
| चुकन्दर *(बेटा बुल्गेरिस)* | 2.6 |
| **ठोस ऊर्जा उत्पादक फसलें** | |
| मिस्कैन्थस *(मिस्कैन्थस जाइजैन्टियस)* | 17.0 |
| ज्वार *(सारघम बाइकोलर)* | 10.0 |
| शैवाल | 1.8 |

# *बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना* : मिलैनिन एक वरदान

मनोज कुमार[1], डॉ0 कविता शाह[2], प्रो0 आर0 एस0 दूबे[3] एवं प्रो0 रमेश चन्द[4]

भारत एक कृषि प्रधान देश है, यहाँ की 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है। हरित क्रान्ति के पहले यहाँ पर खाद्य पदार्थों का उत्पादन

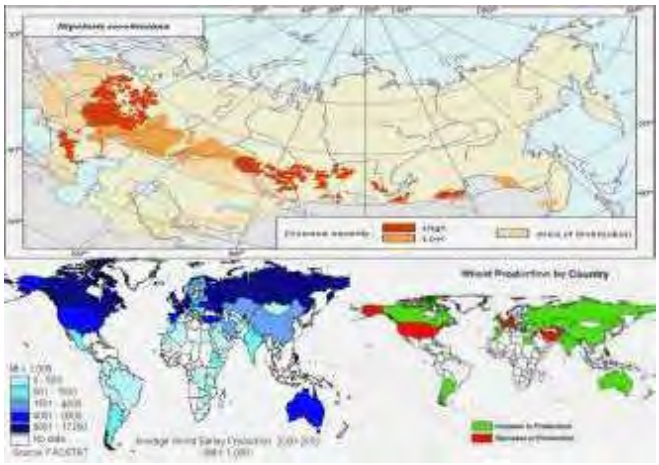

***बाइपोलेरिस सोरोकिनिएना,* गेहूँ तथा जौ की भौगोलिक स्थिति का विवरण**

बहुत ही निम्न स्तर पर था। देश के वैज्ञानिकों के अथक प्रयासों से हरित क्रान्ति द्वारा पिछले 30 वर्षों में खाद्य पदार्थों के उत्पादन का स्तर लगभग 75 प्रतिशत बढ़ा है। इसके कारण कृषि क्षेत्र न केवल जीविकोपार्जन का बल्कि व्यवसाय का भी एक प्रमुख साधन बन गया है। अतः फसलों के उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाने में कृषि वैज्ञानिकों व किसानों की मुख्य भूमिका है। परन्तु, विगत कुछ वर्षों में भूमण्डलीय परिवर्तन के कारण फसलों में अनेक रोगों का प्रकोप तेजी से बढ़ा है, जिससे उत्पादन प्रभावित हुआ है। कवक फसलों के उत्पादन को लगभग 30 प्रतिशत तक प्रभावित करते हैं। एस्कोमाइसिटीज समूह का *बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना* एक प्रमुख कवक है, जो मुख्यतः गेहूँ, जौ व मक्का में पर्ण-अंगमारी नामक रोग पैदा करता है। यह न केवल विश्वस्तरीय संकट को बढ़ावा दे रहा है बल्कि उत्पादों के आयात-निर्यात में बाधा उत्पन्न कर आर्थिक रूप से नुकसान पहुँचा रहा है।

पूरे विश्व में गेहूँ की खेती एक प्रमुख फसल के रूप में की जाती है और फसलों के उत्पादन में गेहूँ दूसरे स्थान पर है जबकि जौ चौथे स्थान पर है। भारत में गेहूँ की उत्पादकता 31.5 प्रतिशत है तथा जौ की 0.76 प्रतिशत। *बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना* गेहूँ में पर्णअंगमारी रोग पैदा कर 15-20 प्रतिशत तथा जौ में 16-33 प्रतिशत की हानि पहुँचता है।

*बाईपोलेरिस सोरोकिनिएना* गहरे व हल्के भूरे रंग का 38.6-65.8 µM × 12.3-25 µM होंठ के आकार का कर्णा (Conidia) बनाता है जोकि 4-13 पट्ट में विभाजित होता है और यह कवक सूत्र (Hyphae) के अग्रभाग यानी कर्णाधार (Conidiophore) पर लगा होता है।

**पत्तियों पर पर्ण अंगमारी रोग के लक्षण**

अनुकूल तापमान (25-30° से.) और वातावरण में अधिक सांद्रता की उपस्थिति में कर्णा 2-4 घण्टे में अंकुरित हो जाता है, और बढ़कर अत्यन्त महीन धागे जैसी संरचना 'कवक सूत्र' बनाता है, जोकि बाद में कवक जाल (Mycelium) बना लेता है। कर्णा व कवक सूत्रों की कोशाभित्ति मुख्यतः कवक सेन्युलोज, काइटिन और कैलोस (Callose) की बनी होती है। कोशाभित्ति का रंग एक विशेष प्रकार के पदार्थ यानी मिलैनिन के कारण हल्के या गहरे भूरे रंग का होता है।

मिलैनिनयुक्त उत्तकों में विद्युतीय संकेत होता है, जो कवक को बचाने व रोग प्रबलता को बढ़ाने के लिए सहायक होता है। मिलैनिन का एन्टीआक्सीडेटिव एन्जाइम, जैसे कि सुपर आक्साइड डिसम्यूटेज (एस0ओ0डी0), कैटालेज एवं पराक्सीडेज, से बहुत ही सीधा संबंध होता है, जो कवक को वातावरण की विपरीत परिस्थितियों जैसे अधिक तापमान, UV, प्रकाश व अन्य प्रकार की बाह्य हानियों से बचाता है। वातावरण में रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पीसिज (ROS) जैसे कि हाइड्रॉक्सी

***कवक के कर्णा की सूक्ष्मदर्शी संरचना***

रेडिकल ($^{-}OH$), हाइड्रोजन परॉक्साइड ($H_2O_2$), सुपरआक्साइड रेडिकल ($^{o}O_2$) इत्यादि की अधिकता होने पर कर्णा व कवक सूत्र के आकार छोटे हो जाते हैं।

*[1]शोध छात्र; [2]उपाचार्य, पर्यावरण एवं धारणीय विकास संस्थान; [3]आचार्य, जैवरसायन विभाग, विज्ञान संकाय; [4]आचार्य, कवक एवं पादप रोग विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221 005.

इनमें (कवक) संग्रहीत मुख्य भोजन ग्लाइकोजन (Glycogen) तथा तेल (Oil) की बूँदे होती हैं, जो मिलैनिनयुक्त कोशाभित्ति के अन्दर बन्द होने के कारण कवक को भोजन प्रदान कर लम्बे समय तक जीवित रखने के लिए उत्तरदायी होती हैं। अनुकूल परिस्थिति आने पर कर्णा अंकुरित होकर अपनी विशेष शाखा यानी चूसकांगों (Haustorium) द्वारा वाहक (Host) से भोजन ग्रहण करता है और वाहक पर फैलकर पर्ण अंगमारी रोग पैदा करता है। वाहक पर बनने वाले नये-नये कर्णा बहुत ही हल्के भूरे रंग व होंठ के आकार जैसे लम्बे होते हैं तथा अंकुरण के लिए ये कर्णा बहुत ही आक्रामक होते हैं।

गेहूँ व जौ (वाहक) के पौधों को मरने के बाद कवक सूत्र व कर्णा सुसुप्तावस्था में गेहूँ व जौ के बीजों और अवशेषों पर लगे रहते हैं तथा इनका रंग गहरा भूरा व आकार छोटा हो जाता है।

प्रयोगशाला में इन्हें एक-एक महीने के अन्तर पर कृत्रिम माध्यम (जैसे कि PDA व MM Media) पर उगाने से यह 50-70 प्रतिशत व गहरे भूरे रंग के मिलते हैं तथा कर्णा 4-7 पट में ही विभाजित होता है, इस प्रकार इनके कवक सूत्र व कर्णा का रंग, आकार व पट विभाजन हमेशा परिवर्तित होता रहता है।

**कर्णा से अंकुरित कवक सूत्र की सूक्ष्मदर्शी संरचना**

कवक सूत्र व कर्णा की कोशाभित्ति में मिलैनिन का बनना, जमा होना तथा रोग जनन में भूमिका एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया है। पौधों तथा स्तनधारियों में मुख्यतः दो प्रकार के मिलैनिन बनते हैं- ड्राइहाइड्रॉक्सी नेप्थेलिन (1,8 - DHN) और ड्राईहाइड्राक्सी फिनाइल-एलैनिन (3,4-DOPA)। सामान्यतः पौधों में रोग पैदा करने वाले कवक जैसे कि *टोरूला कोरालाइन, एस्परजिलस फ्यूमिगेटस, एस्परजिलस निडूलेन्स, कोलैटोट्राइकम लैजीनेरियम, मैग्नापोर्थी ग्रीसिया, अल्टरनेरिया अलटरनाटा, कोक्लियोवोलस ओराइजी, वर्टीसीलियम लैकेनाई और एक्जोफिएला डर्माटाइटिडिस* इत्यादि में मुख्यतः DHN मिलैनिन पाया जाता है।

**अत्यधिक गहरे भूरे रंग के कर्णा की सूक्ष्मदर्शी संरचना**

**कृत्रिम माध्यम पर विभिन्न रंग के *बाइपोलेरिस सोरोकिनिएना* कवक**

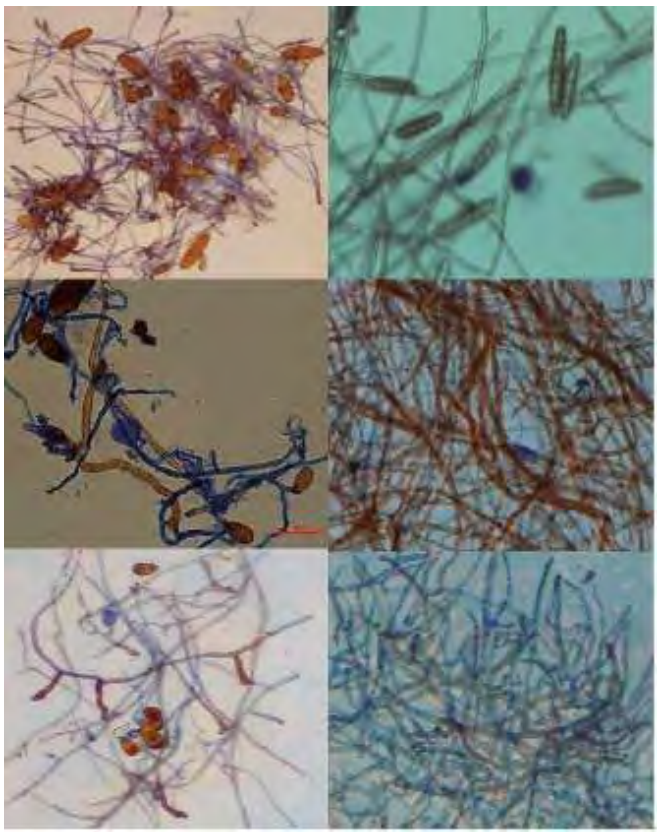

**विभिन्न प्रकार के कर्णा व कवक जाल की सूक्ष्मदर्शी संरचना**

मिलैनिन का उत्पादन कई चरणों में होता है और इन पर बहुत सारे जीन व एन्जाइम कार्य करते हैं जिनमें रिडक्टेज, डिहाइड्रेटेज व लैकेज मुख्य होते हैं। कोशा के अन्दर कोशाद्रव्य में ग्लाइकोलिसिस का उत्पाद

यानी पाइरूविक अम्ल बनता है जो माइटोकाण्ड्रिया में प्रवेश करने से पहले ऐसीटिल-कोएन्जाइम-A या मैलेनोइल-कोएन्जाइम-A बनाता है, जो मिलैनिन बनाने के लिए प्रमुख अग्रदूत होता है।

पाइरुविक अम्ल + CoA+ $NAD^+$ —(पाइरुविक डीहाइड्रोजिनेज)→ ऐसीटिल-कोएन्जाइम-A+NAD.2H+$CO_2$

Acetyl CoA, पेन्टाकिटाइड सिन्थेस एन्जाइम द्वारा 1, 3, 6, 8 टेट्राहाइड्रक्सिनैप्थेलीन ($T_4HN$) में परिवर्तित होता है जिसके लिए PKSP(ALB-1) जीन उत्तरदायी होता है। क्रमबद्ध चरण में $T_4HN$ का अनॉक्सीकरण (Reduction) $T_{4-}$ हाइड्राक्सीनैप्थेलीन सिन्थेज एन्जाइम द्वारा साइटोलोन में होता है। तत्पश्चात् साइटोलोन का डिहाइड्रेसन साइटोलोन डीहाइड्रीटेज एन्जाइम द्वारा 1, 3, 8 ट्राइहाइड्राक्सीनेप्थेलीन ($T_3HN$) में होता है। जोकि बाद में $T_3HN$ रिडक्टेज एन्जाइम द्वारा वर्मीलोन में परिवर्तित हो जाता है और अन्त में यह डिहाइड्रेटेड होकर 1,8 DHN बनाता है। p-diphenol-oxidase (Laccase) एन्जाइम 1,8 DHN की कई सारी कड़ियां जुड़कर DHN मिलैनिन बनाती है।

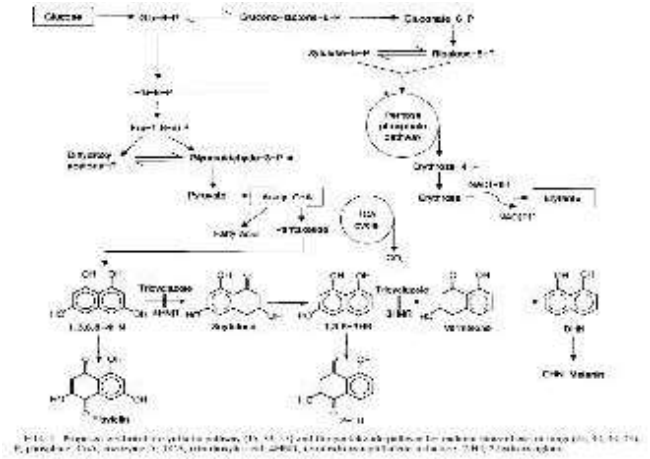

**मिलैनिन जैवसंश्लेषण के विभिन्न चरण**

DHN मिलैनिन जो एक चयापचयी उत्पाद है, कवक के कोशाभित्ति में जमा होकर कवक के जीवनकाल और आबादी में विभिन्नता को निर्धारित करते हैं। कवक की कोशाभित्ति में मिलैनिन की उपस्थिति के कारण पौधों पर रोगजनन क्षमता व आक्रामकता निर्धारित होती है। कवक के इस रोगजनित क्षमता को समाप्त करने के लिए बाजार में बहुत सारी कवकरोधी दवायें उपलब्ध हैं। जिनमें कि मुख्य रूप से ट्राईसाक्लाजोल, कार्प्रोपामाइड, पाइरोक्वीलोन, प्रोबेनाजोल (ओराइजीमेट), PCBA (ब्लास्टिन), 4, 5, 6, 7 – ट्राइक्लोरोफ्थैलाइट (फ्थलाइड, रैबिराइड) इत्यादि।

परन्तु ये दवायें कवक को पूरी तरह से नष्ट करने में कारगर नहीं हैं, लेकिन माना जाता है कि ये दवायें जब भी पौधों पर छिड़की जाती हैं तो ये पौधों के कोशाभित्ति में जमा होकर कवक की रोगजनन क्षमता को कम कर देती हैं और इस प्रकार से पर्ण अंगमारी रोग की रोकथाम करती है।

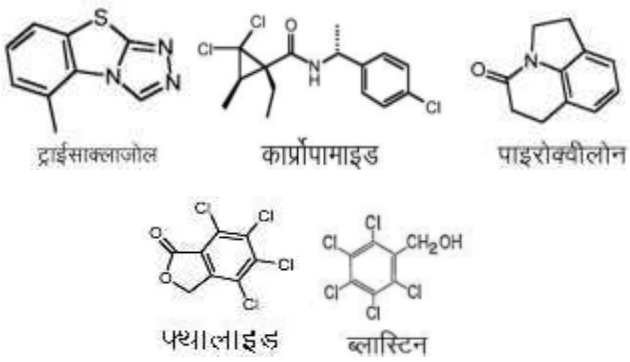


**विभिन्न प्रकार के कवकरोधी दवाओं की रासायनिक संरचना**

ये दवायें कवक के मिलैनिन पाथवे के किसी एक चरण पर कार्य कर पाथवे में बनने वाले नये उत्पाद को रोक देती हैं, जिससे मिलैनिन निर्माण रुक जाता है। परन्तु कवक खुद को बचाने के लिए तथा रोगजनन के लिए कोई दूसरा रास्ता ढूंढ़लेता है। कवक मिलैनिन पाथवे में दवाओं के कार्य करने के पूर्व चरण से ही कुछ नया उत्पाद बना लेता है, जो कवक के जीवित रखने व रोगजनन कार्यान्वयन में सहायक होता है। कवक में इस प्रक्रिया के चलते वैज्ञानिकों तथा किसानों के सामने कई बड़ी चुनौतियाँ हैं। दुनियाभर में आज बहुत सारे शोध संस्थान इस दिशा में कार्य कर रहे है।

## स्वच्छ ऊर्जा ही विकास की कुंजी

प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह ने वैश्विक विकास के लिए स्वच्छ ऊर्जा को कुंजी बताते हुए कहा कि विकासशील देशों को सौर एवं पवन ऊर्जा जैसे गैर-परंपरागत स्वच्छ ऊर्जा की प्रौद्योगिकी एवं उपकरण सही कीमत पर उपलब्ध कराने से वे तीव्र आर्थिक विकास और जलवायु परिवर्तन की दोहरी एवं विरोधाभासी चुनौती से निपट सकेंगे। उन्होंने स्वच्छ ऊर्जा संबंधी चौथी मंत्रिस्तरीय बैठक के उद्घाटन के बाद समारोह को संबोधित करते हुए कहा कि वर्तमान परिस्थितियों में स्वच्छ ऊर्जा का दोहन अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि दुनिया भर में स्वच्छ ऊर्जा की काफी कमी है और महँगी भी है। उन्होंने कहा कि आने वाले समय में अगर विकासशील देशों को अपने विकासात्मक लक्ष्यों को पूरा करना है तो उन्हें ऊर्जा आपूर्ति के सभी स्रोतों का विस्तार करना होगा तथा कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन करने वाली जीवाश्म ईंधन आधारित ऊर्जा के विकल्प के रूप में स्वच्छ ऊर्जा को बढ़ावा देना होगा। उन्होंने कहा कि विकासशील देशों में विश्व जनसंख्या का 82 प्रतिशत भाग निवास करता है और वे ऊर्जा की उपलब्ध वैश्विक आपूर्ति का 55 प्रतिशत इस्तेमाल करते हैं। अपने नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार एवं अपनी ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए औद्योगिक देशों की तरह जीवाश्म ईंधन आधारित ऊर्जा का इस्तेमाल करेंगे तो उससे वैश्विक जलवायु पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। प्रधानमंत्री ने कहा, हम केवल दो प्रकार से इस चुनौती से निपट सकते हैं। पहला ऊर्जा दक्षता में सुधार कर ऊर्जा के अधिकतम उपयोग को सुनिश्चत करना होगा। दूसरा हमें परंपरागत से गैर-परंपरागत अथवा स्वच्छ ऊर्जा की ओर रुख करना होगा।

# अनेक रोगों में उपयोगी अनार

जगनारायण *

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रायः सर्वत्र मिलने वाला अनार का फल पोषक तत्वों का भण्डार है। इसकी पत्ती, फल, फूल, छाल और जड़ सभी का घरेलू औषधि के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। आधुनिक एवं प्राचीन दोनों ही पद्धति के चिकित्सक इसका प्रयोग स्वास्थ के लिए हितकर मानते हैं और रोगी के लिए पथ्य एवं दुर्बलता निवारक के रूप में इसे प्रयोग करते हैं। इसीलिए लोग 'एक अनार सौ बीमार' की कहावत का प्रयोग करते हैं।

अनार का वृक्ष मध्यम आकार का झाड़ीनुमा होता है। इसकी पत्ती छोटी हरी और चन्दन की पत्ती जैसी होती हैं। इसका फूल आकर्षक सिंदूरी रंग का होता है। इसकी डालों में नुकीले काँटे भी पाये जाते हैं। इसके फल के भीतर रस से भरे मटर के आकार के पहलदार सफेद, रक्तवर्ण एवं गुलाबी दाने अत्यन्त आकर्षक लगते हैं। दाने आभायुक्त तराशे गये मणियों के समान लगते हैं।

अनार का पौधा

अनार का वानस्पतिक नाम प्यूनिका ग्रेनेटम है तथा यह प्यूनीकेसी कुल का सदस्य है जिसके गुण सूत्रों की संख्या 2n = 16 या 18 होती है।

आनार एक उष्णकटिबन्धीय फल है। इसकी उत्पत्ति स्थल के रूप में ईरान के पर्सिया नामक स्थान को बताया जाता है। भारत में लगभग 1300 हैक्टेयर भूमि में अनार की खेती की जाती है। इसके फल को 'बालस्टा' कहते हैं। इसकी शाखायें बेलनाकार होती हैं।

**मृदा एवं जलवायु-** अनार की खेती सभी तरह की मिट्टी में की जा सकती है। इसकी खेती के लिए जल निकासी की अच्छी व्यवस्था जरूरी है। परन्तु अच्छी पैदावार के लिए भारी दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है। आनार की खेती हल्के क्षारीय भूमि में भी की जा सकती है। जाड़े के मौसम में ठण्डा और गर्मियों के मौसम में शुष्क वातावरण इसकी खेती के लिए उपयुक्त होता है। अनार की खेती के लिए तापक्रम 11°C से कम नहीं होना चाहिये तथा फल की वृद्धि एवं पकने के समय 40°C तापक्रम को सर्वोत्तम माना जाता है।

**किस्में-** भारत वर्ष में अनार की दो तरह की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। एक तो वे किस्में जिसको केवल शोभा के लिए उगाते हैं तथा दूसरी जिसको फल के लिए उगाया जाता है। अनार की उन्नत किस्मों मे ढोलका, अलांडी, गणेश, पेपरशेल, स्पेनिश रूबी आदि मुख्य प्रजातियाँ हैं।

**पादप प्रवर्धन-** अनार का प्रवर्धन बीजों एवं कायिक प्रवर्धन दोनों माध्यम द्वारा किया जाता है। पके हुए फलों से प्राप्त बीजों को अगस्त-सितम्बर के माह में नर्सरी में बोया जाता है जो कि 8-9 माह में बाग में लगाने योग्य हो जाते हैं। व्यावसायिक स्तर पर अनार के पौधे का प्रवर्धन कलम एवं खूंटी द्वारा किया जाता है जिसकी लम्बाई 25-30 से0मी0 रखते हैं। नर्सरी में कलम को वसन्त ऋतु में लगाते हैं, कलम में जड़ों के अच्छी प्रस्फुटन के लिए 50 पीपीएम इण्डोल व्यूटारिक अम्ल अथवा 200 पीपीएम इण्डोल एसिटिक अम्ल के घोल में डुबोकर नर्सरी में लगाते हैं।

**पादप रोपण-** अनार के पौधे को बाग में वर्गाकार या अष्टभुजाकार विधि से लगाते हैं। अच्छी उपजाऊ भूमि में पौधों की दूरी 3-5 मी0 तक रखते हैं। पौधों को लगाने से पहले ही 80×80×80 सेमी0 का गड्ढा खोद लिया जाता है जिसको पौधा लगाने से पहले 50 : 50 गोबर या कम्पोस्ट खाद और मिट्टी से भर दिया जाता है। अनार के पौधों का रोपण बसन्त ऋतु एवं बरसात के मौसम में किया जाता है।

**सिंचाई-** अनार के पौधों को अधिक पानी की जरूरत नहीं होती है। लेकिन अच्छी पैदावार के लिए तथा नमी बरकरार रखने के लिए 15-20 दिनों के अन्तर पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। फल पकने के समय सिंचाई जरूरी होती है, नहीं तो फल फटने लगते हैं।

**खाद एवं उर्वरक-** पौधों के अच्छे विकास एवं फलन के लिए खाद एवं उर्वरक का उचित समय एवं उचित मात्रा में प्रयोग करना आवश्यक है। औसतन एक वर्ष पुराने वृक्ष को 10 किलो गोबर की खाद एवं 100 ग्राम अमोनियम सल्फेट देना चाहिए। 5-6 वर्ष तक इस मात्रा को बढ़ाते जाना चाहिए। उसके बाद स्थिर कर देना चाहिए। अनार की खेती में खाद देने का उचित समय उत्तरी भारत में फरवरी एवं ठण्डक वाले क्षेत्रों में मानसून के शुरू में होता है।

**काट-छाँट-** अनार का पौधा एक झाड़ीदार क्षुप होता है जिसमें जमीनी सतह से हमेशा भूस्तारिका निकलते रहते हैं। अतः पौधे को उचित आकार देने के लिए काट-छाँट करना जरूरी होता है। 6-9 महीने पर

*हिन्दी विज्ञान संचारक, ईशान स्टूडियो, श्रीविश्वनाथ मंदिर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221 005.

काट-छाँट करते रहना चाहिए। ऐसा करने से पौधा सुडौल तो बनता ही है, साथ में रोग एवं कीटों से भी बचाव होता है।

**परागण एवं फलन-** आमतौर पर अनार के पौधों में दो वर्ष में फूल आने लगते हैं, लेकिन उन्हें तोड़ देना चाहिए। 5 वर्ष बाद के फूल से फल लेना चाहिए। अनार में अमरुद जैसे तीन बार फलन होती है जिन्हें अम्बेबहार, मृगबहार और हस्तबहार कहा जाता है। लेकिन व्यावसायिक रूप से केवल किसी एक बहार का ही फल लिया जाता है, जो इसकी खेती वाले क्षेत्र की जलवायु पर निर्भर करता है। व्यावसायिक रूप से उसी बहार को फलन के लिए लिया जाता है जिस बहार में आकर्षक एवं अधिक पैदावार होती है। इसके लिए जिस बहार के फल लेने होते हैं, उनके 2-3 महीना पहले ही सिंचाई रोक दी जाती है।

**रोग एवं कीट नियंत्रण-** अनार में बोरान (सुहागा) की कमी आम समस्या है। इससे निजात पाने के लिए बोरेक्स 25 किलो प्रति है0 की दर से पौधरोपण से पूर्व ही मृदा में प्रयोग करना चाहिए। अनार के पौधों की पत्तियों पर कभी-कभी चित्तीदार रचना दिखाई पड़ती है, जो कवक के चलते होती है। इसके नियंत्रण के लिए 4:3:50 बोडो मिश्रण का प्रयोग करना चाहिए। कीट के रूप में अनार को तितली ज्यादा नुकसान पहुँचाती है। इससे बचाव के लिए तितलियों को जाली से पकड़ा जाता है अथवा कैल्शियम आर्सेनेट का 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है।

**फल तोड़ना एवं उपज-** अनार में फूल आने के 5-6 माह बाद फल तोड़ने लायक हो जाते हैं। पक जाने पर फलों का रंग भूरा और पीलापन लिए हो जाता है। तैयार फलों को सिकेटियर या तेज धार वाले यन्त्र से काटकर पेड़ से अलग कर लिया जाता है। फलों को पूरी तरह से पकने से पहले ही तोड़ लिया जाता है, नहीं तो फल फटने लगते हैं और सिकुड़ जाते हैं, लेकिन खाने में अधिक मीठे लगते हैं। पूर्णरूप से विकसित पौधों से 100-150 फल प्रति पेड़ प्राप्त होते हैं। परन्तु उचित देखरेख एवं उपजाऊ मृदा में इसकी खेती लगभग 200-250 फल प्रति पेड़ प्राप्त किया जा सकता है।

**भण्डारण, विपणन एवं उपयोग-** अनार के पके हुए फलों की टिकने की क्षमता अन्य फलों की अपेक्षा अधिक होती है। लेकिन फलों को छायादार स्थान पर शून्य डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम पर भण्डारित कर देने पर फलों को लगभग सात सप्ताह तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

अनार के फलों के विपणन के लिए फलों को बाँस की टोकरी में थोड़ा सा पुआल या भूसी रखकर उसके ऊपर फलों को रखकर एक जगह से दूसरे जगह आसानी से पहुँचाया जा सकता है।

**स्वास्थ्य रक्षा में अनार का उपयोग**

**स्वाद के अनुसार अनार तीन प्रकार के होते हैं –**

1- मीठा अनार

2- खट्टा और मीठा अनार

3- खट्टा अनार

तीनों श्रेणी के अनार उत्तम, स्निग्ध ग्राही एवं रुचिकर होते हैं।

**अनार का फूल एवं फल**

मीठा अनार त्रिदोष नाशक, तृप्तिदायक, वीर्यवर्धक, उष्णता-शामक, बलवर्धक और मानसिक निर्बलता में लाभकारी होता है। खट्टे-मीठे अनार का उपयोग अवनीमाध्य, अपचन, अरुचि, अतिसार आदि में उपयोगी है। खट्टे अनार के दानों का उपयोग भोजन, शॉक, चटनी आदि को रुचिकर बनाने, पाचन कराने, कफ की उत्पत्ति को रोकने एवं वातशामक में भी होता हैं।

ग्रीष्म ऋतु में मस्तिष्क को शान्त बनाये रखने और धूप में घूमने से उत्पन्न बेचैनी को दूर करने के लिए मीठे और खट्टे अनार के रस सेवन से मस्तिष्क को शान्ति और हृदय को पौष्टिक तत्व मिलते हैं। इसी प्रकार खट्टे-मीठे अनार के रस का शर्बत बेचैनी दूर करने में हितकारी होता है।

महिलाओं के गर्भ की प्रारम्भिक अवस्था में होने वाले वमन में खट्टे-मीठे अनार का रस या शर्बत थोड़ी-थोड़ी देने से प्रारम्भिक गर्भवती स्त्रियों का वमन रुक जाता हैं और शारीरिक कमजोरी नहीं आती। आन्त्रिक ज्वर (मोतीझरा), मेदो वृद्धि, कफ प्रकोप, उदर कृमि, संग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका अर्श, तृषा रोग, यकृत वृद्धि, लू लगना, रक्त विकार, दाह, मलावरोध, उदावर्त, वमन, दंत रोग, कास और क्षय आदि रोगों में अनार को पथ्य के रूप में दिया जाता है।

इन रोगों की बढ़ी हुई अवस्था में जब अन्न बन्द करके रोगी को फलाहार पर रखा जाता है तब अनार की योजना-शोधन, शमन और शक्तिवर्धक के रूप में होती है।

मधुर और मधुराम्ल रस से युक्त अनार कास को शान्त करता है, यह दीपन, पाचन, क्षुधावर्धक, रुचिकर और हृदय हेतु पौष्टिक (टानिक) है। इसके अलावा पित्त प्रकोप, अरुचि, उदरकृमि, अतिसार, पेचिस, कास, रक्तस्राव, नेत्रदाह, आकुलता आदि को दूर करता है। ज्वरग्रस्त रोगी के लिए यह पथ्य है।

मधुर अनार चक्कर आने, आखों में चकाचौंध होने, सिरदर्द, धूप सहन न होने, भूख न लगने, पेट भारी मालूम पड़ने और थोड़ा चलने पर थक जाने जैसी समस्याओं में अत्यन्त उपयोगी है। प्रवाहिका, अतिसार, उदरकृमि, अमातिसार, क्षयरोग, स्वर विकृति, निर्बलता, तृषा, कास, रक्तातिसार सगर्भ की निर्बलता में मधुराम्ल (खट्टा-मीठा) अनार पथ्य के रूप में लाभकारी रहता है। आखों की जलन धूप में घूमने से आई बेचैनी तथा घबराहट आदि पित्तजन्य विकारों में 200 मिली अनार के रस के साथ 100 ग्राम खीलों का सत्तू मिलाकर देने से लाभ होता हैं। यह उदर एवं मस्तिष्क को शान्त बनाता है, शारीरिक उष्णता को दूर करता है और ज्वर का शमन करता है।

अनार का मात्र फल और रस ही नहीं बल्की इसकी पत्ती, फूल, छाल और जड़ भी औषधि के काम में आती है। इसके बीज से अनेक आयुर्वेदिक दवायें बनती हैं। नाखून टूटने पर होने वाले दर्द में अनार की पत्ती पीस कर बाँधने से आराम मिलता है। अनार के सूखे फूल से बना दंत मंजन दांतों से आ रहे खून को बन्द कर देता है। यह कमजोर तथा शारीरिक रूप से अविकसित बच्चों के लिए अत्यन्त गुणकारी फल है। अनार पथरी रोग में भी उपयोगी है। जहरीले कीड़े जैसे बिच्छू, बर्रे, मधुमक्खी के काटने पर अनार की पत्ती पीस कर उसका लेप लगाने से विषाक्त कीड़ा काटने का दंश जाता रहता है। कठिन पीड़ा-दर्द बवासीर में अनार के पत्तों की पुल्टिस गर्म कर के बाधनें से बहुत राहत मिलती हैं। पेट के कीड़ों में 50 ग्राम अनार के वृक्ष की छाल को दरदरी कूट कर उसे दो लीटर पानी में भिंगोकर 25 घण्टे छोड़ दें, इसके बाद उसे मसल कर मोटे कपड़े से छान लें, फिर इसे किसी साफ बर्तन में हल्की आँच पर उबालें जब पानी एक लीटर शेष रह जाय तब इसके तीन भाग करके दिन में तीन बार सुबह, दोपहर, शाम कृमि के रोगी को पिलावें। उस दिन उसे खाने को कुछ भी न दें। दूसरे दिन सुबह केस्टर आयल (रेड़ी का तेल) दो ग्राम पिला दें। उस दिन भी दोपहर तक खाने को कुछ भी न दें। दोपहर बाद दलिया या खिचड़ी दें इस प्रयोग से सारे कृमि मर कर बाहर निकल जायेंगे। अनार खनिज और उपयोगी लवण का भारी श्रोत है। इसमें कैल्शियम, मैग्निशियम, फास्फोरस, लोहा, सोडियम, पोटैशियम, ताँबा, गन्धक, क्लोरिन, विटामिन 'सी' व 'बी' की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है। इन तत्वों की उपस्थिति के कारण ही अनार में रोग निवारक क्षमता पाई जाती है। अतः, इन तत्वों की कमी वाले रोगी को पथ्य के रूप में अनार का रस लाभकारी रहता है।

## विश्व का सबसे बड़ा और अनोखा फूल

*एमॉर्फोफिलस टाइटेनम (Amorphophellus titanum, Family : Araceae)* जिसको "टाईटन एरम" भी कहते हैं। यह एक ऐसा पौधा है जिसका पुष्पसमूह विश्व में सबसे बड़ा होता है। इस पौधे का पूष्पसमूह टॉलीपॉट पॉम *(Corypha umbraculifera)* जितना बड़ा नहीं होता, परन्तु यह बिना शाखा के होता है। यह पुष्प 10 फीट की ऊँचाई तक पहुँच सकता है जिसमें बीच में एक सुंगधित फूलों का स्पेडिक्स होता है जो एक बड़े पंखुड़ी के समान आवरण (स्पेथ) से घिरा होता है। यह स्पेथ बाहर से हरा तथा अन्दर से गहरा लाल रंग का होता है। स्पेथ के भीतर निचली सतह पर स्पेडिक्स पर दो चक्र में छोटे-छोटे फूल होते हैं। ऊपरी चक्र में नर पुष्प तथा निचले चक्र में चमकीले लाल-नारंगी रंग के गर्भ केशर होते हैं। इस फूल से सड़े हुए मांस की गंध निकलती है जिसके कारण कीट-पतंगे इसकी तरफ आकर्षित होते हैं और पराग निषेचन की क्रिया में मदद करते हैं। यह विचित्र आकार का फूल खिलने के बाद सिर्फ 72 घण्टे तक ही मौजूद रहता है। यह पौधा मुख्यतः पश्चिमी सुमात्रा के जंगलों में चूना पत्थरों के ऊपर पाया जाता है। इस पौधे को इसके विशेष फूल के कारण दुनियाभर के वानस्पतिक उद्यानों में उगाया जाता है।

**प्रो. शशि भूषण अग्रवाल,** वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

# पर्यावरणसौम्य रसायन के रूप में हरित रसायन

डॉ0 दिनेश मणि *

हरित रसायन रासायनिक उत्पादों और प्रक्रियाओं का वह रूप है जो खतरनाक पदार्थों के उपयोग एवं उत्पादन को कम करता है। इस प्रकार खतरनाक रसायनों से हमें बचाकर नुकसान करने के बजाय हरित रसायन खतरों को ही कम करने या समाप्त करने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार हमें जोखिम का सामना करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। सारी दुनिया के रसायन विज्ञानी पर्यावरण हितैषी रसायनों की खोज में संलग्न हैं। रसायनों द्वारा मानव समुदाय एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि रसायन विज्ञान, जहाँ तक संभव हो, अधिक सौम्य हो। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर हरित रसायन विज्ञान की कल्पना की गई है।

**पर्यावरणसौम्य रसायन**

निःसंदेह, पिछले एक दशक में रसायन विज्ञान के बेहतर प्रयोग से आर्थिक विकास एवं पर्यावरणीय संरक्षण के प्रति काफी जागरूकता आई है। रसायन विज्ञान के इस नवीन व उभरते बेहतर प्रयोग को ही हरित रसायन विज्ञान अथवा सतत पर्यावरणीय विकास के लिए रसायन विज्ञान कहा जाता है। मूल रूप से हरित रसायन विज्ञान ऐसे पर्यावरणीय सौम्य रसायनों की उत्पादकता विधि है, जो न केवल पर्यावरणीय दृष्टि से अपितु कार्य-क्षमता तथा आर्थिक रूप से भी श्रेष्ठ हों। वास्तव में ''जोखिमकारी तत्वों के उत्पादन को खत्म करने अथवा कम करने के लिए रासायनिक उत्पादों तथा प्रक्रियाओं की खोज, उनकी संरचना और उनका उपयोग ही हरित रसायनविज्ञान है।''

रसायन विज्ञानी के रूप में हम जो रसायन तैयार करते हैं उनका सम्पर्क में आने वाले मानव समुदाय एवं पर्यावरण पर काफी प्रभाव पड़ता है। हरित रसायन विज्ञान के नये प्रतिभागों के अंतर्गत विश्वभर के रसायन-विज्ञानी नयी संश्लेषित विधियों, प्रतिक्रियात्मक स्थितियों, विश्लेषणात्मक उपकरणों, उत्प्रेरकों तथा प्रक्रियाओं के निर्माण व विकास में लगे हैं। रसायन विज्ञानियों के समक्ष यह एक चुनौती है कि वे अब तक जो रसायन विज्ञान में किया गया है अथवा किया जा रहा है उस श्रेष्ठ कार्य को ध्यानपूर्वक देखें और फिर निर्णय करें कि ''जिस रसायन विज्ञान का मैं प्रयोग कर रहा हूँ, वह कितना सौम्य है?'' एक स्पष्ट किन्तु महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि कुछ भी सौम्य नहीं है। वास्तव में सभी तत्वों तथा सभी कार्यों का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होता है। सौम्य परिरूप अथवा पर्यावरण हितैषी रसायन विज्ञान एक कल्पना है, रसायन विज्ञान का वो आदर्श स्वरूप है, जिसके बारे में यहाँ चर्चा की जा रही है। रसायन विज्ञान को जहाँ तक संभव हो सके और अधिक सौम्य बनाना इसका उद्देश्य है। जिस प्रकार निर्माणकर्ताओं द्वारा ''जीरो डिफेक्ट'' (शून्य दोष) की कल्पना की गई थी उसी प्रकार सौम्य रसायन विज्ञान भी परिष्करण की पराकाष्ठा के उद्देश्य से की गई एक कल्पना व एक विचार है।

हरित रसायन विज्ञान टिकाऊ उत्पादों और प्रक्रियाओं के विकास के साथ ही व्यापार को एक बड़ा प्रोत्साहन प्रदान करता है। हरित रसायन विज्ञान के सिद्धांतों का अनुपालन उद्योगों को न केवल पर्यावरणीय लाभ प्रदान करते हैं बल्कि ठीक उसी समय आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों की भी पूर्ति करते हैं। हरित रसायन विज्ञान के सिद्धांत विभिन्न प्रकार के उद्यमों को सतत गति दे सकते हैं। ग्रीन केमिस्ट्री नेटवर्क द्वारा भारत में हरित रसायन विज्ञान के सिद्धांतों को प्रयोगशालाओं, कक्षाओं से लेकर उद्योगों तक में स्थापित करने की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं।

हरित रसायन विज्ञान रासायनिक प्रक्रियाओं में कार्बनिक विलायकों के प्रयोग को कम करने में मदद करता है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण उत्पादन प्रक्रिया में ऐसी तकनीकें चिन्हित या प्रयुक्त की जाती हैं जो कि उस प्रक्रिया के खतरों को कम करती हैं जबकि उनकी आर्थिक उपयोगिता बची रहती है। जब हम नई प्रौद्योगिकी के विकास का प्रयास करते हैं तब अक्सर हम अपने कार्य के पर्यावरणीय प्रभाव का विचार करने से चूक जाते हैं। हरित तकनीकों के डिजाइनों के विकास के लिए हरित रसायन विज्ञान एक आधार प्रदान करता है जो कि स्थायी उत्पादों, प्रक्रियाओं और प्रणालियों की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक है।

### हरित रसायन के कुछ उदाहरण

1. इब्रुप्रोफेन- दर्द निवारक दवाओं में एस्पिरिन तथा इब्रुप्रोफेन प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। 1990 में इब्रुप्रोफेन का विकास परंपरागत

*35/3, जवाहर लाल नेहरू रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद.

औद्योगिक संश्लेषण विधि से किया गया था। इसमें संश्लेषण 6 चरणों में पूरा होता था और अनेक अवांछित रासायनिक उपजात उत्पन्न होते थे। बी.एच.सी. कम्पनी ने 1991 में इब्रुप्रोफेन का नवीन हरित औद्योगिक संश्लेषण किया है जिसमें केवल तीन चरण होते हैं। और अभिकर्मकों के अधिकांश परमाणु इच्छित उत्पाद में ही लग जाते हैं।

**इब्रुप्रोफेन रसायन की गोलियाँ**

2. बेंजीन से बनने वाले उत्पाद अब ग्लूकोज से बन सकते हैं। बेंजीन के उत्पाद से वायुमंडल में नाइट्रस ऑक्साइड की वृद्धि होती है, जो ओजोन परत को क्षति पहुँचाती है तथा वैश्विक तापन को बढ़ाती है। इन सब समस्याओं से बचने के लिए बेंजीन के बजाय ग्लूकोज को आधार बनाकर उन्हीं उत्पादों को तैयार किया जा रहा है। ग्लूकोज की विशेषता है, इसमें छः ऑक्सीजन परमाणु का होना। अतः ऐसे ऑक्सीजनित पदार्थ से कैटेचाल बनाते समय हाइड्रोजन परॉक्साइड जैसे संक्षारक पदार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती न ही कार्बनिक विलायकों की। स्वयं ग्लूकोज को पुनर्नवीकरणीय स्रोतों से, जैसे पादप स्टार्च तथा सेलुलोज से प्राप्त किया जा सकता है ग्लूकोस के साथ जैव-उत्प्रेरक प्रयुक्त किये जाते हैं। ये सूक्ष्मजीव ग्लूकोज को कार्बन डाइऑक्साइड में परिणत करते हैं और उत्पन्न ऊर्जा से सूक्ष्मजीव की वृद्धि तथा पुनरुत्पादन होता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया काष्ठ को जलाकर ऊर्जा उत्पन्न करने के तुल्य है। इस तरह हरित उत्पादन विधियों से जो रासायनिक उत्पाद मिलते हैं वे पर्यावरणीय दृष्टि से सौम्य और सुरक्षित होते हैं।

**हरित रसायन के सिद्धांत**

पर्यावरणीय दृष्टि से अनुकूल उत्पादों और प्रक्रियाओं के निर्माण को हरित रसायन के सिद्धांतों द्वारा मार्ग निर्देशित किया जा सकता है। ये सिद्धांत हरित रसायन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किए गए मूल प्रयासों की श्रेणियों के रूप में हैं।

**1. रोकथाम-** कूड़े-कचरे के बनने के बाद उसके उपचार या शोधन से बेहतर है उसे बनने से ही रोका जाए।

**2. परमाणु अर्थव्यवस्था-** तैयार उत्पाद बनाने की प्रक्रिया में प्रयुक्त सभी सामग्रियों को अधिकतम उपयोग के लिए कृत्रिम प्रणालियाँ तैयार की जानी चाहिए।

**3. कम नुकसानदायक रासायनिक संश्लेषण-** जहाँ व्यावहारिक हो, मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए कम विषाक्तता या विषाक्ततारहित पदार्थों के उपयोग एवं उत्पादन के लिए सिंथेटिक (कृत्रिम) पद्धतियाँ तैयार की जानी चाहिए।

**4. अधिक सुरक्षित रसायन तैयार करना-** विषाक्तता कम करते समय क्रियात्मक कारगरता बनाए रखते हुए रासायनिक उत्पाद तैयार किए जाने चाहिए।

**5. सुरक्षित विलायक और सामग्री-** सहायक सामग्री (जैसे विलायक, पृथक्कारी एजेंट आदि) का प्रयोग जहाँ संभव हो न किया जाए और जब उपयोग किया जाए तो वह नुकसानदायक नहीं होना चाहिए।

**6. ऊर्जा बचत के लिए डिजाइन-** ऊर्जा आवश्यकताओं को उनके पर्यावरणिक और आर्थिक प्रभावों के लिए समझा जाना चाहिए और कम से कम उपयोग किया जाना चाहिए। अनुकूल तापमान और दबाव पर सिंथेटिक पद्धतियाँ तैयार की जानी चाहिए।

**7- नवीकरण योग्य फीड स्टाक का उपयोग-** जब कभी भी तकनीकी और आर्थिक रूप से व्यावहारिक हो कच्चे माल के फीडस्टाक को खाली करने के बजाय नवीकरण योग्य माल का उपयोग किया जाना चाहिए।

**8- व्युत्पन्नों को कम करना-** जब कभी भी सम्भव हो, अनावश्यक व्युत्पन्नों (ब्लाक, ग्रुप, संरक्षण/संरक्षणहीनता, भौतिक/रासायनिक प्रक्रियाओं का अस्थाई सुधार) से बचना चाहिए।

**9. उत्प्रेरण-** उत्प्रेरण रीजेंट (यथासम्भव चयनात्मक) स्टाकियोमीट्रिक रीजेंट्स से अच्छे हैं।

**10. अवक्रमण डिजाइन-** रासायनिक उत्पाद इस तरह तैयार किए जाने चाहिए जिससे वह अपनी क्रिया के अंत में पर्यावरण में न बने रहें और नुकसान रहित उत्पादों में बदल जाएँ।

**11. प्रदूषण रोकथाम के लिए वास्तविक समय विश्लेषण-** खतरनाक पदार्थों को तैयार करने से पहले वास्तविक समय प्रक्रिया नियंत्रण एवं मानीटरिंग के लिए विश्लेषणात्मक पद्धतियाँ विकसित की जानी चाहिए।

**12. दुर्घटना रोकथाम के लिए सुरक्षायुक्त रसायनशास्त्र-** किसी रासायनिक प्रक्रिया में प्रयुक्त पदार्थों और पदार्थ को चुना जाना चाहिए ताकि उत्सर्जनों, विस्फोटों और आग लगने सहित रासायनिक दुर्घटनाओं की क्षमता को कम से कम किया जा सके।

हरित रसायन विज्ञान में सौम्य अभिकर्मक तथा सांश्लेषक उपाय शामिल हैं, जिनमें अ-विषालु अभिकर्मक भी सम्मिलित हैं और इसके परिणामस्वरूप कम मात्रा में अपशिष्ट निर्माण होता है। उपचायक रूपांतरण के लिए ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन पर-ऑक्साइड को चुनिंदा रूप में सक्रिय करने की प्रणालियों के निर्माण हेतु स्वच्छ अभिकर्मक जैसे कि हाइड्रोजन पर-ऑक्साइड, जो कि उपोत्पाद के रूप में केवल जल का निर्माण करता है, का उपयोग किया जा रहा है। यह सामग्री सजातीय एवं विजातीय उत्प्रेरण में मुख्य भूमिका निभाती है तथा उत्पादन अधिक होता है।

आज हरित विद्युत-रसायन विज्ञान में हरित अभिकर्मकों के रूप में इलेक्ट्रॉन का प्रयोग अनुसंधान का एक अन्य विषय है। इलेक्ट्रॉन एक विशिष्ट उपचयन/अपचयन शक्ति/क्षमता पर विशिष्ट चयन के साथ वांछित प्रतिक्रिया कर सकते हैं। प्रतिक्रिया की दर को लागू विद्युत प्रवाह द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है तथा यदि जलीय विद्युत-अपघट्य का उपयोग किया जाता है तो ऑक्सीजन व हाइड्रोजन के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के उपोत्पाद का निर्माण नहीं होता है। विद्युत-रसायन प्रौद्योगिकी द्वारा 200 यौगिकों का निर्माण किया गया है।

जब उद्देश्य रसायन विज्ञान के क्षेत्र एवं सामान्य रूप से समाज के लिए महत्वपूर्ण हो तो ऐसे क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए काफी मात्रा में निधि, समर्थन तथा मान्यता उपलब्ध हो जाती है। हरित रसायन विज्ञान में अनुसंधान के लिए उपलब्ध निधि में भी पिछले कई सालों से बहुत वृद्धि हुई है। हरित रसायन विज्ञान में अब तक किए गए अनुसंधानों की गुणवत्ता के स्तर एवं प्राप्त हुए संभावित आर्थिक लाभ के मद्देनजर इसके समर्थन में सतत वृद्धि की संभावना है।

हरित रसायन वे स्तंभ हैं जो हमारे निरंतर चलने वाले भविष्य को धारण करते हैं। हरित रसायन के विकास में यह अनुभव किया गया है कि अगली पीढ़ी के वैज्ञानिकों को उन पद्धतियों, तकनीकों और सिद्धांतों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिनका मुख्य विषय हरित रसायन हो।

छात्रों को रसायन प्रक्रियाओं की संरचना, परिणाम कार्यप्रणाली, नियंत्रक शक्तियों एवं आर्थिक मूल्यों के बारे में शिक्षा देने के साथ-साथ इन रसायनों एवं प्रक्रियाओं के मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण के प्रति सहवर्ती खतरों के बारे में भी जानकारी देनी चाहिए।

शिक्षकों को अपने शिक्षण और अनुसंधान में हरित रसायन को प्रभावकारी रूप से एकीकृत करने के लिए उचित साधनों, प्रशिक्षण एवं सामग्री की जरूरत है। पाठ्यक्रम के अन्दर हरित रसायन के समाहित करने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण कदम उठाये जाने की आवश्यकता है-

1. हरित रसायन सिद्धांतों को प्रदर्शित करने के लिए प्रयोगात्मक प्रयोगशाला परीक्षणों का विकास एवं उपयोग।

2. रासायनिक विष विज्ञान की मूल अवधारणा और खतरे के परमाण्विक आधार की जानकारी देना।

3. हरित रसायन परियोजनाओं पर कार्य करने के लिए छात्रों/अनुसंधानकर्ताओं को प्रोत्साहन देना।

4. विद्यमान पाठ्यक्रमों में हरित रसायन शामिल कराने के लिए संदर्भ सामग्री तैयार करना।

भविष्य की सबसे सफल रासायनिक कम्पनियाँ वे होंगी जो अपने प्रतिस्पर्धी लाभ के अवसरों का उपयोग कर सकें और भविष्य के सबसे सफल रसायन वे होंगे जो अनुसंधान एवं विकास, नवोन्मेष और शिक्षा में हरित रसायन अवधारणाओं का उपयोग कर सकें।

## छोटी सी बैट्री बड़े काम की

अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ इलनॉइज के शोधकर्ताओं ने सम्भवतः अब तक की सबसे शक्तिशाली माइक्रोबैट्री बनाने में सफलता प्राप्त की है। इस माइक्रोबैट्री से रेडियो कम्युनिकेशन्स और कॉम्पैक्ट इलेक्ट्रॉनिक्स एप्लीकेशन्स चलाए जा सकते हैं। वैसे इस बैट्री का आकार महज कुछ मिलिमीटर है, लेकिन इसकी ताकत काफी अधिक बतायी गयी है। इसमें एक खास तरह का पंच है।

इन बैट्रियों से चलने वाले सेलफोन की मदद से ड्राइवर डेड कार बैट्री को जंप-स्टार्ट करने में इस्तेमाल कर सकते हैं। थोड़ी देर में ही फोन रिचार्ज भी कर सकते हैं। रिसर्च से जुड़े मेकेनिकल साइंस और इंजीनियरिंग विभाग के प्रो0 पी. किंग के अनुसार यह बैट्रियों से जुड़ा एक अलग तरह का नजरिया है। वे कहते हैं कि जितना हम सोचते हैं, यह बैट्री उससे कहीं अधिक पावर देती है। पिछले कुछ सालों के दौरान एक ओर जहाँ इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों का आकार छोटा हुआ है, वहीं कंप्यूटर्स के थिंकिंग पार्ट्स भी छोटे हुए हैं जबकि बैटरी इस मामले में पिछड़ी हुई हैं।

प्रो0 किंग कहते हैं कि अब इस माइक्रो-तकनीक से एक नया बदलाव देखने को मिल सकता है। इसकी खास बात यह होगी कि इसमें पावर-सोर्स हाई-परफॉर्मेंस होगा। बैट्रियों की अत्यधिक पावर के कारण सेंसर्स और रेडियो सिग्नल्स का प्रसारण 30 गुना तेजी से होता है। ये बैटरियाँ रिचार्जेबल हैं और इन्हें अन्य तकनीकों की अपेक्षा 1000 गुना अधिक तेजी से चार्ज किया जा सकता है।

## पूर्णिमा की रात होती है नींद में खलल ?

वैज्ञानिकों ने अध्ययन में पाया है कि पूर्णिमा की रात ठीक से नींद लेने में खलल डालती है। प्रयोगशाला में हुए एक प्रयोग के दौरान पूर्णिमा के दिन नींद में पाँच मिनट ज्यादा समय लगा और लोग 20 मिनट कम सोए। प्रयोगशाला की कठिन परिस्थितियों में 33 स्वयंसेवकों पर किए गए इस प्रयोग के दौरान चंद्रमा के प्रभाव संबंधी साक्ष्य जुटाए गए हैं। प्रसिद्ध शोध-पत्रिका 'करेंट बायोलॉजी' में प्रकाशित रिपोर्ट के मुताबिक जब चाँद पूरा था, तो स्वयंसेवकों को नींद आने और अच्छी तरह नींद लेने में वक्त लगा, जबकि बंद अंधेरे कमरे में उन्हें अच्छी नींद आई। इस दौरान उनके शरीर की जैविक घड़ी से जुड़े मेलाटोनिन नाम के हार्मोन स्तर में भी कमी देखी गई। अंधेरे में शरीर में अधिक मेलाटोनिन बना जबकि उजाले में इसके निर्माण में कमी आई। वस्तुतः, इसमें शामिल स्वयंसेवकों को पता नहीं था कि इस अध्ययन का उद्देश्य क्या है। जिस बिस्तर पर उन्हें सुलाया गया था, वहाँ से वे चन्द्रमा को नहीं देख सकते थे। इनमें से हर स्वयंसेवक ने प्रयोगशाला में दो रातें बिताई। अध्ययन के नतीजे हैं कि पूर्णिमा की रात गहरी नींद से जुड़ी दिमागी गतिविधियाँ घटकर आधी रह गईं। मेलाटोनिन का स्तर भी गिरा पाया गया।

# कहाँ मिलता है पुखराज?

डा0 विजय कुमार उपाध्याय *

पुखराज एक प्रमुख रत्न है जिसे नवरत्नों में शामिल किया गया है। ज्योतिष के अनुसार इसे वृहस्पति ग्रह का रत्न माना गया है। पुखराज को संस्कृत में पुष्पराग, उर्दू या फारसी में याकूत अस्फर तथा अंग्रेजी में 'प्रेसस टौपेज' कहा जाता है। इस रत्न का उपयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। रामायण तथा महाभारत काल में भी इसे उपयोग में लाये जाने के प्रमाण मिलते हैं। ईसाइयों के धर्मग्रंथ बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट में भी पुखराज की चर्चा मिलती है। यहूदियों के धर्मग्रंथ 'एक्सोडस' में एक स्थान पर बताया गया है कि आरॉन की धरती पर लगाये जाने वाले कवच में 12 किस्म के रत्न जड़े हुए थे जिनमें पुखराज भी एक था। ईरान, इराक तथा मिस्र की प्राचीन कब्रों से कुछ आभूषण प्राप्त हुए हैं जिनमें पुखराज तथा कुछ अन्य रत्न जड़े हुए हैं। प्राचीन काल के दौरान विभिन्न देशों में राजाओं तथा राज परिवार के अन्य लोगों के कपड़े प्रायः पुखराज तथा अन्य रत्नों से जड़ित होते थे। राजमुकुट में भी पुखराज तथा अन्य रत्नों को जड़ा जाता था। उस समय राजभवनों तथा मन्दिरों को सजाने में भी पुखराज तथा अन्य रत्नों का उपयोग किया जाता था। भारत में प्राचीन सोमनाथ मन्दिर में दीवारों को भी पुखराज तथा अन्य रत्नों से सजाया गया था।

पुखराज का रंग प्रायः पीला होता है। परन्तु कभी-कभी लाल, भूरा, हरा, नीला तथा रंगहीन भी पाया जाता है। कभी-कभी प्रकाश के सम्पर्क में आने पर पुखराज का रंग धुँधला पड़ जाता है। उदाहरणार्थ, साइबेरिया के ट्रांस बैकालिया क्षेत्र में पाये जाने वाले पुखराज का भूरा रंग प्रकाश में धुंधला पड़ने लगता है। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलेरैडो तथा उताह क्षेत्र में पाये जाने वाले पुखराज का रंग शराब की तरह पीला होता है जो प्रकाश के सम्पर्क में आने पर धुंधला पड़ने लगता है। ब्राजील में पाये जाने वाले पुखराज का पीला रंग गर्म करने पर गुलाबी रंग में परिवर्तित हो जाता है। रूस में 19वीं शताब्दी के दौरान लाल तथा गुलाबी रंग के पुखराज सिर्फ जार परिवार के लोगों के उपयोग के लिये आरक्षित रहते थे। साधारण जनता को उसके उपयोग की अनुमति नहीं थी। पुर्तगाल के सरकारी खजाने में 1680 कैरट का एक रंगहीन पुखराज है जिसे शुरू-शुरू में गलतफहमी से लोग हीरा समझ बैठे थे। यही कारण है कि आज भी यह 'ब्रगांजा डायमंड' के नाम से प्रसिद्ध है।

पुखराज के सम्बन्ध में प्राचीन काल से ही अनेक प्रकार की किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। मध्यकाल के दौरान यूरोप के अनेक देशों में लोगों की धारणा थी कि पुखराज धारण करने वाले को मृत्यु का भय नहीं रहता। साथ ही लोगों का यह भी मानना था कि इसे धारण करने से कई प्रकार की मानसिक तथा शारीरिक बीमारियों में लाभ होता है। रोम वासियों का विश्वास था कि पुखराज धारण करने से आँखों की रोशनी बढ़ती है। जबकि यूनानियों की धारणा थी पुखराज धारण करने से शारीरिक शक्ति में वृद्धि होती है।

पुखराज टौपेज नामक खनिज का एक रूप है। रासायनिक संघटन के दृष्टिकोण से यह ऐलुमिनियम फ्लोरोसिलिकेट है जिसमें फ्लोरिन का कुछ अंश हाइड्रॉक्सिल आयन द्वारा स्थानान्तरित कर दिया जाता है। रासायनिक संघटन में परिवर्तन के कारण इसके विशिष्ट गुरुत्व में भी कुछ परिवर्तन

विभिन्न आकृति के पुखराज

आता है। सामान्यतौर पर इसका विशिष्ट गुरुत्व 3.5 से 3.6 के बीच रहता है। मो के पैमाने पर इसकी कठोरता 8 है। इसके रवे (क्रिस्टल) और्थोरौम्बिक क्रिस्टल सिस्टम के होते हैं। इसका वर्तनांक 1.619 से 1.627 के बीच पाया जाता हैं। यह अम्लों में अघुलनशील है। एक अन्य प्रकार का पुखराज होता है 'ओरियेंटल पुखराज'। रासायनिक संघटन की दृष्टिकोण से यह ऐलुमिनियम ऑक्साइड है। मो के पैमाने पर इसकी कठोरता 9 तथा विशिष्ट गुरुत्व 4 होता है। यह वस्तुतः कुरुविन्द

*राजेन्द्र नगर हाउसिंग कॉलोनी (के.के. सिंह कॉलोनी), पो0- जमगोड़िया, वाया- जोधाडीह (चास), जिला- बोकारो-827 013, (झारखंड).

(कोरंडम) समूह का एक खनिज है। यह मुख्य रूप से म्यामार (बर्मा), तथा श्रीलंका में माणिक्य तथा नीलम के साथ पाया जाता हैं। कभी-कभी पुखराज के ही समान पीले रंग का एक अन्य खनिज भी पाया जाता है जिसका नाम है 'साइट्रिन'। यह वस्तुतः स्फटिक (क्वार्ट्ज) का एक रूप है। पुखराज तथा साइट्रिन के बीच अन्तर मालूम करना एक कठिन काम है। यही कारण है कि अनेक रत्न विक्रेता पुखराज के नाम पर साइट्रिन को ही बेच देते हैं। मूल्य के दृष्टिकोण से साइट्रिन पुखराज की तुलना में काफी सस्ता है। इन दोनों रत्नों के बीच अन्तर उनके विशिष्ट गुरुत्व से मालूम किया जा सकता है। जहाँ पुखराज का विशिष्ट गुरुत्व 3.6 के लगभग होता है वहीं साइट्रिन का विशिष्ट गुरुत्व 2.6 के आस-पास होता है।

आजकल पुखराज का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है। रत्न के रूप में आभूषण-निर्माण के लिये तो इसका उपयोग पूर्ववत जारी है ही, साथ ही घड़ियों में भी इसका उपयोग व्यापक स्तर पर किया जाता है। इसके अलावा अन्य कई प्रकार के उद्योगों में इसे काम में लाया जा रहा है। निम्न श्रेणी के पुखराज (टौपेज) का उपयोग अग्निसह पदार्थ के रूप में किया जाता है। टौपेज के चूर्ण को अपघर्षक चक्कों (एब्रेजिव ह्वील) के निर्माण में लाया जाता है।

पुखराज प्रायः टिन अयस्कों से युक्त पेगमेटाइट नामक शैल में मिलता है। पेगमेटाइट में पुखराज के साथ टूरमलीन, कैसीटेराइट, बेरिल फ्लोराइट तथा ऐपेटाइट जैसे खनिज भी पाये जाते हैं। नदियों द्वारा बहाकर लायी गयी बजरी (ग्रैवेल) के साथ भी यदा-कदा पुखराज के रवे (क्रिस्टल) प्राप्त हो जाते हैं।

पुखराज मुख्य रूप से ब्राजील में मिनास गिरैस नामक स्थान पर पाया जाता है। इस स्थान पर पुखराज प्रायः अपक्षयग्रस्त पेगमेटाइट नामक शैल अथवा नदियों द्वारा ढ़ोकर लाये गये प्रस्तर टुकड़ों के साथ पाया जाता हैं। यह पुखराज पीले रंग का तथा उत्तम श्रेणी का होता है जिसे संसार भर में रत्न के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इस पुखराज को गर्म करने पर गुलाबी रंग का पुखराज प्राप्त होता है। यहाँ हल्के रंग के तथा रंगहीन पुखराज भी प्राप्त होते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्राजील में स्फटिक के रवों की खोज के क्रम में एक दर्जन रंगहीन तथा पारदर्शक पत्थर के टुकड़े पाये गये। शुरू-शुरू में लोगों ने पत्थर के उन टुकड़ों को स्फटिक ही समझा, परन्तु जाँच करने पर पता चला कि वे सभी टुकड़े पुखराज थे। पुखराज के इन टुकड़ों को अमेरिका तथा यूरोप के विभिन्न संग्रहालयों को बेच दिया गया। बेचे गये पुखराज के इन टुकड़ों में सबसे बड़े टुकड़े का वजन था 240 किलोग्राम।

हल्के नीले तथा हरे रंग के पुखराज यूराल पर्वत क्षेत्र तथा साइबेरिया के मरचिंस्क क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। बिल्लौर (रॉक क्रिस्टल) से मिलते-जुलते रंगहीन पुखराज के टुकड़े नाइजीरिया के टिन अयस्क क्षेत्र में जलोढ़ मिट्टी (ऐलुवियल स्वायल) में पाये जाते हैं। पुखराज के ये टुकड़े नदियों की जल धाराओं द्वारा ढोकर लाये गये प्रतीत होते हैं। इन टुकड़ों में कुछ काफी बड़े-बड़े भी होते हैं। यहाँ पाये गये पुखराज के एक टुकड़े का वजन लगभग 240 किलोग्राम है। हालाँकि, पुखराज टिन अयस्क के साथ कॉर्नवाल (ब्रिटेन), उताह (संयुक्त राज्य अमेरिका), नाइजीरिया एवं मेक्सिको में रायोलाइट नामक शैल में पाये जाते हैं, परन्तु उत्तम किस्म का पुखराज संयुक्त राज्य अमेरिका में कोलेरैडो के निकट पाइक्स पीक तथा कैलिफोर्निया में सैन दियेगो काउंटी में पाया जाता है। ब्रिटेन में कौर्नगौर्म पहाड़ पर अच्छी श्रेणी का पुखराज पाया जाता है। जापान में टाकायामा तथा टनोकामियामा नामक स्थानों पर भी पुखराज का उत्खनन किया जाता है।

सन् 1929 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के खनिज विज्ञान विभाग ने मैने (न्यू इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका) के निकट ट्रॉपशाम स्थित एक पेगमेटाइटयुक्त पहाड़ को लीज पर लिया। इसका उद्देश्य था विभिन्न खनिजों के विशाल रवों को प्राप्त करना। कई सप्ताह तक काम चलने के बाद जब खदान की तलहटी में विस्फोट किया गया तो एक छिद्र में नीले रंग का पुखराज दिखायी पड़ा। अनुमान लगाया गया कि यहाँ पर प्रारम्भ में पुखराज के बड़े-बड़े रवे मौजूद रहे होंगे। परन्तु भूगर्भ से बाहर आने वाले उच्च तापमान वाले खनिज घोलों के प्रभाव से अधिकांश रवे नष्ट हो गये।

भारत में निम्न श्रेणी का पुखराज झारखंड के सिंहभूमि जिले में बकरा, घागीडीह, कन्यालुका तथा लप्साबुरु नामक स्थानों पर अत्यल्प परिमाण में पाया जाता है। कन्यालुका नामक स्थान पर मिलने वाला पुखराज हल्के नीले रंग का है। राजस्थान में नागौर जिले के रेवत क्षेत्र में भी पुखराज पाया जाता है। तमिलनाडु में कोयम्बटूर जिले के अनेक भागों में अल्प परिमाण में पुखराज पाया जाता है।

पुखराज की उपयोगिता तथा बाजार में उसकी माँग को ध्यान में रख कर वैज्ञानिक लोग काफी लम्बे अरसे से इस रत्न को कृत्रिम विधि द्वारा तैयार करने का प्रयास करते आये हैं। वैज्ञानिकों ने इस दिशा में सफलता भी प्राप्त कर ली है। कृत्रिम पुखराज बनाने के लिये सिलिका तथा ऐलुमिनियम फ्लोराइड को एक साथ मिश्रित कर तपाया जाता है। फिर इस तपाये गये मिश्रण को सिलिकान फ्लोराइड गैस में जलाया जाता है जिससे पुखराज के रवों (क्रिस्टल) का निर्माण हो जाता है। रासायनिक संघटन के दृष्टिकोण से कृत्रिम पुखराज प्राकृतिक पुखराज की अपेक्षा अधिक शुद्ध रहते हैं। अतः इच्छित रंग प्राप्त करने के लिये सावधानी पूर्वक इसमें अशुद्धियों को अत्यल्प परिमाण में मिलाया जाता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में विदेशी भाषा के माध्यम से कोई राष्ट्र न तो मौलिक ढंग से विकास कर सकता है, न ही अपनी विशिष्ट वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय पहचान बना सकता है।

**- पी0वी0 नरसिम्हा राव**

# क्या है बादल फटना ?

डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी *

उत्तराखण्ड में पिछले दिनों आयी भयानक प्राकृतिक आपदा में सैकड़ों लोगों को अपनी जान गवानी पड़ी और हजारों लोग प्रभावित हुए। शुरुआत में इसका कारण बादल फटना बताया गया लेकिन बाद में भारतीय मौसम विभाग ने यह स्पष्ट किया कि यह आपदा बादल फटने से नहीं बल्कि सामान्य से अधिक वर्षा होने के कारण हुई। सामान्यतया बादल फटने की घटनायें पर्वतीय इलाकों में होती हैं। मौसम विभाग के अनुसार 16 जून, 2013 की रात लगभग 09:00 बजे केदारनाथ और बद्रीनाथ के पहाड़ों पर तेज वर्षा दो कारणों से हुई। पहला कारण था बंगाल की खाड़ी से आये बादलों का वहाँ रुक जाना तथा दूसरा कारण ठीक उसी समय भूमध्य सागर के ऊपर चक्रवाती तूफान के बनने से भारी वर्षा का होना। चूँकि पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ के बादल केदारनाथ-बद्रीनाथ क्षेत्र में जमा हो गये इसलिए तेज बारिश हुई, जिससे वहाँ भूस्खलन और भयंकर तबाही मची। इस घटना से न केवल सिर्फ जान-माल की भारी क्षति हुई बल्कि आस-पास का प्राकृतिक संतुलन भी बिगड़ गया।

उत्तराखण्ड राज्य का क्षेत्रफल 53,484 वर्ग किमी. और सन् 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 1,01,16,752 है। उत्तराखण्ड भारत के उत्तर-मध्य भाग में स्थित है। यह पूर्वोत्तर में तिब्बत, पश्चिमोत्तर में हिमांचल प्रदेश, दक्षिण-पश्चिम में उत्तर प्रदेश और दक्षिण-पूर्व में नेपाल से घिरा है। उत्तराखण्ड का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल $28^{\circ}$ $43^{'}$ उ. से $31^{\circ}27^{'}$ उ. और रेखांश $77^{\circ}34^{'}$ पू. से $81^{\circ}02^{'}$ पू. के बीच में $53,48^{4}$ वर्ग किमी है, जिसमें से 43,035 किमी. पर्वतीय है और 7,448 किमी. मैदानी है, तथा 34,651 किमी भूभाग वनाच्छादित है। राज्य का अधिकांश उत्तरी भाग वृहद्तर हिमालय शृंखला का भाग है जो ऊँची हिमालयी चोटियों और हिमनदियों से ढ़ँका हुआ है, जबकि निम्न तलहटियाँ सघन वनों से ढ़ँकी हुई हैं। यद्यपि उत्तराखण्ड में धूलयुक्त मैदान जगह-जगह छाए हुए हैं, फिर भी यह क्षेत्र खासा वनाच्छादित और अत्यधिक पहाड़ी वाला है। बर्फ से ढ़ँकी चोटियों, गहरी खाइयों, हरहराती जल धाराओं और सुन्दर झीलों से युक्त इस क्षेत्र की भू-आकृति अत्यन्त विविधतापूर्ण है। ऊँचे पहाड़ों के हिमनद गंगा और यमुना नदी के स्रोत हैं। देश के सबसे ऊँचे पर्वत शिखरों में से कुछ उत्तरांचल में स्थित हैं, जैसे –

नंदा देवी - 7,817 मीटर, बद्रीनाथ - 7,138 मीटर,
सतोपंथ - 7,075 मीटर, त्रिशूल - 7,120 मीटर,
केदारनाथ - 6,940 मीटर, कामेट - 7,756 मीटर,
नीलकंठ - 6,596 मीटर।

**कैसे बनते हैं बादल**

धरती पर उपस्थित जल वाष्पित होकर आसमान में पहुँचता है और वहाँ संघनित होकर बादल बनता है। ये बादल दो प्रकार के होते हैं - धनावेशित और ऋणावेशित। चूँकि बादल जल का ही संघनित रूप होते हैं इसलिए उनमें नमी होती है। जब हवा और बादलों के जलकणों के बीच घर्षण होता है तो जलकण आवेशित हो जाते हैं। ये आवेश कभी धनात्मक और कभी ऋणात्मक होते हैं। इन दोनों तरह के बादलों के आपस में टकराने से बिजली कड़कती है और इनमें रुका हुआ पानी बारिश की बूँदों के रूप में धरती पर गिरता है। लेकिन जब यही बादल इकट्ठा होकर एक जगह बरस जाते हैं तो उसे बादल फटना कहते हैं। मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार जब 100 मिलीमीटर (3.94 इंच) प्रति घण्टा या इससे अधिक बारिश हो तो यह बादल फटना कहलाता है। इससे जमीन खिसक जाती है और बाढ़ की स्थिति पैदा हो जाती है। इस प्रकार के बाढ़ जिनमें पानी व मलबा बहकर आते हैं, जान-माल को काफी क्षति पहुँचाते हैं।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अचानक ही आए तूफान और भीषण गर्जना के साथ तीव्र गति से होने वाली वर्षा को बादल फटना कहा जाता है। जब वातावरण में अधिक नमी हो जाती है और हवा का रुख कुछ ऐसा होता है कि बादल दबाव से ऊपर की ओर उठते हैं और पहाड़ से टकराते हैं, इस स्थिति में पानी एक साथ बरस जाता है। इन बादलों को 'क्यूलोनिवस' कहा जाता है। मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा पहाड़ी क्षेत्रों में बादल अधिक फटते हैं। सर्द-गर्म हवाओं का विपरीत दिशा में टकराना भी बादल फटने का मुख्य कारण माना जाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस प्रक्रिया में पानी असामान्य तेजी से गिरता है, जिसे जमीन सोख नहीं पाती। वर्षा की गति बहुत तेज होती है, जो भूमि को नम नहीं बनाती, बल्कि मिट्टी को बहा देती है। वर्षा की तीव्रता इतनी अधिक होती है कि वह दो फुट के किसी नाले को पानी के 50 फुट के नाले में तब्दील कर देती है। बादलों की आकृति व ऊँचाई के आधार पर इन्हें तीन मुख्य वर्गों में बाँटा गया है और इन वर्गों में कुल दस तरह के बादल होते हैं।

1. पहला वर्ग निम्न मेघ का है। इनकी ऊँचाई ढ़ाई किलोमीटर तक होती है। इनमें एक जैसे दिखने वाले भूरे रंग के स्तरी या स्ट्रेटस बादल, कपास के ढ़ेर जैसे कपासी, गरजने वाले काले रंग के कपासी वर्षी (क्यूमलोनिंबस), भूरे काले वर्षा स्तरी (निम्बोस्ट्रेटस) और भूरे सफेद रंग के स्तरी-कपासी (स्ट्रेटोक्यूमलस) बादल आते हैं।

2. बादलों का दूसरा वर्ग मध्य मेघ का है। इनकी ऊँचाई ढ़ाई से साढ़े चार किलोमीटर तक होती है। इस वर्ग में दो तरह के बादल हैं, अल्टोस्ट्रेटस और अल्टोक्यूमलस।

3. तीसरा वर्ग उच्च मेघों का है। इनकी ऊँचाई साढ़े चार किलोमीटर से ज्यादा रहती है। इस वर्ग में सफेद रंग के छोटे-छोटे साइरस बादल, लहरदार साइरोक्यूमलस और पारदर्शक रेशेयुक्त साइरोस्ट्रेटस

*हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221 005.

बादल आते हैं। इन बादलों में से कुछ हमारे लिए फायदेमंद बारिश लाते हैं तो कुछ प्राकृतिक विनाश।

बादल फटने की घटना के लिए क्यूमलोनिंबस बादल जिम्मेदार हैं। ये बादल देखने में गोभी की शक्ल के लगते हैं। ऐसा लगता है कि आकाश में कोई बहुत बड़ा गोभी का फूल तैर रहा हो। इनकी लम्बाई 14 किलोमीटर तक हो सकती है। ये बादल कैसे इतनी बारिश एक साथ कर देते हैं? वस्तुतः जब क्यूमलोनिंबस बादलों में एकाएक नमी पहुँचनी बन्द हो जाती है या कोई बहुत ठंडी हवा का झोंका उनमें प्रवेश कर जाता है, तो ये सफेद बादल गहरे काले रंग में बदल जाते हैं और तेज गरज के साथ उसी जगह के ऊपर अचानक बरस पड़ते हैं। ऐसी बारिशें ज्यादातर पहाड़ी क्षेत्रों में ही होती हैं। क्यूमलोनिंबस बादलों के बरसने की रफ्तार इतनी तेज होती है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसा समझ लें कि कुछ ही देर में आसमान से एक पूरी की पूरी नदी जमीन पर उतर आती है। उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल शहर में बादल फटने से अभी तक की अधिकतम बारिश होने का रिकार्ड 24 घण्टों में 509.3 मिलीमीटर दर्ज किया गया है।

# पारिस्थितिकी विज्ञान एवं पर्यावरणीय जैवप्रौद्योगिकी के नवीन आयाम और वर्तमान स्थितियाँ विषयक तीन दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग द्वारा विज्ञान संकाय के नवीन व्याख्यान संकुल सभागार में 'पारिस्थितिकी विज्ञान एवं पर्यावरणीय जैवप्रौद्योगिकी के नवीन आयाम और वर्तमान स्थितियाँ' विषयक तीन दिवषीय (01 से 03 मार्च, 2013) राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया गया। इस अवसर पर संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए मुख्य अतिथि हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड के पूर्व कुलपति एवं उत्तराखण्ड विज्ञान परामर्शदाता समिति के सदस्य प्रो0 एस.पी. सिंह ने कहा कि हमारे देश में पारिस्थितिकी विज्ञान का अध्ययन काफी पहले से ही प्रारम्भ हो चुका है और आज भी इस दिशा में गहन अध्ययन एवं अनुसन्धान जारी है। इन अध्ययनों के महत्वपूर्ण निष्कर्षों को लागू कर पारिस्थितिकी संरक्षण की दिशा में प्रभावी सफलता प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने अपने लम्बे अनुसंधान परीक्षणों के आधार पर 'हिमालयी पूर्वी-पश्चिमी क्षेत्रों के परिवर्तन के तरीके और अनुसन्धान व्याख्या की बाधाएँ' पर आधारित मुख्य व्याख्यान प्रस्तुत किया। उन्होंने बतलाया की पहाड़ी क्षेत्रों में वनोन्मूलन पर रोक लगाकर और गहन वृक्षारोपण के माध्यम से पर्वतों को पुनः हरा-भरा किया जा रहा है। प्रो0 सिंह ने कहा कि वनों के आन्तरिक भाग सदैव ही प्रेरणादायी होते हैं और उनसे अनेक अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। उन्होंने वर्तमान समय में देश में 'साइंस्टिस्ट सीटिजन्स' जैसे कार्यक्रमों को आयोजित कर जनसहभागिता प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया।

कार्यक्रम के सम्मानित अतिथि प्रख्यात पर्यावरणविद् एवं वनस्पति विज्ञान विभाग के प्रोफेसर इमेरिटस प्रो0 जे.एस. सिंह ने कहा कि आज पर्यावरण विज्ञान के क्षेत्र में बहुविषयी अध्ययन एवं अनुसंधान की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि इस प्रकार के अध्ययन में दो और दो मिलकर चार ही नहीं बल्कि उससे अधिक हो जाते हैं और आशा व्यक्त की कि हमारे युवा वैज्ञानिक इस प्रकार के अनुसंधान की दिशा में कदम बढ़ायेंगे। इस अवसर पर वनस्पति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रो0 ए.के. राय ने वनस्पति विज्ञान विभाग के गौरवमयी अतीत एवं वर्तमान अनुसंधान गतिविधियों की चर्चा की। तत्कालीन विज्ञान संकाय प्रमुख प्रो0 एस.के. सेनगुप्ता ने संकाय स्तर पर संचालित अनुसंधान कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला। प्रारम्भ में संगोष्ठी संयोजक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल ने अतिथियों का स्वागत किया और संगोष्ठी के आयोजन सचिव डॉ0 जितेन्द्र पाण्डेय ने संगोष्ठी के उद्देश्यों से अवगत कराया। कार्यक्रम का संचालन एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ0 नन्दिता घोषाल द्वारा किया गया। इस अवसर पर मंचस्थ अतिथियों ने संगोष्ठी की शोध सारांशिका का लोकार्पण किया। आयोजन समिति की तरफ से अतिथियों को स्मृति चिन्ह एवं पुष्पगुच्छ प्रदान कर सम्मानित किया गया।

इस अवसर पर नेपाल के काठमांडू स्थित अन्तर्राष्ट्रीय समन्वित पर्वत विकास केन्द्र के डॉ0 एकलब्य शर्मा ने 'हिन्दकुश हिमालय क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन' पर विशेष व्याख्यान देते हुए 'ज्ञान शून्यता एवं प्रतिक्रियायें' पर विस्तार से प्रकाश डाला। प्रथम सत्र की अध्यक्षता प्रो0 जे.एस. सिंह एवं विवरण प्रस्तुति प्रो0 मधूलिका अग्रवाल द्वारा किया गया। अपरान्ह में आमंत्रित तकनीकी व्याख्यान सत्र के अन्तर्गत बीरबल साहनी जीवाश्म अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के डॉ0 आर.आर. यादव ने 'वृक्षों से पर्यावरणीय कहावतें', प्रशासन एवं प्रबंधन आकादमी, भोपाल की डॉ0 गोपा पाण्डेय ने 'वनों से पारिस्थितिकी सेवायें' एवं नई दिल्ली के डॉ0 मनोज प्रसाद ने 'टमाटर के पत्ते पर कर्ललीफ वायरस से प्रतिरोध की यान्त्रिकी' पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। इसके अलावा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद के प्रो0 एम.एन.वी. प्रसाद, बरहामपुर विश्वविद्यालय के प्रो0 बी.बी. पण्डा ने भी अपने व्याख्यान प्रस्तुत किये। इस सत्र की अध्यक्षता वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर इमेरिटस प्रो0 के.पी. सिंह एवं विवरण प्रस्तुति प्रो0 नन्दिता घोषाल ने किया। इस सत्र में प्रो0 आर.एस. उपाध्याय, डॉ0 के.डी. पाण्डेय, प्रो0 जे.पी. गौड़ सहित अनेक विद्वान एवं शोध छात्र-छात्राएँ उपस्थित थे।

इस अवसर पर पिछले दो दिनों के 6 पोस्टर प्रस्तुतियों को क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। समापन समारोह में प्रो0 डी.एन. तिवारी, प्रो0 सुरेन्द्र सिंह, प्रो0 आर.के. अस्थाना, प्रो0 डी.डी. पाण्डेय, प्रो0 ए.के. मिश्रा, डॉ0 कमलेश कुमार, प्रो0 एल0 सी0 राय, डॉ0 हेमा सिंह, डॉ0 सुप्रिया तिवारी, डॉ0 एस.सी. जोशी, डॉ0 नन्दिता सिंह, डॉ0 रविन्द्र खैवाल, डॉ0 आदर्श कुमार आदि ने भाग लिया। समापन कार्यक्रम का संचालन प्रो0 मधूलिका अग्रवाल एवं धन्यवाद ज्ञापन प्रो0 जितेन्द्र पाण्डेय ने किया। इस संगोष्ठी में देश-विदेश के दो सौ से अधिक वैज्ञानिकों, शिक्षकों व शोध छात्रों ने भाग लिया।

प्रस्तुतिः **डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी,** हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

# अनेक रोगों की एक दवा : अजवायन

डा0 अनिता रानी गुप्ता *

अजवायन का प्रयोग भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही होता आ रहा है मानव जीवन में इसका बहुत उपयोग किया जाता है। यह पेट में दर्द, कफ, वायुगोला, कृमियों का नाश, अफरा रोग को दूर करती है। सैकड़ों तरह के अन्न पचाने वाली पाचक औषधियों की गणना में आजवायन का स्थान सर्वोपरि है। प्रसूति के बाद स्त्री को इसका विशेष रूप से सेवन कराया जाता है। इससे गर्भाशय की शुद्धि व पीड़ा दूर होती है। अजवायन में चिरायते का कटुपौष्टिक गुण, हींग का वायुनाशक और काली मिर्च का अग्नि दीपन गुण समाहित है। इसी कारण कहा जाता है। ''एका यवानी शतमन्नपातिका''- अर्थात अकेली अजवायन ही सैकड़ों प्रकार के अन्न को पचाने में सक्षम है।

अजवायन शरीर की वेदना मिटाती है, और अमाशय को सक्रिय बनाती है। इसका शरबत पक्षाघात और कंपन वायु में अति लाभप्रद है। इसका क्वाथ छाती की पीड़ा के लिये टॉनिक का काम करता है और इससे नेत्रों को धोने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। कानों में डालने से बहरापन दूर होता है। शरीर में कहीं पर भी वेदना होती हो तो इसे पानी में पीसकर लेप करने और ऊपर से उसे धीरे-धीरे सेकने से उस अंग से पसीना आयेगा और धीरे-धीरे दर्द भी दूर हो जायेगा। इसमें एक सुगंधयुक्त उड़नशील द्रव्य रहता है जो थायमल के नाम से प्रचलित है। अजवायन को पानी में भिगोकर भाप के द्वारा (जिसे आसवन विधि कहते हैं) इसका सत निकाला जाता है।

**बाह्य स्वरूप :-** अजवायन के पौधे 5 से 6 फुट तक ऊँचे होते हैं। इसका क्षुप पौधा एक से तीन फीट ऊँचा होता है। काष्ठ धारीदार होता है

**अजवायन के पुष्पयुक्त पौधे**

इसके लिए सर्वाधिक काली मिट्टी और नदियों के किनारे की नम जमीन काफी उपयोगी रहती है। यह अधिकतर खेतों में बोई जाती है। इसके पुष्प छत्राकार, श्वेत संयुक्त छत्रकों में सघन होते हैं। फल आधे इंच लम्बे अण्डाकार धूसर, भूरे रंग के होते हैं। इसका पुष्पन फरवरी अप्रैल और उसके बाद इसमें फल लगते हैं।

**अजवायन के औषधीय प्रयोग**

**खांसी और श्वाँस रोग :** गर्म पानी के साथ अजवायन चबाकर खाने से खाँसी में लाभ होता है। कफयुक्त खाँसी के साथ और खाँसी तथा कफज ज्वर में अजवायन 2 ग्राम, छोटी पिप्पली आधा ग्राम, का क्वाथ बनाकर 5 से 10 ग्राम की मात्रा में सेवन करने से लाभ होता है। 5 ग्राम अजवायन को 250 ग्राम पानी में पकाने के बाद आधा शेष रहने पर छानकर नमक मिलाकर रात्रि में सोते समय पीने से खाँसी व श्वांस रोग में लाभ मिलता है।

**जुकाम :** गरम अजवायन को पोटली में बाँधकर सूँघने से जुकाम में काफी फायदा होता है। इससे छींके भी रुक जाती हैं और सिरदर्द भी ठीक हो जाता है।

**सिर की जुँए :** 10 ग्राम अजवायन चूर्ण में 5 ग्राम फिटकरी डालकर दही या छाछ में मिलाकर बालों में मलने से लीखें और जुँए मर जाती हैं।

**पथरी :** एक चम्मच अजवायन फाँककर स्वच्छ पानी पीने से कुछ दिनों से मूत्रमार्ग के रास्ते पथरी गलकर बाहर निकल जाती है।

**हैजा :** अजवायन और थोड़ा सा कपूर मिलाकर लेने से हैजे में चमत्कारिक लाभ होता है। ऐंठन में भी कमी आती है।

**अमृत धारा :** अमृत धारा बनाने के लिए अजवायन 10 ग्राम, पुदीने का सत या फूल 10 ग्राम, देसी कपूर 10 ग्राम इन तीनों को एक साफ शीशी में डालकर ढक्कन लगाकर धूप में रखें। थोड़ी देर में तीनों चीजें गलकर द्रव बन जायेंगी। इसी दवा को तरह-तरह नामों से बेंचा जाता है। यह दवा अनेक रोगों में उपयोगी है। जैसे सर्दी-जुकाम में 3 से 4 बूँदे रूमाल में लेकर सूँघने से लाभ मिलता है। 10-12 बूँदें गर्म जल में डालकर सूँघने से भी बंद नाक को आराम मिलता है। उल्टी दस्त में भी 4-5 बूँदे जल में देने से लाभ होता है।

**पेट दर्द :** 3-4 ग्राम अजवायन में थोड़ा काला नमक व हींग मिलाकर ताजे या गुनगुने पानी के साथ फंकी लेने से किसी प्रकार के पेट दर्द में आराम मिलता है। भोजन के बाद यदि छाती में जलन हो तो 1 ग्राम

*न्यू जी0 10, हैदराबाद कालोनी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.


ISSN 2231-2455

अजवायन के सूखे बीज

अजवायन और बादाम की एक गिरी दोनों को खूब चबा-चबाकर खाने से भी लाभ होता है। अजवायन 10 ग्राम, छोटी हरड 6 ग्राम, थोड़ा-थोड़ा हींग सेंधा नमक मिलाकर चूर्ण की फंकी लेने में भी गैस, अफरा में आराम मिलता है।

**बहुमूत्र :** अजवायन में सरसों का तेल मिलाकर खाने से अत्यधिक लाभ होता है। 2 ग्राम अजवायन को 2 ग्राम गुड़ के साथ कूटकर 4 गोली बना लें 3-3 घंटे के अन्तर से 1-1 गोली लेने से बहुमूत्र में लाभ होता है।

**ज्वर :** शीतज्वर आने पर थोड़ा सा अजवायन सुबह-शाम गुनगुने जल के साथ लेने से लाभ होता है।

**प्रसूति विकार :** प्रसव के बाद हाथ-पैरों में जलन, जुकाम, खाँसी, पेट में दर्द, कमर दर्द, कमजोरी, रकताल्पता, गर्भाशय का रक्त विकार जैसे रोगों में गुड़ के साथ अजवायन गर्म करके लेने से बहुत लाभ होता है। और सरसों के तेल में अजवायन डालकर मालिश करने से भी प्रसूता के शरीर को बहुत लाभ होता है।

**पित्ती उछलना :** 2 ग्राम अजवायन में 4 ग्राम गुड़ के साथ मिलाकर गर्म करके खाने से पित्ती में लाभ पहुँचता है।

**शराब की आदत :** शराब पीने की आदत छुड़ाने के लिये दिन में 2 से 3 बार अजवायन खाने से भी शराब की आदत छूट सकती है।

**घाव :** फोड़ा, फुंसी या शरीर में कहीं भी घाव हो जाये उसमें अजवायन का पावडर या सत छिड़कने से घाव भरने लगता है और शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

**खट्टी डकारें या अपच :** खट्टी डकार या अपच होने पर 5 ग्राम अजवायन उसमें थोड़ा सा काला नमक मिलाकर गरम पानी के साथ लेने से अपच व खट्टी डकारों में बहुत फायदा होता है।

**बच्चों के पैरो में काँटा चुभने पर :** बच्चों के काँटा चुमने के स्थान पर पिघले हुये गुड़ में पिसी हुई अजवायन 10 ग्राम मिलाकर थोड़ा गर्म करके उस स्थान पर बाँध देने से काँटा अपने आप निकल जाता है।

**गले की सूजन :** अजवायन के तेल की 5 से 6 बूँदो में आधा तोला शहद मिलाकर दिन में उसे 4 बार चाटने से तथा इसके साथ ही अजवायन का चूर्ण, नमक मिले गुनगुने पानी में घोलकर उस पानी से गरारे करें। इससे गले की सूजन में अतिलाभ मिलेगा।

**मासिक धर्म :** जिनकों खुलकर मासिक धर्म नहीं होता हो उनको थोड़े से देशी घी में एक चम्मच अजवायन डालकर थोड़ा सा गुड़ आधा चम्मच हल्दी डालकर उसमें एक कप पानी डालकर खौलाने के बाद गुनगुना पीने से खुलकर मासिक धर्म होगा इससे गर्भाशय भी साफ हो जाता है और पेट दर्द भी खत्म हो जाता है।

**दाद और खुजली :** 1 लीटर पानी में 10 ग्राम अजवायन के फूल का चूर्ण मिलाकर मलने से दाद, खुजली और चर्मरोग खत्म हो जाता है।

**काली खाँसी :** 10 ग्राम अजवायन में 3 ग्राम नमक को पीसकर उसमे 40 ग्राम शुद्ध शहद मिलाकर रख लें। इसे दिन में 3 से 4 बार थोड़ा-थोड़ा चाटने से बच्चों की काली खाँसी में बहुत फायदा होता है।

**उदर कृमि :** पिसी अजवायन को (1चम्मच) नियमित रूप से कुछ दिनों तक खाने से पेट के सभी कीड़े मरकर मलद्वार के रास्ते बाहर निकल जाते है।

**कान दर्द :** अजवायन के 10 बूँद तेल में सरसों का 30 बूँद तेल डालकर रूई लगा दें इससे कान दर्द में बहुत फायदा होता है।

**दाँत दर्द :** दाँत दर्द होने पर अजवायन के तेल में रूई को भिगोंकर दाँत पर लगाकर मुँह की लार नीचे टपकाते रहने से दाँत के दर्द में भी बहुत आराम मिलता है।

**दस्त :** पतले दस्त हो जाने पर 3 ग्राम अजवायन और 500 ग्राम ताजे पानी के साथ फंकी लेने से तुरन्त लाभ होता है। अगर किसी को एक बार में आराम न मिले तो दुबारा 15-15 मिनट के अन्तराल पर इसे लेने से फायदा जरूर होगा।

**इन्फ्ल्युएंजा :** 10 ग्राम अजवायन को 200 ग्राम पानी में पकाकर तैयार करें इसे 25-25 ग्राम की मात्रा में पिलाने से रोगी की बेचैनी शीघ्र ही दूर हो जाती है। इसको पुनः पीने से एक ही दिन के अन्दर लाभ होता है।

**मलेरिया ज्वर :** मलेरिया ज्वर होने के बाद हल्का-हल्का बुखार कई दिनों तक रहने पर इसके लिये 10 ग्राम अजवायन को रात्रि में 100 ग्राम जल में भिगोकर रखें। इसके बाद सुबह उठकर उस पानी को छानकर गुनगुना कर जल को कुछ दिनों तक पीने से लाभ होता है।

**पाचन ठीक न होना :** जिसको भोजन का पाचन ठीक प्रकार से न होता हो वह नियमित रूप से भोजन के उपरान्त थोड़ी सी अजवायन खाने से इस रोग से छुटकारा पाया जा सकता है।

इस प्रकार अजवायन में अनेकों औषधीय गुण निहित होने के कारण मनुष्य के शरीर में अधिकांश रोगों को ठीक करने का कार्य यह करती है। अतः अजवायन के बारे में ठीक ही कहा गया है कि अनेक रोगों की एक दवा अजवायन है। इसी कारण अजवायन को घरों में मसालों के रूप में सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है।

# जैव-विविधता परिरक्षण और पर्यावरण

अमित कुमार मिश्रा[1] एवं प्रज्ञा दूबे[2] *

आज के परिवेश में जैव-विविधता संरक्षण की बात सर्वत्र की जा रही हैं। जैव-विविधता से अभिप्राय स्थल विशेष या परिस्थितिकीय जटिलताओं, जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों की विभिन्न प्रजातियों और परिप्रणाली की विभिन्नता से है।

हमारे परिवेश में तालाब, नदी, जंगल, पहाड़ इत्यादि मौजूद हैं। इस प्रकार के परिवेशों में रहने वाले जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, झाड़ियाँ और सूक्ष्म चनाएँ, विभिन्न उत्पत्ति तत्व और जैव उत्पाद भी शामिल हैं।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण को अपनाते हुए सन् 1985 में सर्वश्री वाल्टर जी. रोजेन ने पादपों, जीव-जन्तुओं एवं सूक्ष्मजीवों के विभिन्न प्रकारों में विविधता को प्रदर्शित करने के लिए 'जैव-विविधता' शब्द का प्रयोग किया था। आई.यू.सी.एन. तथा यू.एन.ई.पी. (UNEP) ने सन् 1992 में जैव-विविधता को इस प्रकार से परिभाषित किया है- ''किसी क्षेत्र में प्राप्त जीवों, प्रजातियों तथा पारिस्थितिकी तंत्रों की संयुक्त संख्या को जैव-विविधता कहते हैं।'' अर्थात्, किसी क्षेत्र में पाए जाने वाले जीवित जीवों की भिन्नता तथा विविधता के कुल योग को जैव-विविधता की संज्ञा दी जाती है।

मसलन भारत की भौगोलिक संरचना के अनुसार जैव-विविधता को आसानी से देखा जा सकता है। जैसे कि उत्तर में हिमालय की बर्फ से ढ़की चोटीयाँ और हिमनद तथा दक्षिण में नीलगिरि की पहाड़ियाँ और पठार, जबकि पश्चिम में राजस्थान के रेगिस्तान एवं पूर्व के सदाबहार वन।

भारतीय उपमहाद्वीप में राज्य सरकार ही नहीं बल्कि भारत की सर्वोच्च न्यायालय भी जैव विविधता के संरक्षण के बारे में चितिंत है। गुजरात राज्य में ''सौराष्ट्र गिर राष्ट्रीय उद्यान'' स्थित है, जो मुख्यतः एशियाई शेरों के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध है। गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में पिछले दो वर्षों में 92 एशियाई शेरों की मृत्यु हो गई, जिनमें से 83 की मृत्यु प्राकृतिक बतलाई गयी और अवैध शिकार का कोई मामला सामने नहीं लाया गया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, 2011 और 2012 में प्रत्येक वर्ष 46 शेरों की मृत्यु हुई। पिछले दो वर्षों में मृत कुल 92 शेरों में से 43 शावक, 29 मादा शेर एवं 20 नर शेर सम्मिलित थे।

अभी हाल ही में इस बात से चितिंत होकर भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक अहम फैसला लिया है, जिसमें गुजरात सरकार को यह निर्देश दिया कि कुछ एशियाई शेरों को मध्य प्रदेश के ''कूनो – पालपुर वन्यजीव अभ्यारण्य'' में स्थानान्तरित कर दिया जाए।

**भौगोलिक पारिस्थितिकी क्षेत्रों में जीव-जन्तुओं की संख्या**

| | जीव-जन्तु | संख्या |
|---|---|---|
| 1- | पेड़-पौधे | 48000 |
| 2- | स्तनपायी | 340 |
| 3- | पक्षी | 1200 |
| 4- | सरीसृप | 400 |
| 5- | उभयचर | 140 |
| 6- | मछलियाँ | 1400 |
| 7- | मोलस्क | 1000 |

**वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अनुसार**

| | पौधे | संख्या |
|---|---|---|
| 1- | पुष्पीय पौधे | 17500 |
| 2- | समुद्री वनस्पतियाँ | 5000 |
| 3- | कवक | 20000 |
| 4- | लाइकेन | 16000 |
| 5- | ब्रायोफाइट | 27000 |
| 6- | टेरिडोफाइट | 600 |

**आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पुष्पीय पौधों की संख्या**

| आर्थिक महत्व | संख्या |
|---|---|
| औषधीय महत्व की | 8000 प्रजातियाँ |
| खाद्ययोग्य | 3000 प्रजातियाँ |
| रेशे देने वाली | 500 प्रजातियाँ |
| गोंद व लाख देने वाली | 300 प्रजातियाँ |
| चारा देने वाली | 400 प्रजातियाँ |
| मानवीय आस्थाओं से जुड़ी | 700 प्रजातियाँ |

**भारतीय क्षेत्र में जैव-विविधता**

भारत में जैव-विविधता वृहद् हिमालय, रेगिस्तान, प्रायद्वीप क्षेत्र एवं पठारी भाग, गंगा का मैदानी भाग, समुद्र तटीय क्षेत्र एवं द्वीप समूह इत्यादि क्षेत्रों में अधिसंख्य वन्य जीव एवं वनस्पतियों के रूप में पारिस्थितिकी तंत्र शामिल हैं।

*[1]शोध छात्र, वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221 005; [2]शोध छात्रा, वनस्पति विज्ञान विभाग, उदय प्रताप स्वायत्तशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी – 221 002.

भारत के भू-आकृतिक विन्यास एवं जलवायुविक विषमता के कारण विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आवासों का निर्माण हुआ है। इस प्रायद्वीप का उत्तरी भाग हिमालय, मध्यवर्ती भाग वृहद् मैदानी, पश्चिमी छोर पर मरुस्थल एवं पूर्वी भाग दलदलीय जबकि दक्षिणवर्ती भाग पठारी है। इसके अतिरिक्त भारत के तीनों ओर समुद्र तटीय मैदान हैं। इससे स्पष्ट है कि भारत की भू-संरचना अद्भुत है।

**जैव विविधता के प्रकार**

जैव-विविधता के तीन प्रमुख प्रकार हैं :

1- अनुवांशिक जैव–विविधता : इस विविधता से अभिप्राय है कि एक ही प्रजाति में पायी जाने वाली एक ही जाति के मध्य विभिन्नता। जैसे यूरोप में गोरे लोग जबकि एशिया में पीत-वर्ण के लोग।

2- प्रजातीय जैव-विविधता : प्रजातियों के मध्य पायी जाने वाली विविधता को प्रजातीय जैव-विविधता की संज्ञा देते हैं। जैसे चारो ओर वृक्षों, पौधों, झाड़ियों और विविध प्रकार के जीव-जन्तुओं का पाया जाना।

3- पारिस्थितिकी जैव-विविधता : विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्र में विभिन्न प्रकार के जीवों की उपलब्धता ही पारिस्थितिकी जैव-विविधता कहलाती है। जैसे राजस्थान में ऊँट की अधिकता।

जैव-विविधता का महत्व बहु-आयामी है। पर्यावरणीय संतुलन में सहायक होने के कारण ये विभिन्न आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक लाभ के स्रोत भी हैं। अनेक जीव-जन्तु पर्यावरण-प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए प्रदूषकों का भक्षण करते हैं। कुछ जीव-जन्तु पालतू भी बनाए गए हैं जिनका उपयोग अनेक-कार्यों में किया जाता है। यही कारण है कि ये आदिकाल से अब तक मानव समाज के लिए उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं।

मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति का दोहन किया है- जैसे- आवास, ईधन के लिए वृक्षों का काटा जाना, खाद्यान्न के रूप में विभिन्न फसलों को तैयार किया जाना, जानवरों से दूध, मांस, मछली, अंडा, रेशों इत्यादि का उत्पादन जीविकोपार्जन के लिए किया जा रहा है। इसके साथ ही फलदार वृक्षों से फलों का और इमारती लकड़ी का उत्पादन बढ़ गया है। विभिन्न प्रकार के जैव उत्पाद जैसे- रेशम, शहद् इत्यादि एवं पशुपालन में गाय व भैंस से दूध, पनीर तथा भेड़ व बकरी से दूध, मांस व ऊन इत्यादि का प्रयोग किया जा रहा है।

जैव विविधता का सामाजिक एवं नीतिगत महत्व भी है। प्राचीन भारत के सुप्रसिद्ध लेखक श्री विष्णु शर्मा ने वन्य जीवों पर आधारित नीतिपरक कहानियों का संग्रह अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'पंचतंत्र' में किया है जिसके माध्यम से जीवनोपयोगी शिक्षा को अत्यन्त सरल एवं रोचक ढंग से चित्रित किया है जिससे समाज सुदृढ़ व स्वच्छ बना रहे।

जैव विविधता का पारिस्थितिकी संतुलन में भी विशेष भूमिका है। समस्त जीव एक निश्चित संख्या में बहुत बड़ी खाद्य-श्रृंखला के रूप में जीवन-यापन करते हैं। यदि एक कड़ी भी टूट जाय तो प्रकृति का संतुलन असंतुलित हो जायेगा। वन्य-जीव पारिस्थितिकीय संतुलन बनाने के साथ ही प्रदूषण नियन्त्रित कर मानव को जीवनदान भी देते हैं।

**आइ.यू.सी.एन. रेड सूची :**

लाल सूची (Red List) विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रहे प्रजातियों की एक सूची है। विश्व संरक्षण संघ (पूर्व में प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ, IUCN) के अनुसार, प्रजातियों की नौ लाल सूची की श्रेणियाँ बनाई गयी जो निम्न प्रकार से हैं:

1- विलुप्त
2- जंगल में विलुप्त
3- गंभीर खतरे में
4- खतरे में
5- भेद्य
6- खतरे के पास
7- कम सम्बन्धित
8- कम आंकड़ा
9- अमूल्यांकित।

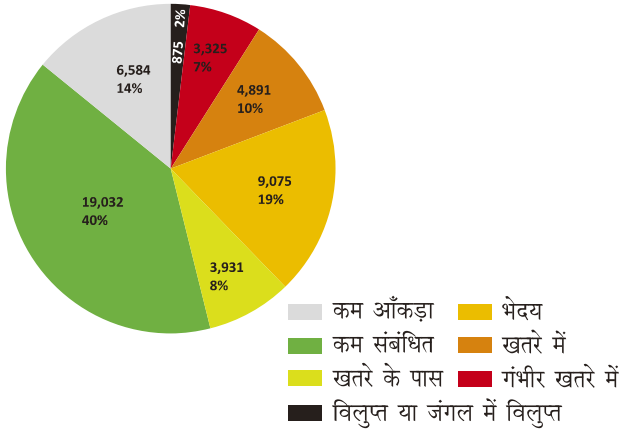


**47,677 प्रजातियों के आंकड़ों के आधार पर IUCN लाल सूची पर विलुप्त होने का जोखिम के विभिन्न खतरा श्रेणियों में सभी मूल्यांकित प्रजातियों का अनुपात (स्रोत : आइ.यू.सी.एन. 2010)**

**विलुप्तप्राय वनस्पतियों एवं प्राणियों की वर्तमान स्थिति**

विलुप्तप्राय वनस्पतियों एवं प्राणियों की कुल संख्या 11,046 है। लाल सूची के अनुसार 44 पौधे गंभीर खतरे में, 113 पौधे खतरे में, 87 पौधे भेद्य तथा 18 प्राणी गंभीर खतरे में और 54 प्राणी खतरे में, 143 प्राणी भेद्य हैं।

इनके कुछ उदाहरण हैं :

| क्रं.स. | श्रेणी | पौधे | प्राणी |
|---|---|---|---|
| 1. | गंभीर खतरे में | *बैरबैरसि निलगिरिएन्सीस* | *सस ऐल्वीनस* (पिग्मी हॉग) |
| 2. | खतरे में | *बेन्टींकिया निकोबारीका* | *ऐलरस फलसेंस* (लाल पाण्डा) |
| 3. | भेद्य | *क्यूप्रेसस कैसमीरियाना* | *ऐण्टीलोप कर्वीकेप्रा* (काला बक) |

## जैव-विविधता का संरक्षण के प्रयास

### संवैधानिक संरक्षण

भारतीय संविधान में पारम्परिक जैव-ज्ञान को अनुच्छेद-36 (4) तथा 11 में बौद्धिक सम्पदा घोषित किया गया है। जैव-विविधता से सम्बन्धित अधिनियम के अनुच्छेद-18 (4) में इस मद से प्राप्त आय की

**गंभीर खतरे में ( 1 व 4 ) खतरे में ( 2 व 5 ) तथा भेद्य ( 3 व 6 ) प्रजातियाँ**

1- *बैरबैरीस निलागीरिएन्सीस,* 2- *बेन्टींकिया निकोबारीक,* 3- *क्यूप्रेसस कैसमीरियान,*
4- *सस सेलवीनस* (पीग्मी हॉग), 5- *ऐलरस फलजेंस* (लाल पाण्डा), 6- *ऐण्टीलोप कर्वीकेप्रा* (काला बक)

केन्द्र सरकार तथा संरक्षण में संलग्न व्यक्ति या संस्था में समान रूप से बटवारे की व्यवस्था की गई है। अनुच्छेद 6 में जैव-विविधता क्षेत्र में शोध या उपयोग के बावजूद विदेशियों के लिए अनिवार्य अनुभूति एवं अनुच्छेद 21 में जैव-विविधता कोष बनाने का प्रावधान रखा गया है। अनुच्छेद 21 के एक उपनियम में कोष के धन का उपयोग जड़ी-बूटियों से सम्बन्धित डिजिटल पुस्तकालय बनाने में किया जा सकता है।

**जैव विविधता के संरक्षण हेतु दो मूल रणनितियाँ बनाई गयी है जो इस प्रकार है :**

**1. स्वस्थाने संरक्षण :** स्वस्थाने संरक्षण के अनुसार राष्ट्रीय पार्कों एवं अभ्यारण्यों व अन्य संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना करके जीवों को प्राकृतिक आवास के साथ ही साथ खाद्य जल एवं वनस्पति का संरक्षण विधिवत किया जाता है।

**( i ) संरक्षित क्षेत्र :** ये विशेष संरक्षण और जैव विविधता के रखरखाव के लिए समर्पित भूमि या समुद्र और प्राकृतिक और सम्बद्ध सांस्कृतिक संसाधनों के क्षेत्र हैं। इनका प्रबंधन कानूनी या अन्य प्रभावी साधनों के माध्यम से किया जाता है। पूरे विश्व में लगभग 37,000 संरक्षित क्षेत्र हैं। भारत में 581 संरक्षित क्षेत्र हैं जिनमें से 89 राष्ट्रीय उद्यान एवं 492 वन्यजीव क्षेत्र हैं।

विश्व का प्रथम राष्ट्रीय उद्यान यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका में स्थित है जो येलोस्टोन राष्ट्रीय उद्यान के नाम से जाना जाता है। भारत में सर्वप्रथम स्थापित राष्ट्रीय उद्यान 'जिम कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान' है जो उत्तराखंड में है। यहाँ पर पौधों की 488 विभिन्न प्रजातियाँ एवं विविध किस्म के प्राणी पाये जाते हैं।

**( ii ) बायोस्फीयर रीजर्व :** बायोस्फीयर रीजर्व विशेष श्रेणी के भूमि या तटीय वातावरण के संरक्षित क्षेत्र हैं जहाँ लोगों को इस प्रणाली का एक अभिन्न अंग माना जाता है। भारत में कुल 18 बायोस्फीयर रीजर्व स्थित हैं तथा विश्व में इनकी कुल संख्या लगभग 610 है।

**( 2 ) कृत्रिम आवासीय संरक्षण :** इस प्रकार के संरक्षण में आनुवांशिकी इन्जीनियरिंग की सहायता से विलुप्तप्राय प्राणी या वनस्पति को बचाने के लिए प्राकृतिक आवास के समान ही कृतिम आवास बनाकर संरक्षित किया जाता है अर्थात् जीव या पेड़-पौधों की जातियों को उनके बाह्य क्षेत्र से हटाकर अन्यत्र संरक्षित किया जाता है। कृत्रिम आवासीय संरक्षण रणनीतियों में वानस्पतिक उद्यान, चिड़ियाघर और जीन, पराग, बीज, अंकुर व जीन बैंक सम्मिलित हैं।

इनके साथ ही *इन विट्रो* संरक्षण, क्रायोप्रिजर्वेशन तकनीक के द्वारा तरल नाट्रोजन (-196$^0$C) में किया जाता है।

**जैव विविधता विलुप्ति के मुख्य कारण हैं :**

1- जीवों का अवैध शिकार।

2- जंगलों का घटना।

3- प्राकृतिक आपदाएँ।

4- लिंगानुपात में कमी।

मैं आश्चर्यचकित होकर प्रकृति के रहस्यों के विषय में केवल अनुमान लगाता हूँ और विनम्र भाव से अपने मस्तिष्क में वस्तुस्थिति का एक चित्र खींचने का प्रयास करता हूँ जो वास्तविक चित्र की तुलना में कहीं अधिक अधूरा ही होता है।

**- एल्बर्ट आइन्सटीन**

# केंचुआ पालन और वर्मी कम्पोस्ट

विजय चितौरी *

मिट्टी की उर्वरता में जिस एक जीव की सर्वाधिक भूमिका होती है, वह केंचुआ है। इसकी खूबियों के कारण ही इसे प्रकृति का हलवाहा कहा जाता है। ये केंचुए पौधों के जड़, पत्ती, तने एवं खेत के अन्य कार्बनिक

केंचुओं का समूह

पदार्थों को विघटित करके उसे कीमती खाद में परिवर्तित कर देते हैं। केंचुओं द्वारा तैयार यह खाद 'वर्मी कम्पोस्ट' कहलाती है।

उक्त के अतिरिक्त केंचुए मिट्टी को पलटकर उसमें वायु संचार तथा उसकी जल अवशोषण क्षमता को बढ़ाते हैं। केंचुओं से युक्त मिट्टी वर्षा जल को 120 मिली. प्रति घंटे की दर से ही अवशोषित करती है। केंचुओं वाली मिट्टी वर्षा जल को मात्र 10 मिली. प्रति घंटे की दर से ही अवशोषित करती है। केंचुए अपने मल को मिट्टी की ऊपरी सतह पर छोड़ते हैं। इसमें पैराट्रापिक झिल्ली होती है जो जमीन में धूल के कणों से चिपक कर मिट्टी की ऊपरी सतह को ढ़कती है जिससे मिट्टी का वाष्पीकरण रुकता है। इससे सूर्य की किरणों द्वारा होने वाली मिट्टी की जलहानि में कमी आती है। इस प्रकार केंचुए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सिंचाई, जल की माँग को घटाते हुए जल संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

## केंचुआ पालन

हमारे देश में सन् 1970 के दशक से हरित क्रांति की शुरुआत के साथ ही मिट्टी में उर्वरकों का उपयोग प्रारम्भ हुआ। अधिक से अधिक पैदावार लेने के लिए उर्वरकों का इस्तेमाल लगातार बढ़ाया गया। इन रासायनिक खादों के इस्तेमाल का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि

केंचुए द्वारा पलटी गयी मिट्टी

मिट्टी बेजान होती गयी। इस मिट्टी से उपजाये गये अनाज, फल और सब्जियाँ बेस्वाद हो गये हैं। इनकी पौष्टिकता घट गयी है। इनके लगातार इस्तेमाल से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता घट गयी है। फलतः आज आदमी तमाम तरह की बीमारियों की चपेट में आ गया है।

इन स्थितियों को देखते हुए वैज्ञानिकों का ध्यान एक नन्हें से प्राणी केंचुए की ओर गया। वैज्ञानिकों को आशा की किरण दिखायी दी कि यदि व्यापक पैमाने पर केंचुआ पालन किया जाये और केंचुए की खाद (वर्मी कम्पोस्ट) का इस्तेमाल किया जाये तो बिगड़ी हुई मिट्टी की सेहत सुधारी जा सकती है। इन्हीं स्थितियों के बीच केंचुआ पालन की योजनाएं बनायी गयीं।

केंचुए को अंग्रेजी में 'अर्थ वर्म' (Earth Worm) कहते हैं। पूरे विश्व में इसकी करीब 700 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इन्हें मोटे तौर पर तीन भागों में बाँट सकते हैं-

1. एपीजीइक - वे केंचुए हैं जो भूमि के सतह पर रहते हैं।
2. एनीसिक - ये भूमि के मध्य सतह में रहते हैं।
3. एण्डोजीइक - यह जमीन की गहरी सतह में रहते हैं।

भारतीय परिस्थितियों में वर्मी कम्पोस्ट के लिए दो किस्में सर्वोत्तम पाई गयी हैं-

1. *आइसीनिया फोटिडा*
2. *यूडिलस यूजिनी*

*ग्रामोदय प्रकाशन, घूरपुर, पो. घूरपुर वाया दांदूपुर, - इलाहाबाद-212 111.

*आइसीनिया फोटिडा* को रेड वर्म भी कहते हैं। उत्तर भारत में ज्यादातर इसे ही पाला जाता है। यह लाल भूरे या बैंगनी रंग का होता है। इसकी उत्पादन क्षमता काफी अधिक तथा रख-रखाव आसान होता है। यूडिलस यूजिनी का उपयोग दक्षिण भारत में ज्यादा होता है। कम तापमान के साथ-साथ यह उच्च तापमान भी सहन कर सकता है।

### वर्मीकम्पोस्ट तैयार करना

वर्मी कम्पोस्ट किसी भी छायादार स्थान पर तैयार किया जा सकता है। यह स्थान ऐसा हो जहाँ पानी न एकत्र होता हो। वर्षा में इस स्थान पर छप्पर आदि डालना जरूरी होता है ताकि केंचुओं को पानी की अधिकता में दिक्कत न हो।

**कृत्रिम रूप से तैयार वर्मी कम्पोस्ट निर्माण टंकी**

सर्वप्रथम 6 फुट लम्बे, 3 फुट चौड़े तथा 3 फुट गहरे गड्ढे बनाये जाते हैं। आवश्यकतानुसार गड्ढों की लम्बाई बढ़ाई जा सकती है। गड्ढा बनाने के बाद गड्ढे की तली में 3-5 सेमी0 मोटाई की ईंट या पत्थर की गिट्टी की तह बिछाते हैं। उसके ऊपर मोरंग अथवा बालू की 3-5 से.मी. ऊँचाई की तह बिछाते हैं। बालू के ऊपर 12-15 सेमी0 मोटाई में अच्छे खेत की छनी हुई मिट्टी की तह बिछाकर बराबर कर देते हैं। इस मिट्टी के ऊपर पानी छिड़क कर नम कर देते हैं। मिट्टी में 25 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार से यह गिट्टी, बालू एवं मिट्टी से बनायी गयी तह (Vermibed) या केंचुए का बिछौना कहलाता है।

इसके बाद बनाये गये गड्ढे में 8-10 जगह गोबर के छोटे-छोटे ढेर बना देते हैं, इनके ऊपर एपीजीइक एवं एनीसिक वर्ग के 50-60 केंचुए डाल देते हैं और इसे पुआल आदि से ढक देते हैं। तथा नमी बनाये रखने हेतु पानी छिड़क देते हैं। अब इस यूनिट को 20-25 दिन के लिये ऐसे ही छोड़ देते हैं, सिर्फ नमी बनाए रखने हेतु पानी छिड़क देते हैं। अब इस यूनिट में 20-25 दिनों में केंचुओं की संख्या काफी बढ़ जाती है। यही केंचुए आगे गड्ढे में खाद बनाने में सहयोग करते हैं। अब इस गड्ढे में घर से निकलने वाले कूड़े-कचरे को डालते हैं। इस बात का ध्यान रखें कि एक बार में डाले गये कूड़े-कचरे की ऊचाई 2-3 इंच मोटी पर्तों में ही रहे।

**केंचुआ का नजदीक से लिया गया छायाचित्र**

इस घरेलू कूड़े-करकट में कुछ मात्रा गोबर की भी होनी चाहिए क्योंकि यही गोबर केंचुओं के भोजन के काम आता है। साथ ही डाला जा रहा एग्रो या किचन वेस्ट को काटकर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें जो आकार में 2 इंच से बड़े न हों। यदि आकार बड़ा होगा तो कम्पोस्ट बनाने में अधिक समय लगेगा। गड्ढे में किचन या एग्रोवेस्ट डालते समय यह ध्यान रखें कि उनकी तहें 2-3 इंच से ज्यादा मोटी न हो अन्यथा किचन वेस्ट के सड़ने से गर्मी अधिक पैदा हो जायेगी जो केंचुओं के लिए नुकसानदेह भी हो सकती है। इस प्रकार जब गड्ढा भर जाये तो उसे पुआल या टाट के बोरों से ढक देना चाहिए तथा नमी बनाये रखने हेतु गड्ढों में प्रतिदिन पानी का छिड़काव जरूरी होता है। इस प्रकार से 3 माह में खाद बनकर तैयार हो जाती है।

### वर्मीकम्पोस्ट से लाभ

1. इसके उपयोग से मिट्टी में लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या बढ़ जाती हैं।
2. वर्मी कम्पोस्ट के पोषक तत्व पौधों को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।
3. मिट्टी के जीवांश (ह्यूमस) में वृद्धि से मिट्टी की संरचना, वायु संचार तथा जल धारण क्षमता बढ़ जाती है।
4. इससे कृषि उत्पादों की गुणवत्ता तथा स्वाद भी बढ़ जाता है।

### वर्मीकम्पोस्ट में पोषक तत्व

अध्ययनों से पता चला है कि वर्मीकम्पोस्ट में पोषक तत्व साधारण गोबर खाद की तुलना में अधिक होते हैं। साथ ही पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाला एन्टीबायोटिक जो एक्टिनोमाइसिटीस से प्राप्त होता है, इस खाद में आठ गुना ज्यादा मात्रा में पाया जाता है।

### वर्मी कम्पोस्ट में पोषक तत्व

| पोषक तत्व | साधारण गोबर खाद में ( प्रतिशत मात्र ) | वर्मीकम्पोस्ट में ( प्रतिशत मात्र ) |
|---|---|---|
| नाइट्रोजन | 0.8 | 2.00 |
| फास्फोरस | 0.05 | 1.02 |
| पोटाश | 1.00 | 1.00 |
| सल्फर | 1.00 | 0.04 |
| कैल्सियम | --- | 1.5 (PPM) |
| मैग्नीशियम | --- | 1.5 (PPM) |
| मालब्डेनम | --- | 1.0 (PPM) |
| बोरॉन | --- | 2.34 |
| जिंक | --- | 10.60 |
| लोहा | --- | 4.65 |
| कॉपर | 2.33 | --- |
| मैंग्नीज | --- | 0.20 |

### वर्मी कम्पोस्ट प्रयोग की मात्रा

| फसल का नाम | वर्मीकम्पोस्ट ( टन में ) प्रति |
|---|---|
| **एकड़** | |
| दलहनी एवं खाद्यान्न फसल | 2 टन बुवाई-रोपाई से पूर्व |
| तिलहनी फसल | 3 टन बुवाई से पूर्व |
| मसाला एवं सब्जी फसल | 4 टन रोपाई से पूर्व |
| फूल वाली फसल<br>फलदार पौधों में रोपण | 5 टन पौध रोपण से पूर्व<br>5 किग्रा./वृक्ष |
| के समय | |
| गमलों में | मिट्टी के भार का 10 प्रतिशत |

### सावधानियाँ

1. प्रति सप्ताह बेड को एक बार हाथ से पलट देना चाहिए ताकि गोबर पलट जाये और वायु का संचार हो और बेड में गर्मी न बढ़ने पाये।
2. कभी भी ताजा गोबर न प्रयोग किया जाय क्योंकि ताजा गोबर गर्म होता है, इससे केंचुए मर सकते हैं।
3. बेड में सदैव 35-50 प्रतिशत नमी बनाये रखी जाये। इसके लिए मौसम के अनुसार समय-समय पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। वर्षा ऋतु में दूसरे-तीसरे दिन पानी का छिड़काव एवं ग्रीष्म ऋतु में रोजाना पानी छिड़कना चाहिए।
4. सांप, मेढक, छिपकली से बचाव हेतु मुर्गा जाली प्लेटफार्म के चारों ओर लगानी चाहिए। दीमक, चींटी से बचाव हेतु प्लेटफार्म के चारो तरफ नीम का काढ़ा प्रयोग करते रहना चाहिए।
5. बेड का तापमान 8 से 30 डिग्री सेग्रे. से कम ज्यादा न होने दिया जाय, 15 से 25 डिग्री सेग्रे. तापमान पर यह सर्वाधिक क्रियाशील रहते हैं तथा खाद शीघ्र बनती है।
6. हवा का संचार पर्याप्त बना रहे किन्तु रोशनी कम से कम रहे इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

वर्तमान परिस्थितियों में जब रासायनिक खादों का दुष्प्रभाव स्पष्ट हो गया है और इनकी उपलब्धता भी सुनिश्चित नहीं है तब वर्मी कम्पोस्ट किसानों के लिए आशा की एक किरण हैं। इसका उत्पादन करके किसान अपनी मिट्टी की उर्वरता तो कायम रखेंगे ही साथ-साथ वे अपना धन भी बचा सकेंगे।

## ज्यादा टीवी देखना ठीक नहीं

यह बात शायद आपको कुछ अजीब सी लगे कि टीवी देखने से बच्चों की बोलने और समझने की शक्ति पर बुरा असर पड़ता है। यदि आपका बच्चा याद किए शब्दों को भूल जाता है तो सबसे पहले उसकी टीवी से चिपके रहने की आदत से निजात दिलायें। ब्रिटेन के एक स्पीच थेरैपिस्ट वाल्सन ने अपने अध्ययन से इस आशय का निष्कर्ष निकाला है। वाल्सन के अनुसार लगातार कई घंटों तक टीवी देखने से बच्चों की वाक शक्ति पर काफी नकारात्मक असर पड़ता है। इस कारण बच्चा हकला सकता है या फिर वह अपने विचारों को दूसरों के सामने अच्छी तरह संप्रेषित नहीं कर सकता है। वाल्सन की सलाह है कि अभिभावक स्वयं टीवी से चिपके रहने की आदत से बाज आकर बच्चों के समक्ष एक उदाहरण पेश करें। साथ ही बच्चों के लिए वक्त निकाल कर उनसे प्रेमपूर्ण बातें करनी चाहिए।

# पर्यावरण कविताएँ

सुरेश आनन्द *

## 1- धरती का प्रश्न

मैं काँपती हूँ
जब आदमी चीखता है
मैं डोलती हूँ
जब आदमी चलता है
मैं हीं हो जाती हूँ बौनी
जब भार ढोती हूँ
मैं हैरान हूँ
मेरी दुर्दशा पर
हँसता है आदमी,
दैत्याकार होकर-
काटने लगता है पहाड़
तोड़ने लगता है खनिज
रोकने लगता है
नदियों का पानी
घोलने लगता है
हवाओं में विष
मैं कर्त्तव्य विमुखी-सी
सोचने लगती हूँ-
कितना नादान असभ्य है
वर्तमान मनुष्य ?
फिर क्यों
अपनी विद्वत्ता का
ढ़िंढ़ोरा पीटता घूमता है ?

## 2- असभ्य जंगल

यहाँ पूर्व जंगल था
शांत स्थल कहलाता था
असभ्य माना जाता था
एक दिन सम्पदा आयी
सड़कें बन गईं
मीनारें खड़ी हो गई
वाहन टक्कर मारने लगीं
लोग घायल होने लगे
'राम नाम सत्य' कहने लगे
चिमनियाँ गैस बनाने लगीं
नालियाँ बदबू छोड़ने लगीं
आदमी चिड़चिड़ा हो गया
औरतें मशीन मान ली गईं
औजार बनने बनाने लगे लोग
असभ्य जंगल !
सरल गहन शान्त जंगल
दूर से देखकर
अट्टहास करने लगा-
सभ्यता ! मेरा प्रणाम !
मैं तो शान्त था
तुम ही लील गई जिन्दगी ?
पता नहीं मैं ठीक था या तुम ?

## 3- गंगा : दो रूप

### ( एक )

कल-कल करती-
हिम शिखरों से उतरी
अलबेली-सी बढ़ती
बहती आती जाती
गंगा की पावन धारा।
अपनेपन में खोई-खोई-
स्वीकारी, अर्चना धर्मावलंबियों की
जन-जन की-
प्यास मिटाती-
निर्जीव प्राणी की अंतिम बूँद बनी
अमृत पान करा रही है।
कृषक कार्यों की-
कल्पनाओं को सहलाती
आस्थाओं की करती खेती
तपन उदर की-
मिटा रही है।
जर्जर तनों में-
शीतलता का एहसास कराती
गंगाधर की जय जयकार कराती-
भागीरथी दौड़ी आयी
सुख वैभव बढ़ा रही है।
वेद/पुराणों में-
संस्कृति सभ्यता के चरणों में
पग-पग पसारे जिसने-
प्राणवान – स्फूर्तिवान-
मेरी, तेरी सबकी गंगा
सपने सबके जगा रही है।
राष्ट्रीय धुरी पर जिसने-
अमृत रेखा खींची
मेरी तेरी जीवन धारा गंगा-
विभिन्न नामों वाली-
त्रिपथगा ! विष्णुपदी !
भागीरथी ! मंदाकिनी !
मेरी सुर सरिता !
राष्ट्र सदैव स्मरण करता
गंगे ! मैं भी नमन किया करता हूँ।

### ( दो )

तुम कहते हो-
यहीं गंगा द्वार-
मोक्ष मिलता है ?
तुम ही उसमें-
तैरते रहते हो ?
मैल अपना धोया करते हो !
तुमको ही उससे क्योंकर-
बैर हुआ है !
कूड़ा कर्कट-
जलकुंभी का जंगल-
मल-मूत्र समाहित-
क्या नहीं किया तुमने ?
सब कुछ प्रवाहित-
क्या नहीं बहाया बोलो ?
बोल नहीं पाते हो ?
तौलते तो सही-
तौल नहीं पाते हो !
करनी कथनी की-
यहीं दो रेखाएँ-
क्यों खींची है ?
दूषित है गंगा-
अब उसको-
मत देश कहो तुम !
अब उसको-
मत धर्म कहो तुम !
मत कहो-
कभी शिवा ने धारण की थी !
अब नहीं स्वर्ग मोक्षदायिनी,
नरक द्वार तक ही-
जा सकते हो !
दूषित गंगा/उसको कोढ़ हो गया है-
कैसे उससे मोक्ष पाओगे ?

*''आनन्द परिधि'', एल-62, पं. प्रेमनाथ डोंगरा नगर, रतलाम - 457 001 (म. प्र.).

# वैज्ञानिक कविताएँ

संजय गोस्वामी *

## बिन पानी व्याकुल किसान

समय पर पानी न मिलने से
खेतों में खड़ी नष्ट हो गई फसल
वर्षा दे गई धोखा
किसान ने जब यह देखा।
तो वह रह गया सन्न और
घर की तरफ खाली हाथ लौट गया।
ऐसा देखकर परिजन भी
रो-रो कर हो गये बेहाल
पानी की कमी ने
किसान को दी कैसी यह सूखे की मार।
धरती सूखी है भूमि बंजर है
किसान व्याकुल है पानी बिना।
समय हो चला जब फसल उगने का
तो नष्ट हो गई फसल बिन पानी के
किसान बेचारा मेहनत करके भी
असहाय लुट गया।
पानी की कमी से बहुत ही बुरा हाल हुआ
इस बेचारे किसान का।
कैसे जियेंगे किसान अब
बिना पानी और बरसात के?
अब पानी का सही उपाय
खोजना ही होगा।
लोगों को अन्न देने वाले किसान के बारे में
बहुत कुछ सोचना होगा।।
आइए करें जल संचय का सही उपाय
तभी किसान की बचेगी जान,
और सदा रहे जनता महान।
जल ही जीवन है इसी से हैं सभी आबाद और खुशहाल।
इसीलिए पानी बचाओ, पानी बचाओ
और धरा को हरा भरा बनाओ।।

## नाभिकीय-संलयन रिएक्टर एक वैज्ञानिक चुनौती

नाभिकीय संलयन की अभिक्रिया होती है मिलियन डिग्री तापक्रम पर।
जिसे नियंत्रित कर बना सकते हैं प्रदूषणयुक्त संलयन रिएक्टर।
यूँ तो सूर्य और तारों में होती है संलयन अभिक्रिया।
जिसमें ड्यूटोरियम–ड्यूटोरियम मिलकर बनाते हैं हिलियम-प्रक्रिया।।
परन्तु संलयन रिएक्टर हेतु ड्यूटोरियम एवं ट्रिशियम का ईंधन है बढ़िया।
क्योंकि डी-डी ईंधन की अपेक्षा डी-टी ईंधन का ताप कुछ 10 गुना कम हो गया
उच्च ताप प्राप्ति हेतु बने रोकामैक, चुंबकीय दर्पण एवं स्टेलेटर।
रोकामैक जो चुम्बकीय परिसीमन द्वारा है संलयन के लिए है सबसे बेहतर
प्लाज्मा को पूर्णतः परिसीमित रखने हेतु बनाया गया टोराइडल क्षेत्र।
जिसके चारो ओर अतिचालक पदार्थ निबोलिम,
टाइटेनियम के मिश्र धातु से नियंत्रित हुआ रिएक्टर पात्र।।
टोकामैक कुंडली को टायर का रूप दिया,
जिसके दोनों सिरों को बन्द कर प्लाज्मा का ताप बढ़ा दिया।
जिससे विद्युत एवं चुंबकीय क्षेत्र में काफी परिवर्तन हो गया।।
जिससे ताप बढ़ता गया और ताप प्राप्ति का लक्ष्य मिल गया।
लेकिन अभी समस्या खत्म नहीं हुई
प्लाज्मा अति उच्च ताप पर, अधिक दाब-वश अस्थिर हुआ।
जिससे प्रक्रिया शिथिल हुई, संलयन रिएक्टर का सपना बेकार हुआ।।
क्या अब कुछ लेजर द्वारा संलयन अभिक्रिया कर पायेंगे?
क्या वर्तमान में इस वैज्ञानिक चुनौती का सामना कर पाएंगे?
जिसके निर्माण से नाभिकीय जगत में एक इतिहास लिख पाएंगे?
क्योंकि प्रदूषणमुक्त बिजली, सिर्फ एक ग्राम ड्यूटोरियम से
संलयन रियेक्टर में मेगावाट में ऊर्जा पाएंगे।

*कृष्ण यमुना जी/13, अणुशक्ति नगर, मुंबई-400 094.

# पाठकों के पत्र

प्रियवर डॉ0 शशि भूषण जी,
सप्रेम वन्दे।

'विज्ञान-गंगा' के सन् 2011 एवं 2012 के अंक प्राप्त कर अत्यंत प्रसन्नता हुई। तदर्थ अनेक आभार। आप एवं सहयोगियों के अथक परिश्रम को देखा कि सुन्दर ग्रंथ का प्रणयन हुआ। ग्रंथ में विविध विषयों पर मातृभाषा में आलेखों से बहुत आनन्द एवं सूचनाएँ प्राप्त हुई। प्रत्येक लेख को मैंने अनुवाद नहीं अपितु मौलिक लेखन पाया। प्रायः अंग्रेजी के लेखों का अनुवाद मिलता है पर यहाँ ऐसा नहीं पाया। वर्ष में प्रकाशन होने से सामग्री बहुत उच्चस्तरीय मिली। वैज्ञानिकों के विषय में जीवनी रूप में आलेख बड़े रुचिपूर्ण हैं।

मेरे विचार से एक बार रायल एशिटाईटिक सोसायटी कलकत्ता से 18 एवं 19वीं सदी के विज्ञान लेखन मिल सकते हैं। वे भी बड़े सूचनापूर्ण एवं रुचिकार होंगे, अतः प्रकाशन योग्य हो सकते हैं। ग्रंथों हेतु पुनः-पुनः अनुग्रहीत, शुभकामनाएँ एवं बधाई।

**प्रो0 गिरीश चन्द्र चौधरी**
अ0प्रा0 आचार्य, भूगर्भ विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी-221 005.
आवास- भारतेन्दु भवन, चौखम्भा, वाराणसी- 221 001.

***

मान्यवर,

विस्तार व्याख्यान के सिलसिले में हाल ही बनारस प्रवास के दौरान हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के समन्वयक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ और साथ ही समिति द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'विज्ञान-गंगा' के कुछ अंक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जनसामान्य की भाषा में जन-जन तक विज्ञान को पहुँचाने का जो बीड़ा समिति ने उठाया है वह निश्चय ही सार्थक, सकारात्मक और सराहनीय प्रयास है। पत्रिका में विज्ञान के विभिन्न आयामों पर सम्मिलित लेख रोचक एवं स्तरीय हैं। अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिनाम वैज्ञानिकों का जीवन परिचय और उनके व्यक्तित्व व कृतित्व के विभिन्न पहलू निश्चय ही प्रेरणास्पद हैं। अन्य वैज्ञानिक पत्रिकाओं के संपादकों द्वारा लिखित लेख प्रशंसनीय हैं।

महान वैज्ञानिकों, विशेषकर भारतीय वैज्ञानिकों के योगदान पर आधारित शृंखला का यदि प्रकाशन किया जाए तो उससे अधिकाधिक पाठक लाभान्वित होंगे।

**प्रो0 सुनील दत्त पुरोहित**
वनस्पति विज्ञान विभाग, युनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइंस,
मोहन लाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान).

***

मान्यवर,

लोकप्रिय उच्चस्तरीय पत्रिका 'विज्ञान-गंगा' का वर्ष-3, अंक-5 प्राप्त हुआ। पत्रिका में निरंतर निखार आता जा रहा है यह आपके और आपकी विद्वत टीम के कठोर श्रम, विज्ञान के प्रति प्रतिबद्धता और विज्ञान के प्रचार-प्रसार के प्रति लगन का सूचक है। 44 लेखों के रूप में (2 कविताओं – 1. मृत्यु को निमंत्रण, 2. पर्यावरण के लिए, पुस्तक समीक्षाओं सहित) संपूर्ण सामग्री का संकलन, संयोजन और प्रस्तुतिकरण बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ किया गया है। अत्यंत ज्ञानवर्द्धक सामग्री को मात्र 130 पृष्ठों में और वह भी 10 दर्जन से अधिक श्वेत-श्याम चित्रों, रेखा-चित्रों और एक दर्जन बहुरंगी चित्रों को (आकर्षक मुखपृष्ठ सहित) एक ही अंक में सम्मिलित करना अत्यंत दुष्कर कार्य है जिसे आपने बखूबी निभाया है। वास्तव में यह आपके सम्पादन कौशल का कमाल है। इस संग्रहणीय अंक के लिए बधाई और साधुवाद स्वीकार करें।

**प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, पूर्व संपादक, 'विज्ञान';**
अनुकंपा, वाई 2 सी, 115/6, त्रिवेणीपुरम्, झूँसी, इलाहाबाद -211 019.

***

प्रिय अग्रवाल जी,

आप द्वारा समपादित 'विज्ञान-गंगा' का अंक-4 एवं 5 मुझे मिला। दोनों ही अंकों में बहुत उपयोगी एवं ज्ञानपरक लेख छपे हैं। मुझे पढ़कर अपार हर्ष हुआ। निश्चित ही इन लेखों को पढ़कर हमारे शिक्षक, विद्यार्थी एवं सामान्यजन लाभान्वित होंगे। इसके लिये मैं आपको बधाई देता हूँ तथा भविष्य में भी आप 'विज्ञान-गंगा' का प्रकाशन इसी तरह से करते रहें, जिसके लिये आप को शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

धन्यवाद के साथ,

**प्रो0 बशिष्ठ नारायण सिंह**
यूजीसी-बीएसआर फैकल्टी फेलो, जन्तु विज्ञान विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी- 221 005.

***

महाशय,

'विज्ञान-गंगा' का अंक-5 प्राप्त हुआ, धन्यवाद। पं0 मदन मोहन मालवीय जी का भव्य चित्र देखकर काफी प्रसन्नता हुई। आवरण पृष्ठ रंगीन चित्रों सहित काफी आकर्षक है। संपादक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल एवं उनके सहयोगी डॉ0 देवेश कुमार एवं डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी सचमुच बधाई के पात्र हैं। यह पत्रिका विज्ञान-संचार के क्षेत्र में एक नई क्रांति लाएगी एवं छात्रों हेतु मार्गदर्शक सिद्ध होगी। यह अंक वैज्ञानिक सामग्री से परिपूर्ण है साथ ही वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का अनुदान देना भी सार्थक है। क्योंकि यह पत्रिका शिक्षाविदों, हिन्दी में कार्यकर रहे वैज्ञानिकों एवं पर्यावरणविदों तथा शोध-छात्रों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी। जब भी मैं 'विज्ञान-गंगा' पढ़ता हूँ उसके सामने अन्य पत्रिकाएँ छोटी दिखने लगती हैं। क्योंकि अन्य पत्रिकाओं में पूर्ण सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती है। इसका एकमात्र कारण है उनमें नव विज्ञान लेखकों का लेख पूर्णरूप से समाहित नहीं रहता है। यह पढ़ने में जितना रुचिकर लगता है उतना ही फोटो, तालिकाओं से वैज्ञानिक विश्लेषण भी सार्थक सिद्ध होते हैं। पत्रिका समय से निकल रही है यह अत्यंत खुशी की बात है एवं इसका प्रचार-प्रसार भी खूब हो रहा है। पत्रिका के संरक्षक पद्मश्री माननीय डॉ0 लालजी सिंह का मैं आभारी हूँ जो पत्रिका की निरंतरता एवं उसे स्तरीय बनाने के लिए अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करते रहे हैं।

मैं पुनः पत्रिका से जुड़े समस्त अधिकारीगणों एवं कर्मचारीगणों को बधाई देता हूँ एवं पत्रिका की उज्जवल भविष्य की कामना माँ सरस्वती से करता हूँ।

धन्यवाद !

**संजय गोस्वामी**
कृष्ण यमुना जी / 13, अणु शक्तिनगर, मुंबई-400 094.

# पुरस्कार/सम्मान/सदस्यता/नियुक्ति

### प्रो0 अमर नाथ राय बने नैक के निदेशक

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व छात्र एवं पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) के कुलपति प्रो0 अमर नाथ राय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा नैक के निदेशक नियुक्त किये गये हैं। प्रो0 राय ने गत दिनों निदेशक पद का कार्यभार ग्रहण कर लिया है। उनका कार्यकाल पाँच वर्षों का है। पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय के कुलपति बनने के पूर्व प्रो0 राय मिजोरम केन्द्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति रह चुके हैं।

प्रो0 राय ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग से स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है जिसमें उन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ था। उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ ड्यून्डी (यूके) से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। वे नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं पादप-सूक्ष्मजीवी अन्तर्क्रिया के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिक हैं। हिन्दी प्रकाशन समिति परिवार की तरफ से प्रो0 राय को हार्दिक बधाई।

### प्रो0 बशिष्ठ नारायण सिंह को सम्मान व सदस्यता

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, जन्तु विज्ञान विभाग, वाराणसी के प्रोफेसर इमेरिटस प्रो0 बशिष्ठ नारायण सिंह की अद्यतन उपब्धियाँ हैं :

* 'दी इंडियन सोसाइटी ऑफ सेल बायोलॉजी' का सन् 2013-15, दो वर्षों के लिए अध्यक्ष चुना गया है।
* *ड्रासोफिला* पर गहन अनुसंधान करने वाले विश्व के 34 अनुसंधानकर्ताओं की सूची, जिनमें सभी के 100 से अधिक उच्चस्तरीय अनुसंधान पत्र अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, में 24वें स्थान पर हैं। विशेष बात यह है कि वे भारत के एकमात्र ऐसे अनुसंधानकर्ता हैं जिनका नाम इस सूची में सम्मिलित किया गया है।
* हाल ही में उन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली द्वारा यूजीसी-बीएसआर फैकल्टी फेलोशिप पुरस्कार (2012) प्राप्त हुआ है।
* इस वर्ष प्रो0 सिंह को 'सेरबियन जेनेटिक्स सोसाइटी, बेलग्रेड' द्वारा सन् 1969 से प्रकाशित 'जेनेटिका' नामक अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान पत्रिका का इस वर्ष (खण्ड 45, अंक 1, 2013) के प्रथम अंक से सम्पादक-मण्डल का सदस्य बनाया गया है। 'जेनेटिका' के प्रधान सम्पादक प्रो0 कोसाना कोन्स्टेन्टिनोव ने प्रो0 सिंह को इस बारे में सूचना प्रेषित की है।

### प्रो0 सिद्ध नाथ उपाध्याय को राजा रमन्ना फेलोशिप

प्रौद्योगिकी संस्थान (वर्तमान भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के पूर्व निदेशक तथा रसायन अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ प्रो0 सिद्ध नाथ उपाध्याय को प्रतिष्ठित 'राजा रमन्ना फेलोशिप' प्रदान किया गया है। परमाणु ऊर्जा विभाग ने अनुसंधान के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए

यह फेलोशिप प्रदान की है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रौद्योगिकी संस्थान को भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान बनाये जाने के बाद से प्रो0 उपाध्याय यह फेलोशिप प्राप्त करने वाले यहाँ के पहले प्रोफेसर हैं। इसके अन्तर्गत उन्हें चालीस हजार रुपये प्रतिमाह के साथ प्रतिवर्ष तीन लाख रुपये आनुसंगिक व्यय हेतु मिलेंगे।

### नवनीत कुमार गुप्ता महामहिम राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत

14 सितंबर, 2012 को हिन्दी दिवस के अवसर पर नई दिल्ली के विज्ञान भवन में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा आयोजित कार्यक्रम में राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी द्वारा राजीव गाँधी राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान पुरस्कारों का वितरण किया गया। विभिन्न विज्ञान संचारकों की पुस्तकें भी इस पुरस्कार से पुरस्कृत हुईं। विज्ञान प्रसार में कार्यरत प्रसिद्ध विज्ञान संचारक श्री नवनीत कुमार गुप्ता को उनकी पुस्तक 'जलवायु परिवर्तन : एक गंभीर समस्या' के लिए राजीव गाँधी ज्ञान विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार श्रेणी के अंतर्गत प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किया गया।

**राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी से विज्ञान संचारक श्री नवनीत कुमार गुप्ता पुरस्कार ग्रहण करते हुए**

### विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद के तीन लेखक पुरस्कृत

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा वर्ष 2012 के लिए घोषित किये गये पुरस्कारों में विज्ञान परिषद के श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव को 'वनस्पति विज्ञानी डॉ0 जगदीशचन्द्र बोस' पुस्तक के लिए जगदीश गुप्त पुरस्कार, डॉ0 दिनेश मणि की दो पुस्तकों 'लोकप्रिय विज्ञान पत्रकारिता' एवं 'सुदूर संवेदन' के लिए क्रमशः 'बाबूराव विष्णु पराड़कर पुरस्कार' एवं 'सम्पूर्णानन्द पुरस्कार' तथा श्री देवव्रत द्विवेदी की पुस्तक 'आपदा प्रबंधन' के लिए 'होमी जहाँगीर भाभा पुरस्कार' प्रदान किया गया है। इन लेखकों को हिन्दी प्रकाशन समिति की तरफ से हार्दिक बधाइयाँ।

# हिन्दी प्रकाशन समिति की गतिविधियाँ

डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी*

**विज्ञान-गंगा के पाँचवें अंक का लोकार्पण**

वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा नवीन व्याख्यान शंकुल सभागार, विज्ञान संकाय में 01 मार्च, 2013 को आयोजित 'पारिस्थितिक विज्ञान और पर्यावरणीय जैव-प्रौद्योगिकी के नवीन आयाम और वर्तमान स्थितियाँ' विषयक संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में प्रख्यात पर्यावरणविद् प्रो0 जे.एस. सिंह ने हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान-गंगा' (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की विज्ञान पत्रिका - ISSN 2231-2455) के पाँचवें अंक का लोकार्पण किया। इस अवसर पर प्रो0 सिंह ने कहा कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान-गंगा' पत्रिका एक ऐसा अभिनव प्रयोग है जिसके माध्यम से देशभर के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं शोध संस्थानों के हिन्दी में कार्य करने वाले विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा से जुड़े शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों एवं आमजनों को एक मंच पर लाया जा सकता है।

इस अवसर पर हिन्दी प्रकाशन समिति के समन्वयक एवं पत्रिका के संपादक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल ने कहा कि इस पत्रिका के माध्यम से सामान्यजनों को विज्ञान की जनोपयोगी सूचनाओं से लाभान्वित कराया जा रहा है जिसके उत्साहजनक परिणाम सामने आ रहे हैं। इस पत्रिका के माध्यम से नवोदित विज्ञान प्रतिभाओं को विज्ञान के विविध क्षेत्रों में लिखने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। इससे हिन्दी में वैज्ञानिक तथ्यों का प्रचार-प्रसार एवं विज्ञान लोकप्रियकरण में काफी सफलता प्राप्त हो रही है। प्रो0 अग्रवाल ने कहा कि इस पत्रिका के उप सम्पादकों ने इसके सम्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पत्रिका में विविध विषयों पर रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक सामग्रियाँ हैं जो राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिकों एवं लेखकों द्वारा लिखी गयी हैं। केन्द्रीय विद्यालय संगठन के केन्द्रीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों द्वारा अपने छात्र-छात्राओं को लाभान्वित करने के उद्देश्य से अपने पुस्तकालयों में विज्ञान-गंगा के अबतक प्रकाशित सभी अंकों के सेट मँगवाये जा रहे हैं। लोकार्पण अवसर पर हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड के पूर्व कुलपति प्रो0 एस.पी. सिंह, प्रशासन एवं प्रबंधन आकादमी, भोपाल की डॉ0 गोपा पाण्डेय, अन्तर्राष्ट्रीय समन्वित पर्वत विकास केन्द्र, काठमांडू, नेपाल के डॉ0 एकलब्य शर्मा, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ की डॉ0 नन्दिता सिंह, तत्कालीन विज्ञान संकाय प्रमुख प्रो0 एस.के. सेनगुप्ता, वनस्पति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रो0 ए.के. राय, प्रो0 मधूलिका अग्रवाल, प्रो0 एल.सी. राय, प्रो0 जे.पी. गौड़, प्रो0 आर.एस. उपाध्याय, डॉ0 के.डी. पाण्डेय, प्रो0 जितेन्द्र पाण्डेय, प्रो0 नन्दिता घोषाल, प्रो0 डी.डी. पाण्डेय, डॉ0 कमलेश कुमार, डॉ0 हेमा सिंह आदि सहित अनेक शोधार्थी छात्र-छात्रायें उपस्थित रहे। इस अवसर पर सभी सहभागियों एवं अतिथियों को 'विज्ञान-गंगा' अंक-5 की प्रतियाँ वितरित की गयीं जिसकी काफी सराहना हुई। प्रारम्भ में समिति के समन्वयक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल ने मंचस्थ अतिथियों को पुष्पगुच्छ एवं स्मृति चिन्ह एवं अंगवस्त्रम प्रदान कर सम्मानित किया।

**कुलपति पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह द्वारा ''पर्यावरण विज्ञान के विविध आयाम'' पुस्तक का लोकार्पण**

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रकाशन समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तक ''पर्यावरण विज्ञान के विविध आयाम'' का लोकार्पण दिनाँक 17 जून, 2013 को केन्द्रीय कार्यालय में कुलपति पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह द्वारा किया गया। लोकार्पण करते हुए कुलपति डॉ0 सिंह ने कहा कि आज पर्यावरण व मानव जाति के बिगड़ते सम्बंधों को सुधारने की आवश्यकता है। वर्तमान में हिन्दी भाषा में विज्ञान को प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण हो गया है। इस दिशा में यह पुस्तक हिन्दी भाषी छात्रों के लिए काफी उपयोगी है। हिन्दी प्रकाशन समिति के समन्वयक एवं पुस्तक के संपादक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल ने कहा कि स्नातक कक्षाओं में अध्ययनरत पर्यावरण विज्ञान के छात्रों एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के प्रतिभागियों के लिए यह पुस्तक काफी सहायक है। यह पुस्तक भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (भारत सरकार), नई दिल्ली के शत-प्रतिशत अनुदान द्वारा प्रकाशित की गयी है। इस पुस्तक का लेखन हिन्दी में पर्यावरण शिक्षण का लगभग दस वर्षों का अनुभव रखने वाले डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी द्वारा किया गया है। पुस्तक को स्नातक कक्षा के विद्यार्थियों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण के विभिन्न सन्दर्भों को अद्यतन तथ्यों, आंकड़ों, चित्रों तथा सारिणियों के साथ प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक रंगीन आकर्षक आवरण, ए4 आकार के 200 पृष्ठों एवं 4 रंगीन पृष्ठों में प्रकाशित है और इसका मूल्य भी 160 रुपये मात्र है। प्रोफेसर इमेरिटस प्रो0 एस.सी. लखोटिया ने कहा कि सरल एवं बोधगम्य भाषा में इस तकनीकी एवं जटिल विषय को प्रस्तुत करना स्वयं में एक कठिन कार्य है।

इस अवसर पर कुलसचिव, प्रो0 जी0 एस0 यादव, स्कूल बोर्ड की उपाध्यक्षा, प्रो0 मधुलिका अग्रवाल, छात्र अधिष्ठाता, प्रो0 विनय कुमार सिंह, उपकुलसचिव, डॉ0 सुनीता चन्द्रा, समिति के वरिष्ठ परियोजना अधिकारी, डॉ0 डी0के0 गुप्त, पुस्तक के लेखक, डॉ0 दया शंकर त्रिपाठी तथा सहायक सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी, डॉ0 राजेश सिंह उपस्थित थे। प्रारम्भ में समिति के समन्वयक प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल ने कुलपति जी को पुष्पगुच्छ प्रदान कर अभिनन्दन किया।

*हिन्दी प्रकाशन समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 221 005.

## पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह के शोधपत्र सबसे अधिक पढ़े गये

डॉ0 लालजी सिंह

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति एवं लब्धप्रतिष्ठ डी.एन.ए. फिंगरप्रिन्ट विशेषज्ञ डॉ0 लालजी सिंह का नाम उन शोधकर्ताओं की सूची में सबसे शीर्ष पर है जिनके शोधपत्र इंटरनेट के माध्यम से विश्व के कोने-कोने में सबसे अधिक पढ़े गये। गत दिनों विश्वभर के उन शोधकर्ताओं के नाम सूचीबद्ध किये गये हैं जिनके शोधपत्र इंटरनेट पर सर्वाधिक देखे गये हैं। इस सूची में भारत के मात्र तीन शोधकर्ताओं के नाम सम्मिलित किये गये हैं जिसमें बीएचयू के कुलपति डॉ0 लालजी सिंह का नाम प्रथम स्थान पर है। इस सूची के अन्य दो शोधकताओं के नाम हैं : डॉ0 कुमार स्वामी तांगराजन व डॉ0 श्याम सुंदर। डॉ0 कुमार स्वामी सीसीएमबी, हैदराबाद से जुड़े हैं जबकि डॉ0 श्याम सुंदर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान में मेडिसिन विभाग के प्रमुख रह चुके हैं और कालाजार रोग के क्षेत्र में उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। हिन्दी प्रकाशन समिति परिवार की तरफ से इस विशेष उपलब्धि के लिए माननीय कुलपति को हार्दिक बधाइयाँ।

## जातिगत विवाह से बढ़ती हैं आनुवंशिक बीमारियाँ

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति व डीएनए विशेषज्ञ डॉ0 लालजी सिंह के नये शोध ने दुनिया में भारत की जाति व्यवस्था को नया आयाम दिया है। अमेरिकन जर्नल ऑफ ह्यूमन जेनेटिक्स में प्रकाशित शोधपत्र के अनुसार जाति व्यवस्था के चलते यहाँ आनुवंशिक बीमारियाँ बढ़ी हैं। शोध में हार्वर्ड मेडिकल स्कूल, अमेरिका और सेंटर फॉर सेलुलर एण्ड मालिक्यूलर बायोलॉजी, हैदराबाद के वैज्ञानिक दल ने भारतीय मानव इतिहास के दबे इस रहस्य को उजागर किया है। भारतीय जाति व्यवस्था से जुड़े विशेष शोधपत्र भारतीयों को नये सिरे से विचार करने पर विवश कर सकता है।

पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह ने बताया है कि करीब चार हजार वर्ष पूर्व भारत में मात्र दो समूह हुआ करते थे। एक दक्षिण भारतीय पूर्वज और दूसरा उत्तर भारतीय पूर्वज। ये अपने में ही वैवाहिक संबंध बनाते थे। शोध में सहयोगी रहे हार्वर्ड स्कूल के आनुवंशिकी वैज्ञानिक डॉ0 डेविड रीच के अनुसार कुछ हजार साल पहले ही भारत में जाति व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ है।

डॉ0 सिंह ने बताया है कि आनुवंशिकी के आधार पर फिलहाल भारत में 4500 जाति, प्रजाति, उपजाति आदि हैं। वर्ष 2009 में नेचर में प्रकाशित शोधपत्र में बताया गया है कि मानव की उत्पत्ति अफ्रीका में हुई। वहाँ से सबसे पहले इंसान भारत (अण्डमान-निकोबार) आए। द्वीप में मानव का इतिहास करीब 70 हजार वर्ष पुराना है। करीब चार हजार वर्ष पहले और बीते 1900 वर्ष के बीच जाति व्यवस्था पनपी है। मानव की क्षमता के अनुसार जाति तय होने की परम्परा शुरू हुई। एक ही जाति में शादी की परम्परा के चलते आनुवंशिक रोगों में वृद्धि पायी गयी है।

## काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह उच्चस्तरीय समिति के अध्यक्ष बने

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति पद्मश्री डॉ0 लालजी सिंह को भारत सरकार की रेगुलेशन ऑफ स्टेम सेल एंड अदर सेल बेस्ड थेरेपी के नियमन के लिए गठित उच्चस्तरीय कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया है। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की ओर गठित इस कमेटी का कार्य देश में स्टेम सेल थेरेपी के परिदृश्य की समीक्षा करना है। इसके अलावा सेंट्रल ड्रग स्टैंडर्ड कंट्रोल आर्गेनाइजेशन के अन्तर्गत जो क्षेत्र नहीं आते हैं, लेकिन अन्य निकायों के माध्यम से उनको देख-रेख की जरूरत होती है, उन्हें यह कमेटी इंगित करेगी।

कमेटी का औचित्य इसी से समझा जा सकता है कि इस समय 45 से भी अधिक रोगों के निदान में स्टेम सेल की उपयोगिता बढ़ी है। कैंसर, रोग प्रतिरोधक क्षमता का ह्रास, आनुवंशिक असामान्यता आदि में स्टेम सेल उपचार निरोग करने की क्षमता रखती है। कार्नियल ओपासिटी से ग्रसित रोगी जिन्हें कार्निया प्रत्यारोपण की जरूरत है, उनमें लिम्बल स्टेम सेल प्रत्यारोपण वरदान सिद्ध हो रहा है। हड्डी न जुड़ने पर आटोलोगस स्टेम सेल प्रत्यारोपण कारगर सिद्ध हो रहा है। कार्डियोलॉजी व न्यूरोलॉजी के क्षेत्र में स्टेम सेल लाभकारी है। कमेटी न केवल स्टेम सेल की उपयोगिता व संभावनाएँ तलाशेगी बल्कि इस दिशा में हो रहे काम को समन्वित करते हुए मानवोपयोगी अनुसंधान को भी बढ़ावा देगी। कुलपति जी की इस उपलब्धि के लिए हिन्दी प्रकाशन समिति परिवार की हार्दिक शुभकामनाएँ।

## मालवीय जी के जनोपयोगी सदुपदेश

- परमेश्वर को प्रणाम कर सब प्राणियों के उपकार के लिए बुराई करने वालों को दबाने और दण्ड देने के लिए, धर्म स्थापना के लिये धर्म के अनुसार संगठन कर गाँव-गाँव में सभा करनी चाहिए। गाँव-गाँव में पाठशाला खोलनी चाहिए। गाँव-गाँव में अखाड़ा खोलना चाहिए और पर्व-पर्व पर मिलकर बड़ा उत्सव मनाना चाहिये।
- सब भाइयों को मिलकर अनाथों की, विधवाओं की, मन्दिरों की और गौ माता की रक्षा करनी चाहिए और इन सब कामों के लिए दान देना चाहिये।
- स्त्रियों का सम्मान करना चाहिये।
- दुखियों पर दया करनी चाहिये।
- उन जीवों को नहीं मारना चाहिए, जो किसी पर चोट नहीं करते।
- मारना उनको चाहिये, जो आततायी हों अर्थात् जो स्त्रियों पर या किसी दूसरे के धन, धर्म या प्राण पर वार करते हों। यदि ऐसे लोगों को मारे बिना अपना या दूसरों का धर्म, प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है।
- स्त्रियों को भी, पुरुषों को भी निडरपन, सच्चाई, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, धीरज और क्षमा का अमृत के समान सदा सेवन करना चाहिये।
- इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि भले कर्मों का फल भला और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है।
- घट-घट में बसने वाले भगवान विष्णु-सर्वव्यापी ईश्वर का सुमिरन सदा करना चाहिये, जिसके समान दूसरा कोई नहीं है, जो एक ही है और अद्वितीय है।
- सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओं को चाहिए कि अपने-अपने विशेष धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे के साथ प्रेम और आदर बरतें।
- अपने विश्वास में दृढ़ता, दूसरे की निन्दा का त्याग, मतभेद में (चाहे वह धर्मसम्बन्धी हो या लोकसम्बन्धी) सहनशीलता और प्राणिमात्र से मित्रता रखनी चाहिये।
- जो काम अपने को बुरा या दुखदायी जान पड़े उसको दूसरे के साथ मत करो।
- हर एक को उचित है कि वह चाहे कि सब लोग सुखी रहें, सब निरोग रहें, सबका भला हो, कोई दुःख न पावे। प्राणियों के दुःख को दूर करने में तत्पर यह दया बलवानों की शोभा है।

**सहयोग राशि अधिकतम ₹100/- मात्र**


प्रकाशक

**हिन्दी प्रकाशन समिति ( भौतिकी प्रकोष्ठ )**

द्वितीय तल, हिन्दी भवन

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
( उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार ) के
आंशिक वित्तीय अनुदान द्वारा प्रकाशित